Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विक्रम संवत् २०७५

R.N.I.३०११३/७६
ISSN : २४५६-११२४

साक्षात्कार

अंक : ४६४, अगस्त, २०१८

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

श्रद्धांजलि...

आज की रात तुझे आख़िरी ख़त और लिख दूँ
कौन जाने यह दिया सुबह तक जले न जले ?
बम्ब बारूद के इस दौर में मालूम नहीं
ऐसी रंगीन हवा फिर कभी चले न चले।

जिन्दगी सिर्फहै खुराक टैंक तोपों की
और इन्सान हैं एक कारतूस गोली का
सभ्यता घूमती लाशों की इक नुमाइश है
और है रंग नया खून नयी होली का।

कौन जाने कि तेरी नर्गिसी आँखों में कल
स्वप्न सोये कि किसी स्वप्न का मरण सोये
और शैतान तेरे रेशमी आँचल से लिपट
चाँद रोये कि किसी चाँद का कफन रोये।

कुछ नहीं ठीक है कल मौत की इस घाटी में
किस समय किसके सबेरे की शाम हो जाये
डोली तू द्वार सितारों के सजाये ही रहे
और ये बारात अँधेरे में कहीं खो जाये।

मुफलिसी भूख गरीबी से दबे देश का दुख
डर है कल मुझको कहीं खुद से न बागी कर दे
जुल्म की छाँह में दम तोड़ती साँसों का लहू
स्वर में मेरे न कहीं आग अँगारे भर दे।

चूड़ियाँ टूटी हुई नंगी सड़क की शायद
कल तेरे वास्ते कँगन न मुझे लाने दें
झुलसे बागों का धुआँ खाये हुए पात कुसुम
गोरे हाथों में न मेंहदी का रंग आने दें।

यह भी मुमकिन है कि कल उजड़े हुए गाँव गली
मुझको फुरसत ही न दें तेरे निकट आने की
तेरी मदहोश नजर की शराब पीने की।
और उलझी हुई अलकें तेरी सुलझाने की।

फिर अगर सूने पेड़ द्वार सिसकते आँगन
क्या करूँगा जो मेरे फर्ज को ललकार उठे ?
जाना होगा ही अगर अपने सफर से थककर
मेरी हमराह मेरे गीत को पुकार उठे।

इसलिए आज तुझे आखिरी खत और लिख दूँ
आज मैं आग के दरिया में उत्तर जाऊँगा
गोरी-गोरी सी तेरी सन्दली बाँहों की कसम
लौट आया तो तुझे चाँद नया लाऊँगा।

-गोपालदास नीरज

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

वंदना के इन स्वरों में
एक स्वर मेरा मिला लो।
राग में जब मत्त झूलो
तो कभी माँ को न भूलो,
अर्चना के रत्नकण में
एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृंखला के बंद खोले;
हों जहाँ बलि शीश अगणित,
एक शिर मेरा मिला लो।

-सोहनलाल द्विवेदी

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc No. 4615
Dated 19-12-2023

उमेश कुमार सिंह
संपादक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ISSN : २४५६-१९२४

साक्षात्कार

अगस्त-२०१८
(वि.सं. २०७५)
४६४

संपादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/संपादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-३

फ़ोन : ०७५५ : २५५४७८२ (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें
website: http: // sahityaacademymp.com

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए	:	₹ २५०
संस्थाओं के लिए	:	₹ ३००
आजीवन	:	₹ ३,०००

यह अंक : ₹ २५

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

प्रसार एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : साबिर रहमान, फोन २५५४७८२ (कार्यालयीन समय में)

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्य प्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। संपादक या साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश का मासिक प्रकाशन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

सम्पादकीय // ०४

धरोहर // १३

धर्मपाल : स्वाधीनता से वंचित होने की चिन्ता

पुनर्पाठ // २१

रंगा हरि : धर्म पंथ विवेचन

अमृत लाल नगर : हिंदी और मध्यम वर्ग का विकास

गणेश शंकर विद्यार्थी : भाषा और साहित्य

आलेख // ५१

जगदीश तोमर : हिन्दी : बनने चली विश्व की भाषा

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय : विश्व में हिंदी की बढ़ती भूमिका

डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी : हिंदी का वैश्विक संदर्भ

डॉ. नरेन्द्र मिश्र : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संवाहक विश्वभाषा हिन्दी

आशीष कंधवे : स्टैण्डअप हिंदी-स्टार्टअप हिंदी

डॉ.बी.एल. आच्छा : राष्ट्रीय और विश्वभाषा के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी

डॉ. प्रकाश बरतूनिया : हिन्दी भारत भाल मनोहर बिन्दी

कैलाशचन्द्र पन्त : विश्व हिन्दी सम्मेलनों में अंतर्निहित व्यापक दृष्टि

डॉ. आर. रत्नेश : विश्व हिन्दी सम्मेलन : पुनरावलोकन

काव्य-खण्ड // ९७

श्रीधर पाठक : देश-गीत

अटल बिहारी वाजपेयी : स्वतंत्रता दिवस की पुकार

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : हिन्दी भाषा

शैल चतुर्वेदी : हिन्दी का ढोल

वृत्त // १०३

१०वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन

चिट्ठी // ११५

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'दे दी आजादी तूने खड़ग बिना ढाल'

(एक)

आइये १९४७ के स्वतंत्र भारतवर्ष की पहचान अगस्त, २०१८ में बाबा नागार्जुन की बात से करें। वे कहते हैं, "कभी-कभी लगता है, नाहक ही अंग्रेज यहाँ से चले गये। हमने तो ऐसा कोई कसूर नहीं किया था। समझदारी नहीं, इसे हम उनकी 'कमजोरी' ही मानेंगे कि वे हमें छोड़कर चले गये। विधान-मंडलों में, लोकसभा में, राज्य परिषद् में, हाईकोर्ट में, सर्वत्र अंग्रेजी का बोलबाला है। राजनीतिक पार्टियों के केन्द्रीय कागजात अंग्रेजी में ही तैयार हैं। अच्छे स्तर के स्कूली शिक्षा के लिए तो कान्वेंट ही आगे हैं, जहाँ हमारे बच्चों को हँसना-मुस्कराना तक विलायती कायदे से सिखलाया जाता है। महानगरों का यह हाल है कि यहाँ सम्पन्न परिवारों में तीन-चार-पाँच वर्षों के मुन्ने गलत अंग्रेजी बोलते वक्त तो डाँट खा जाते हैं, लेकिन आया और खानसामावाली लँगड़ी हिन्दी बोलते वक्त माँ-बाप भी उनका साथ देते हैं। 'बरफ वाला पानी नहीं माँगता'। हमारी केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी के बिना एक क्षण भी अपना काम नहीं चला सकती। हिन्दी-बंगला-तमिल आदि के बगैर तो वह बीसियों साल निभा लेगी। अंग्रेजी की सुरक्षा का / अनिवार्यता के लिए सरकार संविधान में हेर-फेर करके हिन्दी के साथ-साथ वह अंग्रेजी को भी राष्ट्रभाषा मनवा लेना चाहती है- अनिश्चित और लम्बी अवधि के लिए।"

बाबा यदि आज होते तो मैं उनसे अवश्य पूछता कि हजारों साल से यह वसुधा 'भारतवर्ष' नाम को अन्तस्थल में बसाए ब्रह्माण्ड की यात्रा करती रही है। तब १८३६ के बाद से यह नाम क्रमशः भारत के राडार से ओझल होना प्रारंभ होता है और १९४७ तक आते-आते जब दिखता है तो 'इण्डिया' में पहुँच जाता है, क्यों? क्यों हम ब्रह्मसमाज के अग्रणी सुधारक बाबू केशवचन्द्र सेन की पीड़ा भरी चेतावनी को नहीं समझ पाये, "यदि भारतवर्ष एक न हइले, भारतवर्ष एकता न हय, तबे ताहार उपाय कि? समस्त भारतवर्ष एकभाषा व्यवहार कराई उपाय। एखन जतो गुलि भाषा भारते प्रचलित आछे, ताहार मध्य हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्रई प्रचलित। एई हिन्दी भाषा के यदि भारत वर्ष एक मात्र करा जाय, अनायासे शीघ्र सम्पन्न हइते पारे।" क्या यह चेतावनी-संदेश हमारे देश के नाम को नहीं बचा पाती? खैर।

२०१७-१८ में जे.एन.यू. जैसी वैश्विक संस्था में 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' के नारे लगते हैं। इसमें राडार से ओझल नाम फिर झिलमिलाने लगता है किन्तु एक बदली दृष्टि के साथ। जहाँ भारत के उन हिस्सों का बोध नहीं है जो इस नाम के भौगोलिक स्वरूप में, माता के श्रृंगार में, वर्षों-वर्षों से जुड़े हैं। यहाँ आस्था का अभाव भी है। वर्तमान को खण्डित करने, अतीत के गौरव को नष्ट करने का प्रयत्न है।

चलिए थोड़ा उस भारतबोध पर विचार करें। भारतवर्ष में दो शब्दों का अस्तित्व है। एक, भारत। जिसका अर्थ ही ज्ञान में रत, प्रकाश में रत होता है। दूसरा, वर्ष। बिना इन दोनों को साथ रखे भारत को समझना सम्भव नहीं। भारत ज्ञान का, तेज का, त्याग का, शौर्य का, परम्परा का प्रतीक है। यह नाम प्रतापी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजा से लिया गया हो अथवा तपस्वी से किन्तु इसकी अपनी सत्ता विश्व की कामना में है। इसकी सत्ता विश्व की सुप्त चेतना को जगाने और जागृत चेतना को विस्तारित करने और अधिक प्रकाशवान करने में है। यह देश निरन्तर प्रज्ञा के संवर्द्धन का रहा है और आज भी उसी चेतना के साथ दुनिया को दृष्टि देने को प्रयत्नशील है।

भारत इसका छोटा नाम है जो प्रयोग में आता है। वर्ष इसका पूरा परिचय है। वर्ष के दो अर्थ हैं, एक काल तो दूसरा स्थान। पहले काल को समझें, 'श्रीब्रह्मणों द्वितीय परार्द्धे श्री श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमें कलियुगे कलि प्रथमचरणे' इस पूरे चरण-चक्र को समझने का अर्थ भारतवर्ष के उस बोध को आत्मसात करना होगा जो काल की अखण्डमण्डलाकार परम्परा का प्रतीक है।

दूसरा वर्ष, 'जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते आर्यावर्तान्तर्गत ब्रह्मावर्तैकदेशे' का विचार करते समय पृथ्वी के इस भाग भारतवर्ष का जिसे 'अजनाभ' कहते हैं का बोध होता है। जैसे ही 'अजनाभ' का बोध होता है तो हमारे सामने अनादिकाल से इस भारतवर्ष की संज्ञा खड़ी हो जाती है। जो 'नाभि' होने के कारण उसके अन्दर चराचर जीवमात्र के योगक्षेम का भाव निहित है।

होना तो यह चाहिए था कि स्वतंत्रता के साथ फिर से इसके बोध का प्रयास होता, चमक आती और गौरव के साथ हम अपने देश को बाबा नागार्जुन की पीड़ा को दूर करते हुए 'इण्डिया' की जगह गौरव से 'भारतवर्ष' के नाम से पुकार सकते। किन्तु जब स्वतंत्रता के प्राप्ति के मूल 'उत्सर्ग' को ही बदल दिया गया तो शेष चीजें तो बदलनी ही थीं।

(दो)

यह 'उत्सर्ग' है क्या? आज भारतवर्ष को हम समझा रहे हैं कि 'दे दी आजादी तूने खड़ग बिना ढाल'। वह कौन सा आजाद देश है? भारतवर्ष, भारत, हिन्दुस्तान या इण्डिया? दरअसल जब हम किसी के त्याग, बलिदान से तैयार उसके प्रभा-मण्डल के करीब जाते हैं तो हमारी आँखें चौंधियाती हैं और हम उसे झट महात्मा, भगवान मान लेते हैं और उसके आचरण को अपने जीवन में उतारने की जगह उसके गुणों का अकल्पनीय गान करने लगते हैं। कहते अवश्य हैं कि उसके चरण-चिन्हों पर चलना है किन्तु जब चलने की बारी आती है तो हमारी स्वार्थी दृष्टि उसमें गुंजाइश ढूँढ़ती है और उस चरण अर्थात् आदर्श के या तो दक्षिण चलेगी या वाम? क्या अहिंसा को परिभाषित करते-करते हम सत्य के मूल्यांकन में भटक नहीं जाते? जरा बापू को समझने के लिए उन्हीं के शब्दों को समझें, ''हम जिस गाँव में जाते, उस गाँव में सभा करते। लोग आते, लेकिन भर्ती के लिये नाम तो मुश्किल से एक या दो ही मिलते। वे प्रश्न करते हैं, 'आप अहिंसावादी होकर हमें हथियार उठाने के लिये क्यों कहते हैं?' 'सरकार ने हिन्दुस्तान का क्या भला किया है कि आप हमें उसकी मदद करने को कहते हैं?' ऐसे अनेक प्रकार के प्रश्न मेरे सामने रखे जाते थे।.. रंगरूटों की भर्ती के सिलसिले में मैंने जो पत्रिका प्रकाशित की थी, उसमें भर्ती के लिये लोगों को निमंत्रित करते हुये जो एक दलील दी गयी थी, वह कमिश्नर को बुरी लगी थी। उसका आशय था : ''ब्रिटिश राज्य के अनेकानेक दुष्कृत्यों में समूची प्रजा को नि:शस्त्र बनाने वाले कानून को इतिहास उसका काले से काला काम मानेगा। इस कानून को रद्द कराना हो और शस्त्रों का उपयोग सीखना हो, तो उसके लिये यह एक सुवर्ण अवसर है। संकट के समय में मध्यम श्रेणी के लोग स्वेच्छा से शासन की सहायता करेंगे, तो अविश्वास दूर होगा और जो व्यक्ति शस्त्र धारण करना चाहेगा वह आसानी से वैसा कर सकेगा।'' क्या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सचमुच में गाँधी के अहिंसा का वही अर्थ है जिसे आज हम अपने दूधमुहें छात्रों से दोहरवा रहे हैं? क्या बिना शक्ति की उपासना के, बिना शक्ति के अहिंसा हो सकती है? फिर गाँधी को यह क्यों कहना पड़ा था कि हिन्दू कायर और डरपोक है, 'भीरू' और मुस्लिम 'गुण्डा'। क्या गाँधी जी को गुण्डों से पीड़ा थी? क्या वह नहीं चाहते थे कि इन गुण्डों से भीरू दो-दो हाथ करे? क्या यहाँ अहिंसा आड़े आ रही थी? क्या यह राष्ट्र सचमुच भीरू है?

(तीन)

वस्तुतः यह मूल्यांकन ही गलत है कि हिन्दू कायर और भीरू है। या बिना खड़ग और ढाल के आजादी मिल गई? या अहिंसा गुण्डे को अपना गाल दे देना है। भारतवर्ष के हजार साल के मूल्यांकन को ठीक से देखने की आवश्यकता है तभी हम आज की परिस्थिति में समय के साथ बदलते परिदृश्य में अपनी भूमिका तय कर सकेंगे। चूँकि हमें सफलता के लिए लघुत्तम मार्ग चुनने और चलने की आदत हो गई है इसलिए हमें जो जहाँ हमारे अनुकूल लगता है, लेते हुए चलते रहते हैं। गाँधी का भीरू और गुण्डा शब्द तात्कालिक परिस्थिति की असह्य वेदना का परिचायक तो है ही साथ ही हमें आज की परिस्थिति में अपने को ठीक से मूल्यांकन करने का सूत्र भी है। यदि उनके कथन का ठीक से मूल्यांकन करना है तो १७५० से १९१५ के बीच भी इस देश में कुछ हुआ है जिसके कारण आज हम खण्डित ही सही, अधूरी ही सही तो भी स्वतंत्रता का स्वाभिमान तो रख ही रहे हैं, को समझना होगा! यदि हमें भारत के स्वतंत्रता संग्राम को समझना है तो भी १७५० तक तो अपने को ले ही जाना चाहिए जहाँ गुण्डे अपने बदलते रूप में मिलते रहे हैं और यह समाज भीरू नहीं उत्सर्ग करने वाला है अपने को सिद्ध करता रहा है।

भागलपुर जिले के तिलकापुर गाँव में ११ फरवरी, सन् १७५० को संथाल परगना में जन्मा तिलका मांझी सन् १७६८ में (१८५७ से लगभग ९० वर्ष पहले) अपने आदिवासी बहादुरों के साथ बंदूक और तोपों वाले अंग्रेजों से केवल धनुष-बाण से लड़ता था। वे सब छापामार युद्ध में कुशल थे। तिलका मांझी को अंग्रेजों का प्रदेश में आना बुरा लगा। केवल १७ वर्ष की आयु में उसने संथाल युवकों का एक बड़ा दल संगठित कर लिया। तिलका मांझी के गिरोह का दमन करने के लिये मजिस्ट्रेट क्लीवलैंड के नेतृत्व में अंग्रेज सेना की एक टुकड़ी भेजी। क्लीवलैंड घोड़े पर सवार होकर कुछ आगे बढ़ गया। उधर तिलका मांझी को भी अंग्रेजी सेना के आने का पता चल गया था और वह ताड़ के एक पेड़ पर चढ़ कर अंग्रेजी सेना की स्थिति देखने का प्रयत्न कर रहा था। दुर्योग से क्लीवलैंड अचानक उस ताड़ के नीचे आ पहुँचा। उसने न केवल तिलका मांझी को देख लिया, अपितु पहचान भी लिया। उसने बंदूक की नाल ऊपर नचाते हुये चेतावनी दी : 'अपना धनुष-बाण नीचे फेंक दो और नीचे उतर कर आत्म-समर्पण कर दो, नहीं तो तुम्हें गोली मार दी जायेगी।' तिलका मांझी ने पल भर में स्थिति को भाँप लिया। धनुष-बाण नीचें फेंकने के बजाय उसने अपनी दोनों जाँघों से ताड़ के पेड़ को जकड़ लिया और बायें हाथ में धनुष थाम कर दायें हाथ से तीर साधा और छोड़ दिया। इतनी असुविधाजनक स्थिति में छोड़ा गया तीर भी अचूक रहा। मजिस्ट्रेट क्लीवलैंड छटपटा कर घोड़े से गिर पड़ा। अंत में तिलका मांझी के दमन का ज़िम्मा आर्थर कूट को सौंपा गया। शत्रु के प्रति अंग्रेज कितने क्रूर थे, उन्होंने उसे अनेक यातनाएँ दीं; घोड़े के साथ बाँध कर बाज़ार में घसीटा। जब वह मृतप्राय हो गया, तब उसे एक पेड़ से लटका कर फाँसी दे दी। भागलपुर में तिलका मांझी की भव्य प्रतिमा पूछ रही है क्या बिना तीर-कमान के स्वतंत्रता प्राप्त हुई है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

१८७८, मध्य प्रदेश में निमाड़ इलाके के विरदा गाँव में जन्मा साधारण किसान भाऊ सिंह का बेटा तांतिया भील, अपार साहसी सरदार था। पिता की मृत्यु के बाद तांतिया ने खेती का काम संभाला। सूखा पड़ा, इलाके की फ़सल नष्ट हो गई। जिन किसानों ने मालगुज़ार को घूस दिया, उनकी लगान माफ़। तांतिया ने लगान न देने के लिए लोगों को मनाया। इसे अपराध मान उसे पैतृक ज़मीन से बेदखल किया गया। आदेश न मानने पर एक वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। जेल से छूटा तांतिया किसान से मजदूर हो गया। किन्तु तांतिया बाहुबल से अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने के लिये विद्रोही बन गया। अफसरों से ठन गई। सन् १८७८ के बाद ८ वर्षों से तांतिया के गिरोह ने ४०० से अधिक डाके डाले। जिस दरोगा को तांतिया से निपटने भेजा तांतिया ने उसकी नाक काट ली। पुलिस का दबाव निरंतर बढ़ता ही गया। बिजनिया और दोपिया नामक उसके विश्वसनीय साथी पकड़े गये। बिजनिया को फाँसी और दोपिया को आजीवन कारावास की सज़ा हुई। ४५ वर्ष की आयु में तांतिया के साथ विश्वासघात हुआ और धोखे से गिरफ्तार करा दिया। सितंबर १८८६ में उस पर मुकदमा चलाया गया और उसे फाँसी की सज़ा दे दी गई। अंग्रेजी सरकार ने उसकी मृत्यु पर बड़े चैन की साँस ली। क्या इसे भी बिना ढाल की जीत कहेंगे।

(चार)

वीर सावरकर ने सन् १८५७ के महाविद्रोह को 'भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम' कहा। अंग्रेज लोग प्रचार करते थे कि 'देसी सिपाहियों ने बगावत कर दी' अर्थात् कम्पनी सरकार के प्रति ली गई निष्ठा की शपथ को तोड़ कर अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठा लिये। किन्तु सन् १८५७ के महाविद्रोह के साथ कई प्रकार के लोग कटिबद्ध हुये थे। एक, वे महाराजा, राजा और जागीरदार, जिनके राज्य और जागीरें ईस्ट इंडिया कंपनी ने छीन ली थीं। दूसरे, वेतन और सेवा शर्तों से असंतुष्ट और अपमानित देसी सिपाहियों का। तीसरे, धर्म गुरु और धर्म प्रचारक। हिंदू और मुस्लिम, दोनों ही धर्म प्रचारक अंग्रेजों की ईसाई धर्म प्रचार की नीति से क्षुब्ध थे। चौथे वे प्रबुद्ध राजनेता जो यह समझ रहे थे कि 'सोने की चिड़िया' अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के कारण कंगाल हो रही है। देशी उद्योग धंधे योजना से उजाड़े जा रहे थे, इंग्लैण्ड का माल यहाँ बिक रहा था।

यह समझना ही होगा कि देश में कुछ कमजोरियाँ भी थीं। जो प्रकारांतर से आज भी हैं। एक तरफ जन साधारण में अंग्रेजों के प्रति उतनी घृणा और शत्रुता नहीं थी, जितनी अपेक्षित थी। कारण देश की आम जनता मुगलों और मराठों के लूट-मार भरे शासन के कष्टों को भूली नहीं थी। दूसरी तरफ हिंदुस्तान में फिर मुस्लिम शासन स्थापित करने का प्रयास स्वीकार नहीं था। नेपाल का प्रधानमंत्री राणा जंगबहादुर गोरखा सेनाओं को लेकर अंग्रेजों की सहायता के लिये आया क्यों, किसी से छिपा नहीं है। नाभा और पटियाला के सिख राजाओं ने भी अंग्रेजों को सैनिक सहायता दी क्यों ? क्या वे भीरू थे या अंग्रेजों की सुविधा के मोहताज या अनुकम्पा-विनीत थे?

आश्चर्य की बात यह है कि हैदराबाद के निज़ाम ने भी अंग्रेजों की सहायता की थी। वह मराठों की सहायता से सम्राट बने बहादुरशाह ज़फ़र के अधीन रहने को तैयार नहीं था। इसके साथ ही १८५७ के संग्राम की विफलता के प्रमुख कारण, 1. क्रांतिकारी सेना की कमान किसी एक नेता के हाथ नहीं थी। हर सेनानायक स्वतंत्र लड़ाई लड़ रहा था। 2. अंग्रेजों के शस्त्रास्त्र यथेष्ठ, अच्छे और आधुनिक थे 3. अंग्रेजी सेनाओं में अनुशासन था। 4. सिख, गुरखा और दक्षिण भारत की सेनाएँ अंग्रेजों की सहायता के लिये आ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
गई थीं। स्वतंत्र देश के लिए आज भी यह सूत्र उतने ही समीचीन है जितने उस वक्त थे! इन परिस्थितिजन्य कमजोरियों के बावजूद हमारे उत्सर्ग और अंग्रेजों की क्रूरता को समझना होगा। हडसन, बहादुरशाह को वचन दिया गिरफ्तारी के बाद राजपरिवार को कोई हानि नहीं पहुँचाई जायेग। बहादुरशाह ज़फ़र, बेग़म ज़ीनत महल और चार जवान राजकुमार मिर्ज़ा मुग़ल, मिर्ज़ा अबूबकर, मिर्ज़ा खिज्र सुल्तान और मिर्ज़ा अब्दुल्ला गिरफ्तार हो गये। किन्तु क्रूर हडसन खूनी दरवाजे के निकट पहुँच उसने स्वयं तलवार से चारों के सिर काट दिये। वह क्रोध से इतना अंधा था कि उसने उनका खून पिया और कहा- 'यदि मैं इनका खून न पीता, तो पागल हो जाता।' उसने चारों युवकों का सिर एक थाल में रख कर सम्राट बहादुरशाह ज़फ़र के सामने उपहार के रूप में प्रस्तुत कर दिये और कहा- 'मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार कीजिये।' यहाँ गांधी के गुण्डा और अंग्रेजों की क्रूरता की मन:स्थिति को ठीक से समझना होगा। आज जब हम भारत के पूर्वांचल, पश्चिम बंगाल, केरल को देखते हैं अथवा अपने पड़ोसी खंडित भारत के सात अंगों को देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि कालग्राही क्रूरता अपने छद्म रूप में आज भी हमारे ऊपर चारों ओर से छाई है। इसे बिना समझे हम बिना ढाल और तलवार के स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेंगे क्या? इसके बाद भी हम गुनगुना रहे हैं कि हमारी स्वतंत्रता बिना रक्तपात के अहिंसा से प्राप्त हो गई? धन्य है रे हिन्दुस्तान!

(पाँच)

कुछ और दृश्य पलटते हैं। गदर से प्रथम महायुद्ध तक क्रांतिकारी आंदोलन के पितामह श्याम जी कृष्ण वर्मा, वासुदेव बलवंत फड़के, चाफेकर बंधु, मादाम भीमाजी कामा, अंबा प्रसाद सूफी, सरदार अजीत सिंह, मानवेन्द्र नाथ राय, ऋषि क्रांतिकारी लाला हरदयाल, राजा महेंद्रप्रताप, हाफीज़ मोहम्मद बरकतुल्लाह, डॉ. चंपकरमन पिल्लई, पाण्डुरंग सदाशिव राव खानखोजे, अरविंद घोष, मोतीलाल राय, वारीन्द्रकुमार घोष, खुदीराम बोस, प्रफुल्लकुमार चाकी, उल्लासकर दत्त, कन्हाईलाल दत्त, सत्येंद्रनाथ वसु, सुशीलकुमार सेन, चारुचंद्र बोस, वांची अय्यर, बाघा जतिन, रासबिहारी बोस, मास्टर अमीरचंद्र, अवधबिहारी, वसंतकुमार विश्वास, भाई बालमुकुंद और रामरक्खी, शचीन्द्रनाथ सान्याल, जोगेशचंद्र चटर्जी, गणेश दामोदर सावरकर, मदनलाल ढींगरा, एम.पी. तिरुमल आचार्य, अनंत लक्ष्मण कान्हेरे, विनायक नारायण देशपाण्डे। क्या इनका कोई योगदान नहीं? और अधिक देखना है, गिनती करना है तो एक यात्रा सेल्युलर जेल (पोर्टब्लेयर) की कर, देख आना चाहिए जहाँ देश भर के सपूतों की सात सौ से अधिक बन्दियों की सूची लगी है। रोंगटे खड़े हो जाते हैं उस कोल्हू को, उस फाँसी घर को देख कर। वहाँ एक ओर यातनाओं का साक्षात् यमराज निवास करता था तो दूसरी ओर अंग्रेजों का ऐय्याशगाह था।

राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद आदि ने स्वतंत्रता की बौद्धिक धूनी भारत से लेकर विदेश तक सुलगाई। लंदन में 'इंडिया हाऊस' (भारत भवन) बना, जहाँ श्याम जी कृष्ण वर्मा, मादाम भीका जी कामा, लाला हरदयाल, विनायक दामोदर सावरकर, म.प. तिरुमल आचार्य जैसे लोग क्रांतिकारी संघर्ष का वातावरण तैयार करते रहे और उसकी लपटें भारत में फैलने लगीं। अरविंद घोष और उनके साथियों ने 'युगांतर' आश्रम और पत्रिका द्वारा प्रचार और बम प्रहार का श्री गणेश किया। श्रीमती ऐनी बेसेण्ट कहती हैं, 'स्वामी दयानंद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने घोषणा की थी कि, ''भारत भारतीयों के लिये है।''

स्वामी दयानंद जिन्होंने कहा कि 'भारत भारतीयों का है।' फ्रेंच लेखक रोमारोला के कथनानुसार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'स्वामी दयानन्द सरस्वती राष्ट्रीय भावना और जन जाग्रति के लिए प्रयत्नशील थे।' लोकमान्य तिलक ने उन्हें 'स्वराज्य का प्रथम सन्देशवाहक' कहा। सुभाषचन्द्र बोस ने 'आधुनिक भारत का निर्माता' माना। सर सैयद अहमद खाँ ने उन्हें 'विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति' कहा। उनके अनेक शिष्य थे, जिनमें एक थे भारत के सर्वप्रथम क्रांतिकारी पं. श्याम जी कृष्ण वर्मा।

उनके प्राणांत होने के दो महीने बाद श्याम जी भारत आये। अंग्रेजी भारत में दम घोटनेवाली दासता का वातावरण था। जब स्वराज्य का उद्घोष करने वाले श्री बाल गंगाधर तिलक को सरकार ने सज़ा देकर बर्मा (वर्तमान में म्यांमार) में नज़रबंद कर दिया, तब श्याम जी भारत से इंग्लैण्ड गये और सन् १९०५ में लंदन में अपने पैसे से एक तिमंज़िला मकान खरीदा, जिसका नाम 'इंडिया हाऊस' (भारत भवन) रखा गया। श्रीमती भीकाजी कामा, विनायक दामोदर सावरकर, भाई परमानंद, धर्मवीर, लाला हरदयाल, सेनापति बापट जैसे क्रांतिकारी इंडिया हाऊस में रहते रहे थे। 'भारत भवन' भारत की स्वतंत्रता के लिये जूझने वाले युवकों के लिये ऊर्जा स्त्रोत और मार्गदर्शक बन गया था।

इधर वासुदेव बलवंत फड़के ने महाराष्ट्र के सात जिलों में से सतारा को अपना केन्द्र बनाया। जिलों में बंद कैदियों को छुड़ा कर सैनिक बना लिया। १७ फरवरी, १८८३ को देश की स्वाधीनता का स्वप्न देखते-देखते प्राण त्याग दिए। और १८ अप्रैल, १८९८ को दामोदर हरि चाफेकर को फाँसी दे दी गई।

सन् १९०७ में १८ अगस्त को जर्मनी में ४६ वर्षीया भीकाजी ने भाषण में कहा- ''सारे संसार की जनसंख्या का पाँचवाँ भाग हिंदुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवाद की एड़ियों तले कुचला जा रहा है। हिंदुस्तान की धन दौलत से इंग्लैण्ड ऐश कर रहा है और यहाँ के लोग भूखों मर रहे हैं। मेरा प्रस्ताव है कि संसार के सभी स्वतंत्रता प्रेमीजन हिंदुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के क्रूर पंजों से मुक्त होने में भरपूर सहयोग करें। अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराने के लिये शस्त्र उठाना हिंसा नहीं है। अंग्रेज स्वयं हिंसक हैं; उनसे अहिंसा द्वारा नहीं निपटा जा सकता।'' यह भारत का अहिंसा का मत था।

मदनलाल ढींगरा द्वारा १० मई, १९०८ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की अर्ध शताब्दी मनाने का आयोजन किया गया था। इस पर मुकदमा चला। मदनलाल ने कहा- 'मैंने जो कुछ किया, ठीक किया। अंग्रेजों को भारत पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। कल यदि जर्मन लोग इंग्लैण्ड पर कब्जा कर लें, तो अंग्रेज भी वही करेंगे, जो मैंने किया है।...' अन्तत: १७ अगस्त, १९०९ को फाँसी दे दी गई। भारत माँ का एक और सुपुत्र स्वतंत्रता की वेदी पर बलि चढ़ गया। ११ मई, १९१५ को अंबाला जेल में मास्टर अमीरचंद और अवध बिहारी, दोनों को फाँसी दे दी गई। आत्मासिंह, कालूसिंह और चानन सिंह को ६ अगस्त, १९१५ को फाँसी दे दी गई। बूटासिंह को १२ अगस्त को और बंता सिंह को १४ अगस्त, १९१५ को फाँसी दी गई। यह शहीदों की गिनती यहीं नहीं रुकती। एक लम्बी कतार है, जिनमें सूर्यकुमार (मास्टर दादा), लोकनाथ बल, गणेश घोष, अनंत सिंह, कल्पना दत्त और प्रीतिलता वादेदार, वीणा दास और कल्याणीदेवी, राखालचंद्र डे, शैलेशचंद्र राय, अल्लूरि सीताराम राजू, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, अनंतहरि मित्र, प्रमोदरंजन चौधरी, सुनीति चौधरी, शांतिसुधा घोष, मिदनापुर के शेर मृगेंद्रकुमार दत्त, अनाथबंधु पांजा, निर्मलजीवन घोष, बृजकिशोर चक्रवर्ती, रामकृष्ण राय, दिनेश गुप्त, सुधीर गुप्त, विनय बोस, कन्हाईलाल भट्टाचार्य, गोपीमोहन साहा, दिनेशचंद्र मजूमदार, गेंदालाल दीक्षित, पंडित रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला खाँ, राजेंद्र लाहिड़ी, शचीन्द्रनाथ बख्शी, मन्मथनाथ गुप्त, गोविंदचरण कर, चंद्रशेखर 'आज़ाद', भगवतीचरण वोहरा, दुर्गा भाभी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव, शिवराम हरि राजगुरु, यतींद्रनाथ दास, जयदेव कपूर, महावीर सिंह, भगवान सिंह माहौर, सुशीला दीदी (सुशीला मोहन), शिव वर्मा, सुखदेवराज, वैकुंठनाथ शुक्ल, प्रोफेसर नंदकिशोर निगम, यशपाल और प्रकाशवती पाल, रामसिंह, इंद्रपाल (आतिशी चक्कर), क्रांतिकारियों का दबंग वकील श्यामलाल, चंद्रसिंह गढ़वाली, वासुदेव बलवंत गोगटे, रानी गाइडिनल्यू, ऊधमसिंह।

सन् १९१९ से १९३९ तक अहिंसक सत्याग्रह और बम पिस्तौलों से सरकारी कर्मचारियों की हत्या, दोनों ही संघर्ष साथ-साथ चलते रहे। स्वाधीनता के लिये उतावले कुछ लोग तो दोनों में ही भाग लेते रहे। उन दिनों बंगाल में दो क्रांतिकारी दल थे- (1) अनुशीलन समिति और (2) युगांतर। अनुशीलन समिति पहले बनीं, जिसमें यतींद्रनाथ वंद्योपाध्याय, सुरेंद्रनाथ ठाकुर, सतीशचंद्र वसु, देशबंधु चित्तरंजन दास, डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार, अरविंद घोष, प्रमथनाथ मित्र आदि क्रांतिकारी सम्मिलित हुये। बाद में इनमें से कुछ लोगों ने अलग होकर युगांतर दल बनाया, जिसमें अरविंद घोष के भाई वारींद्रकुमार घोष और स्वामी विवेकानंद के भाई भूपेंद्रनाथ दत्त आदि सम्मिलित हुये। सुभाषचंद्र बोस भी इसके समर्थकों में थे।

सन् १९२२ में गोरखपुर जिले के चौरीचौरा गाँव में एक बड़ी घटना घट गई। सत्याग्राही भीड़ ने जुलूस निकाला। अंग्रेज-भक्त हिंदुस्तानी पुलिस ने भीड़ पर गोलियाँ चलाईं। कई लोग मारे गये। कार्रवाई के लिये १८ अप्रैल, १९३० का दिन तय हुआ। रात के ९.३० बजे ६२ युवक सिर पर कफन बांध कर भारत की अंग्रेजी सरकार को चुनौती देने के लिये रवाना हुये। जलालाबाद की लड़ाई में ११ क्रांतिकारी, शहीद हुये। केवल एक क्रांतिकारी अर्धेन्दु दस्तीदार घायल अवस्था में गिरफ्तार हुआ। उसे पुलिस ने जघन्य यातनाएँ दीं, परंतु उससे कुछ भेद उगलवाया न जा सका। सन् १९४२ के शहीद- हेमू कालानी के साथ कौशल कुमार, उमाकांत सिंह, लाल पद्मधर सिंह आदि शहीद हुए। विचारणीय यह है कि १९१५ के पहले भी इस देश में कितना उत्सर्ग हो चुका था, जिसे बिना ढाल के आजादी कह कर हम क्या संदेश देना चाहते हैं?

(छह)

कुछ अनाम स्वतंत्रता आन्दोलन में भूमिका निभा रहे साहित्यकारों का स्मरण करें, श्रद्धाराम फिल्लौरी, 'ॐ जय जगदीश हरे' कि आरती जन-जन की प्रिय हो गई। वे जनता में देशभक्ति की भावना भरना चाहते थे। वंशीधर शुक्ल, ''कदम-कदम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाए जा / यह जिंदगी है कौम की, तू कौम पर लुटाए जा।''। यह कालजयी देशभक्ति की ओजपूर्ण आह्वान करने वाली पंक्तियाँ जन-जन की जुबान पर थीं। ''उठ जाग मुसाफिर भोर भई, / अब रैन कहाँ जो सोवत है, / जो सोवत है वह खोवत है, / जो जागत है सो पावत है। / उठ नींद से अँखियाँ खोल जरा / पल अपने प्रभु से ध्यान लगा / यह प्रीत करन की रीति नहीं / जग जागत है तू सोवत है।' मध्य प्रदेश में जन्में प्रदीप के योगदान को हम नहीं याद कर पा रहे हैं, क्यों? ऐसे अगणित रचनाकार देशभक्तों को हमने भुला दिया गया। उनकी मेधा, त्यागवृत्ति, सहनशीलता, पारिवारिक पीड़ा, जोश, पुरुषार्थ सभी को तत्कालीन सत्ताधारियों ने याद नहीं किया। 'तू कौम पर लुटाये जा।' अथवा ''सर बाँधे कफनवा हो /शहीदों की टोली निकली। आगे 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा / झंडा ऊँचा रहे हमारा / शान न इसकी जाने पाए / चाहे जान भले ही जाए।' यह झंडा गीत आजादी के पच्चीस वर्ष पूर्व क्रांतिकारियों, देशभक्तों के गले का कंठहार बना था। आजादी के दीवाने प्रातः ६ बजे से पूर्व प्रभातफेरी निकालते और गली-गली घूमकर लोगों को आजादी के लिए सर्वस्व कुर्बान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने का आह्वान करते और उनमें चेतना जगाते। इस गीत को आजादी के दीवानों ने सर कटाने की तैयारी के साथ गा-गा कर समग्र भारत में गुँजायमान कर दिया। स्वतंत्रता-पूर्व आजादी के महामंत्र के रचयिता श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' को बहुत कम लोग जानते हैं। गीत अमर गायक ओझल हो गये? विचार करें आज भी हम 'दे दी आजादी' खड़ग बिना ढाल गवा रहे हैं?

विभाजन के बाद जो साहित्यकार पाकिस्तान में कुछ दिन रहे और उन्होंने जो देखा, भोगा, चीत्कारें, सुनी, नारी जीवन और बालजीवन की जो दुर्दशा देखी, उस वेदना का वर्णन असम्भव है। उन्होंने नारी का नारीत्व कुचलते, मसलते, बिखरते, रौंदे जाते हुए देखा है। इन हकीकतों को 'खोल दो' 'टोबाटेक सिंह', 'नंगी आवाजें', 'ठंडा गोश्त', 'स्याह हाशिये' आदि कहानियाँ पाठकों के दिल में मथकर रख देती हैं। 'खोल दो' कहानी इतनी करुण है कि जिसने भी एक बार पढ़ी जीवन भर नहीं भूल सका। मण्टो ने उन्नीस वर्ष तक लेखन कार्य किया और लगभग ढाई सौ कहानियाँ लिखीं। अमेरिका ने लेखक मंटों को पद पुरस्कार देने का निमंत्रण भेजा तो उन्होंने जवाब में लिखा "मण्टो को कोई खरीद नहीं सका।" कुछ वर्ष छोड़कर वे जीवन भर भारत में ही रहे, भावुक स्वभाव के कारण उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया। मण्टो का पार्थिव शरीर १ जनवरी, १९५५ को खाक में मिल गया। आज का लेखक मण्टों की छाया भी हो सकता है?

दुर्भाग्य यह है कि ऐसे अगणित क्षर शरीर अक्षर हुतात्माएँ न केवल हमारे इस पीढ़ी के मानस से सयास गायब है बल्कि पुस्तकालयों, साहित्यजगत से भी। क्या इनके बिना आजादी सम्भव थी? फिर आज देश इनमें से कितनों को याद कर रहा है? कितनों के जीवन को शिक्षण संस्थाएँ पाठ्यक्रम में रख रहीं हैं? साहित्यकार तथा राजनेता पाठ्यक्रम में आ रहे हैं तो हुतात्माएँ गायब हो रही हैं?

(सात)

अगस्त, १९४७ को खंडित हिंदुस्तान स्वतंत्र हुआ। भारतवर्ष संवैधानिक रूप से इण्डिया और पाकिस्तान दो ब्रिटिश शासन के डोमीनियन स्टेट घोषित हो गये। खण्डित मातृभूमि का कर्ज चुकाने कम से कम १० लाख निरीह निहत्थे नागरिक मारे गये; तीन करोड़ लोग अपने घरों से निकल जाने को विवश हुये। इस रक्तपात और हाहाकार के बीच १४-१५ अगस्त की आधी रात में दिल्ली में स्वतंत्रता प्राप्ति का हर्षोत्सव मनाया गया। मुझे ज्ञात नहीं क्या उस दिन भी यह गीत गाया गया होगा, 'दे दी आजादी बिना खड़ग बिना ढाल...।' तब महात्मा गांधी जिन्दा थे। उनके आँसू नहीं थम रहे थे। आज तक कोई बता नहीं पा रहा है कि जब देश विभाजित मातृभूमि की, 'जश्न-ए-आजादी' मना रहा था तब महात्मा गांधी कहाँ थे? खैर।

स्मरण रहे गाँधी की १५०वीं जयन्ती मनाने की तैयारी हो रही है। प्रश्न यह है कि हम किस गाँधी को विश्व के सामने रखना चाहते हैं? वह गाँधी जिसकी आरजू १२५ साल जीने की थी और जिसे ८० साल भी जीने का अवसर नहीं मिला अथवा उस गाँधी को जो अन्याय के खिलाफ लड़ने का रास्ता बताता है कि अन्याय के प्रतिकार के दो प्रकार हैं। एक है "अन्याय करने वाले का सिर तोड़ना और ऐसा करते हुए अपना भी सिर तुड़वाना। संसार में सभी शक्तिमान लोग इसी मार्ग का अवलंबन करते हैं।" दूसरा मार्ग, "तुमको स्पर्श तक नहीं क्रेंगे और इन हड्डियों में जान रहने तक हमसे तुम्हारे मनमाने कानून का पालन होना असंभव है।" अथवा "जहाँ हजारों स्त्री-पुरुष का आत्मबल एकत्र हो, जहाँ असंख्य नर-नारी प्राण हथेली पर लिये हों, वहाँ कौन-सी बात असंभव है?" और गाँधी ने इसके लिए २३२९ दिन जेल में काटे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

१४२ दिनों तक उपवास किया। अथवा अल्बर्ट आइंस्टाइन का वह ''गाँधी जिसे किसी बाहरी शक्ति की आवश्यकता नहीं, एक ऐसा राजनीतिज्ञ जिसकी सफलता किसी चाल या किसी यंत्र की मोहताज नहीं थी...।'' अथवा वह गाँधी ''जो सत्य का प्रयोग जीवन भर करते रहे और अपनी असफलताओं को गिनाते रहे'' या वे गाँधी जो ''दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत तक में अस्पृश्यता, गरीबी, भुखमरी, जातीय संवेदनाओं को लेकर संघर्ष करते रहे।''

वर्तमान और भावी भारत को यदि गाँधी को समझाना है और उनके आध्यात्मिक जीवन को समझ कर भारतीय चिति-चेतना को अपने अन्दर आत्मसात करना है तो उन्हें विमर्श से बचाने की महती आवश्यकता है। उनके यशोगान में अतिशयोक्ति से बचने की आवश्यकता है। अन्यथा हम पूरी हुतात्माओं की परम्परा को अनजाने विश्वमंच से ओझल कर देंगे जिसका परिणाम आनेवाले पीढ़ी को भुगतना होगा। ध्यान रहे संयुक्त राष्ट्र संघ के १९३ सदस्य देश २ अक्टूबर को हमेशा महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म दिन मनाते हैं और मैं समझता हूँ कि वे हमसे अधिक गहराई से गाँधी के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को समझते हैं।

अन्त में भारत के तमाम लोगों के लिए गाँधी की यह अपील आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कभी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों को दिये भाषण में थी, ''आप लोग अपने विश्वविद्यालय पर गर्व करते हैं और खुश हैं। आप यह सोचकर खुश है कि आपको यहाँ जो कुछ भी मिल रहा है, उसके लिए आप विदेशी सरकार के कर्जदार नहीं हैं क्योंकि यह सब आपके देशवासियों द्वारा प्रदत्त है। लेकिन मैं बता देता हूँ कि आप गलती पर हैं। आप अपने सर्वाधिक गरीब किसान के कर्जदार हैं। ये रैयत हैं जो आपको यहाँ रखते, खाना-कपड़ा देते हैं। इन भव्य सभा-भवनों को गरीबों ने बनाया है। यह स्थान कामगारों के खून-पसीने से बना है। आप इनके गुण से तभी मुक्त हो सकते हैं, जब यहाँ से निकलने के बाद आप अपने शेष जीवन उनकी सेवा में लगा दें।'' यह गांधी का आज के लिए शक्ति और आत्मबल का संदेश है, इसे ठीक से समझना होगा न किअतिरेकी व्यक्ति वन्दना से।

प्रणाम।

-उमेश कुमार सिंह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धर्मपाल

स्वाधीनता से वंचित होने की चिन्ता

भारतीय समाज, भारतीय मानस, भारतीय समाज व्यवस्था को तथा यूरोपीय समाज और वहाँ की व्यवस्था और मानस को, पिछले दो-ढाई सौ वर्षों में हुई इन दोनों की टकराहटों को और उससे भारत पर पड़े विभिन्न प्रभावों को समझने का कुछ प्रयास मैं करता रहा हूँ। मैं स्वाधीनता से वंचित कर दिये जाने के अनुभव से भारतीयों में चले वैचारिक मंथन तथा प्रतिनिधि-रूपों पर और उनके द्वारा निकाले गये निष्कर्षों पर कुछ कहूँगा। इन विचारों और निर्णयों की आज के हमारे परिवेश, हमारे देश, हमारे समाज और राज्य की दशा तथा रचना में निर्णायक भूमिका है। हम आज भी उन्हीं के मध्य जी रहे दिखते हैं। इसी के साथ मैं उस तैयारी के बारे में कुछ संकेत दूँगा, जो अपने विश्वविजय अभियान के लिए ब्रिटेन ने की तथा जो यूरोपीय मानस की पृष्ठभूमि रही। उस तैयारी की अवधि में ब्रिटेन का समाज किन आधारों पर संगठित था, शिक्षा, ज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि में उसकी क्या स्थिति थी, इस पर भी कुछ प्रासंगिक चर्चा हो जायेगी।

मैं मुख्यत: इस पर विचार व्यक्त करुँगा कि यूरोपीयों से ऐसी टकराहट के पूर्व तथा अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हमारी समाज-संरचना, शिक्षा-व्यवस्था, विद्या-संस्थाएँ, समाज-व्यवस्थाएँ, राजतंत्र, धर्मतंत्र, एवं हमारे लोक मानस का तंत्र कैसा था। विज्ञान और प्रौद्योगिकी, श्रम-मूल्य-भुगतान तथा परस्पर मानवीय संबंध पर प्रकाश डालने वाली उस काल से संबंधित सामग्री में से भी कुछ मैं आपके सामने रखूँगा।

लक्ष्य क्या हैं और कौन-से हो सकते हैं और उनमें कुटिल पथ कौन-सा है और ऋजु पथ कौन-सा है, यह विचार करते रहने की अपनी परंपरा रही है। स्वयं वाणी को भी द्वार एवं पथ कहा गया है, अत: विचार एवं वाणी के स्तर पर हम पथ का अन्वेषण करें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और उसी प्रक्रिया में कर्म पथ की भी खोज होती चले, यही हमारे यहाँ प्रत्येक विद्या प्रक्रिया का लक्ष्य रहा है। ऋग्वेद में 'ऋतस्य पन्था' यानी ऋत और सत्य के पथ की तथा 'अनृत-पथ' की बात है। उपनिषदों में भी बार-बार 'पथ' पद का प्रयोग है। आत्मज्ञान के रास्ते पर बढ़ रहे साधक की तुलना गांधार-पथ पर पूछ-पूछ कर आगे बढ़ रहे पथ गवेषी से की गई है। ईशोपनिषद् की मुख्य प्रार्थना ही है कि 'चेतना अग्नि! हमें सुपथ में प्रवृत्त रखो, जटिल पथों से दूर रखो।' पथों की अनृतता की बात हमारे यहाँ कही गई है। अत: देश, काल और पात्र का विचार कर, अपने लक्ष्य या श्रेयस् का ध्यान रखते हुए ऋजु-पथ, ऋत-पथ की खोज हमारे यहाँ प्रत्येक विमर्श का और सहचिंतन का उद्दिष्ट रहा है। हमारे लक्ष्य क्या हैं और उनकी प्राप्ति के सुपथ, ऋजु-पथ या श्रेयस्कर पथ क्या हैं, यह हमारे चिंतन का अभीष्ट है।

अपने इस विमर्श का समापन भी इसी प्रकार रहेगा। इतिहास और वर्तमान का विचार और स्मरण करते हुए हमें भविष्य की संभाव्यताओं के बारे में सोचना होगा। भावी समाधानों की विवेचना करनी होगी। समाधानों और संभाव्यताओं का यह विचार, पथ के विचार की ओर ले जायेगा। हम किस पथ का वरण करें और क्यों? हमारे सामने, कौन-कौन से पथ हैं? उनमें से सुपथ या ऋजु-पथ कौन सा है, कुटिल-जटिल पथ कौन से हैं। किस पथ पर प्रस्थान करने पर क्या गति होगी या हो सकती है, इन सब पर हम संक्षेप में अंतिम क्रम में विचार करेंगे। अपने व्यष्टि-चित्त और समष्टि-चित्त, संस्कार और सामर्थ्य, परंपराएं और कुंठाएँ- इन पर विचार के साथ प्रासंगिक यूरोपीय संदर्भ सामने आयेंगे। आज की हीनता को गहराई से समझने पर उसे दूर करने के क्या उपाय या मार्ग हो सकते हैं, इसका विचार भी आयेगा।

मेरी बातचीत में कोई सुस्पष्ट एवं निर्णीत पथ-निर्देश होना संभव नहीं है। तथ्य, उनसे निगमित निष्कर्ष और जिज्ञासाएँ, बहुत-से वैचारिक द्वन्द्व, हम सबसे धीरता एवं सहचिंतन की अपेक्षा करती बौद्धिक व्यग्रता-यही सब इनमें से शायद निकलें। अपने बृहत समाज से और अपनी समष्टि चेतना से, बृहत् ऋत से, विराट भाव से अपने सम्बन्ध की सम्यक पहचान की व्यग्रता ही तो वास्तविक बौद्धिक व्यग्रता है। वह व्यग्रता हममें जाग्रत रहे तो प्रशस्त पथ, सुपथ या 'ऋतस्य पन्था:' भी हमारी प्रज्ञा में कौंधते रहेंगे, ऐसा आश्वासन हमारे पूर्वजों ने, हमारे अवतारों ने, हमारे देवता-गणों ने, हमारी दैवी शक्तियों ने दे रखा है। अत: उस श्रद्धा भाव के साथ ही यह विमर्श, यह संवाद आरंभ करना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने सन् १९०९ ईस्वी में 'हिन्द स्वराज' लिखा था, जिसमें भारत और यूरोप की टकराहट को दो सभ्यताओं की टकराहट के रूप में देखा-बताया गया था। १९२० और १९३० ईस्वी वाले दशकों में गाँधीजी ने भारतीय समाज की दशा के बारे में और योरप, विशेषत: इंग्लैंड से विभिन्न क्षेत्रों में उसकी तुलना के बारे में प्रभूत सामग्री लिखी ही थी, अन्य लोगों ने भी ऐसी सामग्री बड़ी मात्रा में प्रकाशित की थी। उदारणार्थ 'यंग इंडिया' में ई. १९२० के दशक के प्रारंभिक वर्षों में ही गाँधीजी ने इन विषयों पर बहुत से लेख लिखे व प्रकाशित किये थे- १८वीं शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध और १९वीं शती ईस्वी के प्रारंभिक काल में स्वदेशी भारतीय शिक्षा की दशा, अंग्रेजों के आने से पूर्व की भारतीय सामाजिक जीवन दशाएँ और उनके प्रभुत्व-काल में बढ़ी भारतीय समाज की दरिद्रता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और दुर्दशा, १८०० ईस्वी तक दक्षिण भारत में तथाकथित अन्त्यज लोगों (जिसमें दो चार जातियाँ ही आती थी) की अथवा महाराष्ट्र में महारों की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी स्थिति जो ब्रिटिश आधिपत्य होने पर बिगड़ती चली गयी तथा अन्य ऐसे ही विषय। इन लेखकों में गाँधीजी के अनुयायी या प्रशंसक ही सम्मिलित नहीं थे। सर शंकरन नायर ब्रिटिश वायसराय की कौंसिल के एक सदस्य थे। वे तथा उन जैसे अन्य लोग भी इसी प्रकार से लिखने लगे थे। स्पष्ट है कि उस समय के पढ़े-लिखे लोगों के विविध समूह इन तथ्यों को जानते थे। सर शंकरन नायर ने ईस्वी १९१९ में लिखा था कि अन्त्यज आदि की सामाजिक आर्थिक दशा में मुख्य गिरावट विगत डेढ़ सौ वर्षों में ही हुई है तथा भारतीय समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उल्लेखनीय ह्रास इसी अवधि में हुआ। मेरा अनुमान है कि २०वीं शती ईस्वी के आरंभ काल के अनेक समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, शोधपूर्ण गवेषणाओं, विशिष्ट विद्वानों की कृतियों, सृजनात्मक लेखकों-कवियों की रचनाओं आदि में इसी तरह की बहुत सी सामग्री उपलब्ध हो जायेगी।

संभवत: यह हुआ की ये सारी जानिकारियाँ अब से ५०-६० वर्ष पूर्व सामने तो आई, लेकिन इस समय वे भारतीय समाज का एक समग्र चित्र अंकित करने की दृष्टि से नहीं रखी गई। शायद जिज्ञासा-वर्धक भाव से ही या ऐसे ढंग से ही ये बातें अधिकांशत: रखी गईं, जिनमें आज अति भावुकता दिखती हो।

परंतु गाँधीजी ने १९०९ ईस्वी में ही 'हिन्द स्वराज' लिखा और हम सब भलीभाँति जानते हैं कि उसमें तथा अपनी अधिकांश कृतियों में गाँधीजी ने सदा संतुलित रूप में भारतीय समाज एवं राजनीति-तंत्र की एक ऐसी समग्र छवि, एक ऐसा रूप संकेत प्रस्तुत करने का उद्यम किया, जो कि उन्होंने इस समाज के सुदीर्घ अतीत से गतिशील जीवन के बारे में समझा था। हम यहाँ स्मरण करें कि 'हिन्द स्वराज' में असहयोग पर लिखते हुए गाँधीजी ने संकेत दिया था कि यह परंपरा भारत की स्वाभाविक परंपरा है और यह भारत में सदा से विद्यमान रही है। इसके दृष्टांत भी उन्होंने दिये। मेरा मानना है कि भारतीय बुद्धि एवं भारतीय समाज की क्रियाशीलताओं के स्वरूपों के बारे में अपने ऐसे बोध के कारण ही गाँधीजी सहजता से भारतीय बुद्धि एवं भारतीय समाज से संवाद कर सके, सहज वार्तालाप का सम्बन्ध रख सके तथा इसके कारण ही भारतीय जन गाँधीजी के सुझाए रास्ते को अपनाते रहे। १९४४ ईस्वी में गाँधीजी ने कहा भी था कि जब मैं भारत लौटा तो मैंने उन्ही भावों और विचारों को अभिव्यक्ति दी, जो कि भारतीय अपने मन में स्वयं पहले से जानते थे और अनुभव करते थे। निश्चित ही, गाँधीजी के नेतृत्व में भारत जो कुछ कर पाया और प्राप्त कर सका, उसके मूल में गाँधीजी की भारतीय समाज से यह सहज एकात्मता ही नहीं थी, उनकी संगठन क्षमता तथा अध्यात्मिक व बौद्धिक सामर्थ्य भी इस सफलता व उपलब्धि का आधार रही।

वृहत् भारतीय समाज में अपनी समाज रचना, समाज व्यवस्था और राज्य व्यवस्था के बारे में यह बोध परंपरा होते हुए भी और गाँधीजी द्वारा 'हिन्द स्वराज' में तथा अन्यत्र एवं दूसरे अनेक लोगों द्वारा 'यंग इण्डिया' समेत विविध स्थानों में, ब्रिटिश आधिपत्य से पूर्व के भारत के बारे में इतना सब कुछ लिखित साहित्य एवं साक्ष्य विद्यमान होते हुए भी, उन व्यक्तियों, समूहों और अंग्रेजों द्वारा रची गई उन समस्त व्यवस्थाओं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में, अधिकांशत: जो आज भी हमारे बीच में हैं, उस बोध-परंपरा की स्मृति बहुत कम दिखती है। स्वाधीनता-संग्राम के बोध के अंग के रूप में लिखी गई तथा एकत्र और सुरक्षित रखी गई उस ऐतिहासिक तथ्य सामग्री की भी कोई चेतना या स्मृति इन व्यक्तियों के समूहों में कम ही दिखती है, जिनके ऊपर अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद, सत्ता-हस्तांतरण के द्वारा, स्वाधीन भारत के शासन का दायित्व आया। स्थिति स्पष्ट है कि स्वाधीन होने पर भी हमारी समस्त शासकीय व्यवस्थायें और उनके साथ समस्त आधुनिक अशासकीय प्रवृत्तियाँ, आज भी बहुत कुछ उसी संरचना पर आधारित हैं, जो संरचना-तंत्र अंग्रेजों ने सन् १७६० से १८३० ईस्वी के मध्य, भारतीय व्यवस्थाओं एवं संरचना-तंत्र को नष्ट करने हेतु और उसी प्रक्रिया में रचे थे या फिर जो उन्होंने १९५७ ईस्वी के बाद अपने राज्य को भारत में और सुदृढ़ बनाने के लिये रचे थे।

यहाँ यह स्मरण किया जा सकता है कि सन् १९२० ई. तक भारत का राज्यकर्ता वर्ग या अभिजनों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा अपने समाज के बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर पर असंबद्ध हो चुका था और परकीयता अपना चुका था। इस वर्ग ने अंग्रेजों के आचार-व्यवहार और बोली या अभिव्यक्ति की विधियों को अंगीकार कर लिया था तथा ब्रिटिश संकल्पनाओं या अवधारणाओं एवं जीवन-रूपों के अनुरूप अपने निजी एवं सामाजिक जीवन को ढालने के लिए अग्रसर था। स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी के नेतृत्व वाले २५ वर्षों का काल-खंड भारत में विविध क्षेत्रों में संग्राम की दृष्टि से बहुत ही कम कहा जायेगा। यह भी सत्य हो सकता है कि जिन प्रमुख अभिजनों ने गाँधीजी का नेतृत्व स्वीकार किया और उसके द्वारा राज-सत्ता एवं राजनैतिक सत्ता प्राप्त की, वे गाँधीजी की भारतीय समाज की समझ को बहुत गंभीरता से नहीं ग्रहण करते थे और वे यह स्वीकार कर पाने में भी असमर्थ थे कि वैसा कोई भारतीय समाज आधुनिक विश्व में व्यवहार्य हो सकता है। इस राज्यकर्ता वर्ग के एक अधिक प्रबुद्ध और गाँधीजी के आत्मीय जनों में गिने जाने वाले सदस्य ने कहा ही था कि 'भला कोई यह कैसे कबूल कर सकता है कि गाँव के लोगों में भी कोई सदगुण और सामर्थ्य है! वे तो बड़े मूर्ख लोग हैं।'

इसमें तो आज कोई संदेह नहीं है कि यह अभिजात वर्ग भारतीय अतीत को आत्मसात् नहीं कर सका और भारत का भविष्य उसके अनुरूप रचने की नहीं सोच सका। किन्तु यदि उसमें तनिक भी सृजनात्मक सामर्थ्य होता, तो वह उस जानकारी को तो आत्मसात् कर ही सकता था, जो उसने पश्चिम से ग्रहण की थी और फिर इस जानकारी या सोच को वह भारतीय प्रत्ययों एवं अभिव्यक्ति रूपों में ढाल सकता था। लेकिन यह वर्ग अब तक भी तो इसमें विफल ही रहा है। लेकिन यह सृजनात्मक अक्षमता हमारे शक्तिशाली वर्ग या अभिजात वर्ग में ब्रिटिश काल में ही आई दिखती हो, ऐसा शायद नहीं है। ऐसा लगता है कि भारत के बहुत से क्षेत्रों में उसके बहुत पहले से यह अक्षमता घर कर चुकी थी। सुप्रसिद्ध आचार्य विद्यारण्य से प्रेरणा पा रहे विजयनगर राज्य में भी और स्वदेशी राज्य हेतु प्रेरणा देने वाले समर्थ गुरु रामदास से प्रेरित मराठों द्वारा १७वीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में 'हिन्द स्वराज' की स्थापना के प्रयास में भी राज्यकर्ता वर्ग ने बहुत सृजनात्मक सामर्थ्य नहीं दिखाया। अपने समाज और राजनीति तंत्र (पॉलिटी) को ऐक्यबद्ध करने, साथ-साथ चलने, संवाद और विमर्श करने तथा कार्य करने की एकता उत्पन्न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने में ये दोनों ही राज्य कुछ अधिक सफल नहीं रहे। भाषाशास्त्रियों का कहना है कि शिवाजी के समय में मराठी क्षेत्र में फारसी का प्रयोग बहुत बढ़ा-चढ़ा था। यहाँ तक कि शिवाजी के प्रारंभिक काल में राजकाजी मराठी में सत्तर-अस्सी प्रतिशत शब्द फारसी के होते थे। दक्षिण के १७वीं शती ईस्वी के संस्कृत प्रहसनों में भी इसीलिए मराठों की भाषा पर व्यंग्य किया गया। छत्रपति बनने के बाद अवश्य शिवाजी की राजकाजी मराठी में फारसी शब्दों की भरमार घटी और भाषायी स्वाभिमान की कुछ समझ बढ़ी। उस काल की मराठी में फारसी शब्दों की संख्या २० से ३० प्रतिशत तक मानी जाती है।

संभवत: ऐसा ही होता हो कि प्राय: सभी सभ्यताओं में ऐसे अंतराल आते हो जब बृहत समाज और राज्य से उसके संबंध छिन्न-भिन्न हो जाते हों अथवा निष्प्रभावी या व्यर्थप्राय हो जाते हों या प्रसुप्ति की दशा में जा पड़ते हों। हो सकता है कि पिछली कई शताब्दियों में हम इसी दशा, ऐसे ही अंतराल में जी रहे हों और शीघ्र ही वह समय आने वाला हो, जब भारत का राज्यतंत्र और राजनीति तंत्र (पॉलिटी) हमारे समाज की आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं को तो प्रतिबिम्बित करने ही लगे, साथ ही समाज के अपने व्यवहार-पथों, व्यवहार-विधियों एवं अभिव्यक्ति-विधियों को भी प्रतिबिम्बित करे, उन्हें सम्यक् प्रतिष्ठा दे।

यह भी संभव है कि यह प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी हो, जो निकट भविष्य में ही हमारे समाज और 'पॉलिटी' (राजनीति-तंत्र) के बीच के इस विखंडन को नगण्य सिद्ध कर दे और मेरी अधीरता शायद असम्यक् हो। जब हमने स्वाधीनता फिर से पा ली थी, उसी समय गाँधीजी ने किसी को लिखा था कि तत्काल बड़े परिणामों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए और १५० वर्षों की दासता से जर्जर भारत को पुन: स्वस्थ होने में कम से कम उससे आधे वर्ष तो लगेंगे ही।

तब भी, मेरी व्यग्रता का अंत नहीं दिखता। मुझे कुछ ऐसी अनुभूति होती है कि हमारा समाज और हमारा रजानीति तंत्र, दोनों दो विलग-विलग विश्वों में परिभ्रमण करने लगे हैं, तो इसके कहीं गहरे और दार्शनिक हेतु हैं। कुछ ऐसा दिखता है कि समष्टिगत भारतीय मानस और उसके अंगभूत भारतीय व्यक्ति के निजी मानस की स्वाभाविक संरचना, संस्कार और बोध-प्रवृत्ति ही ऐसी है कि भारतीय जन स्वभावत: एक ऐसे विश्व में रहने को तैयार नहीं हो पाते, जिसमें विभिन्न मानव समूहों या विविध क्षेत्रों के लोगों के मध्य परस्पर बैर-भाव एवं युद्ध-स्थिति, एक स्थायी लक्षण हो। इस विषय पर आधिकारिक रूप से निश्चित विचार व्यक्त करने की पात्रता मैं स्वयं में नहीं पाता। स्पष्ट है कि भारतीय मानस भी यदा-कदा, लड़ाई-झगड़ों तथा अन्य उपद्रवों-अनिष्टों को जीवन का स्वाभाविक अंग मानता है। पर इसके साथ ही, वह बैर-भाव या युद्ध-भाव को नित्य मानने की कल्पना भी नहीं कर पाता। अंतत: एक आंतरिक सौमनस्य स्थापित होकर शांति-लाभ होगा। सबका सह-जीवन, सह-अस्तित्व, अपने संपूर्ण वैविध्य, समस्त बहुरूपता एवं रूप-भेद, गुण-लक्षण-क्रिया भेद के साथ अपने-अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हो सकेगा, यह शायद भारतीय मानस का स्थायी भाव है। एक ऐसे संसार में जहाँ भारतीय शक्ति का निर्णायक प्रभाव हो अथवा कम से कम अपने बारे में भारत स्वावलम्बी एवं पर्याप्त समर्थ हो, पराजय की स्थिति न हो, यह स्थायी भाव एक उदात्त व्यवहार का आधार बनता है। किन्तु जब किसी ऐसी प्रबल शक्ति से सामना हो जाए जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वैर-भाव एवं युद्ध-भाव को शाश्वत मानवीय स्वभाव एवं कर्तव्य माने, अपने से अतिरिक्त अन्य प्रकार के जीवन-रूपों को नष्ट करने की या दूसरों को अधमरा करके अधीन बनाये रखने की योजना पर सतत् चले, तब स्थिति बदल जाती है। उस स्थिति में यदि पराजित, तेजहत भारतीय चित्त अपने समय और अपने सम्मुख उपस्थित संसार के इस स्थायी बैरभाव को समझ पाने को तैयार न हो, तब उसका स्थायी शांति-भाव तेजहीन होकर एक तरह से स्वयं को ठगने का विचार-जाल रचता है। शायद भारतीय चित्त 'कबिरा आप ठगाइए और न ठगिये कोय' जैसे अध्यात्म सूत्र की भ्रामक व्याख्या द्वारा इस दशा को उचित ठहराने का प्रयास करने लगता है। ऐसे में अद्वैत बोध का स्थान एक भ्रांत अद्वैतवादी तर्क-जाल ले लेता है, अद्वैत दर्शन का सारतत्त्व विवेक-सिद्धि तब उपेक्षित कर दी जाती है। वस्तुतः भेद की सम्यक् पहचान के सामर्थ्य का ही नाम विवेक है। सत् और असत् में 'स्व' और 'पर' में, स्वधर्म और विधर्म में, धर्म और अधर्म में भेद करने का सामर्थ्य ही विवेक है। परमार्थतः अद्वैत जो सत्ता है, उसका ज्ञान इस भेद-बोध सम्पन्न विवेक के बिना असंभव है। विवेक के अभाव में अद्वैत ज्ञान नहीं होता, किन्तु अद्वैतवाद का शब्दजाल, जिसे आदि शंकराचार्य ने चित्त को भटका डालने वाला महा-वन कहा है, प्रबल हो उठता है। अद्वैत-बोध सात्त्विक तेज है, अद्वैतवाद तामसिक प्रमाद। पराजित समाज में जब अपनी विद्या-संस्थाएँ नहीं रह जातीं, जब बोध की साधना का पथ विलुप्त हो जाता है और पथ नहीं सूझता, चित्त-भूमि जब बाहरी खरपतवारों से संकुल हो उठती है, तब अद्वैतवादी प्रमाद अपने समय के संसार के सत्य को जानने में बाधक बनता है। यह स्वाभाविक ही है। तब न तो परायी विद्या-संस्थाओं का मर्म आत्मसात् करने योग्य बौद्धिक स्फूर्ति बचती है, न ही अपनी विद्या-परंपराओं की पुनर्रचना का बल और साहस। पराजित भारतीय चित्त शायद इसी हीनता से ग्रस्त है। हीनता की दशा में प्रमाद और सृजन-विमुखता से उपजी अद्वैतवादी भ्रांति अपनी परंपरा का ही प्रसार दिखने लगती है। शायद प्रत्येक संस्कृति की विकृति का भी अपना ही विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रमादपूर्ण अद्वैतवाद से भरे मानस में संसार को ठीक से जानने के प्रति अनिच्छा का उभार हो जाना विशिष्ट भारतीय विकृति है। अन्य संस्कृतियों की विकृतियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं। हमारी विकृति इसी आत्महीनता से भरे प्रमाद के रूप में है।

पराजित भारतीय चित्त की बात उठने पर, उसके स्वरूप को तथा पराजय से उभरने की उसकी सतत चेष्टाओं के इतिहास को स्मरण करना आवश्यक है। इसके लिए मुझे यह उचित लगता है कि कुछ प्रतिनिधि घटनाओं तथा बिन्दुओं का सांकेतिक स्मरण किया जाए।

इस्लाम के अनुयायियों से हजार वर्ष लंबे समय तक सम्बन्ध होते हुए भी इस्लाम के स्वरूप को भी बौद्धिक स्तर पर समझने का कोई प्रयास भारत में पिछले दो सौ-तीन सौ वर्षों में भी नहीं हुआ दिखता। यह सही है कि इस्लाम अनुयायियों के आक्रमण से अधिकांश भारत पराजित नहीं हुआ, संघर्षरत ही रहा और अपने ढंग से इस्लाम को आत्मसात् करने की चेष्टा में लगा रहा है। भारतीय समाज के पास ११वीं शती से १७वीं शती ईस्वी तक लगातार संग्राम और बलिदान के उपरांत भी उल्लेखनीय शक्ति बची रह गई। संग्राम के क्रम में भारतीय समाज को बीच-बीच में उल्लेखनीय सफलताएँ भी मिलीं। विजयनगर राज्य और मराठों का प्रसंग पहले आ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चुका है। किन्तु अपना राज्य भिन्न एवं विपरीत प्रकार के विचारतंत्र के प्रति क्या बौद्धिक व्यवहार करे, इस पर पर्याप्त गहरा शास्त्रार्थ विजयनगर राज्य में भी नहीं हुआ। जो सांस्कृतिक-केन्द्र, विद्या-केन्द्र नष्ट कर देने वाली शक्तियाँ हैं, उन्हें मात्र प्रत्यक्षत: पराजित कर, अपने क्षेत्र भर में मर्यादित रखके, क्षेत्र के चारों ओर बैर-भाव से परिपूर्ण वैचारिक आक्रमकता को यों ही रहने देना है या उससे वैचारिक संवाद करना है, इस पर विगत एक हजार वर्षो में कभी कहीं पर्याप्त गहरा विमर्श हुआ हो, इसके अभी तक सूत्र नहीं मिले हैं। 'खुदा' और 'ईश्वर' की, एकपंथवाद और सर्वपंथ-मान्यता की अवधारणाओं में तात्त्विक अंतर क्या है, और एकता का आधार क्या है, इस पर आध्यात्मिक-बौद्धिक विमर्श न आचार्य विद्यारण्य के संरक्षण में या नेतृत्व में कहीं हुआ, न ही समर्थ गुरु रामदास के। पंचदशी और दासबोध को पढ़ने पर यह रंचमात्र नहीं पता चलता कि इस्लाम की किन्हीं आधारभूत अवधारणाओं को कोई चुनौती समझी जा रही है। वह सजगता होती तो विदेशी भाषा के कितने शब्दों को और किन विचारों को आत्मसात् करना है और क्यों करना है? मनुष्य के रूप में कहाँ उनसे हमारी एकात्मता है तथा एक भिन्न सांस्कृतिक प्रजाति या समाज के रूप में कहाँ नितांत विरोध, विभेद या विपरीतता है, क्या ग्रहण करना धर्म है, क्या अधर्म, किन-किन रूपों में प्रतिरोध व स्वाधीनता सृजन-साधना धर्म है, आदि विषयों पर विस्तृत विचार होता, जैसे कि उन दिनों इस पृथ्वी पर अन्यत्र हो रहा था। अपने यहाँ महाभारत में विविध स्थलों में भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों के स्वभाव व विशेषताओं का कुछ वर्णन है। ब्रह्म पुराण और स्कंद पुराण में भी कुछ ऐसे ही प्रसंग हैं। विश्व के नए घटनाक्रमों और एकपंथवादी समूहों के अभूतपूर्व विस्तार के संदर्भ में इस भेद विवेचन को और विस्तार तथा गहराई देना ही स्वाभाविक होता। अपने उन दिनों के राष्ट्रीय अनुभवों के संदर्भ में यह आवश्यक था। पर ऐसा कुछ अपने यहाँ उन दिनों हुआ नहीं दिखता। समाज में तो भावोद्वेलन, प्रतिरोध भाव, प्रतिशोध-भाव आदि देखने को मिलते हैं, किन्तु राजनीति-तंत्र के शीर्ष जनों में ये भाव पर्याप्त नहीं दिखते।

अठारहवीं शती ईस्वी के आरंभ में, औरंगजेब की १७०७ ई. में मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य समाप्त हुआ, ऐसा माना जा सकता है। शिवाजी के राज्याभिषेक से लेकर १७५० ई. तक मराठे ही भारत की सबसे शक्तिशाली व विस्तृत राज्य शक्ति थे। लेकिन इन्हीं दिनों में यूरोपीय, भारत में प्रभाव बढ़ाने लगे। १७५० ईस्वी में अरकाट की लड़ाई से उन्होंने अपनी शक्ति को निर्णायक रूप से बढ़ाना शुरू किया। १८०० ईस्वी तक प्राय: समस्त भारत पर उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभुत्व हो गया। इसके उपरांत यह मानना कि सन् १८५७ ई. तक भारत की अपनी स्वतंत्र सत्ता कहीं, निराधार और निरर्थक है। सन् १८०३ ईस्वी तक हमारा प्रभावशाली वर्ग मानसिक पराजय स्वीकार कर चुका था। इस वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण अंश उत्साहपूर्वक ब्रिटिश जीवन-पद्धति, ब्रिटिश विचार-पद्धति, एवं अभिव्यक्ति-पद्धति को ऐसे अपना रहा था, मानो वह बौद्धिक, दारिद्रता से ग्रस्त हो, उसके पास न अपनी प्रभा हो, न प्रतिभा, न प्रतिमान। बाहरी विचार और व्यवहार को किस रूप में लेना है, उसका संपूर्ण समाज पर क्या-क्या प्रभाव पड़ेगा, उस प्रभाव को कैसे संतुलित रखना तथा अर्थवान बनाना है, इस पर शास्त्र-चिंतन, कोई सृजनात्मक प्रयास नहीं दिखते। जो ले रहा है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्साह से ले रहा है। बृहत् समाज तिरस्कार से यह देख रहा है। विखंडन की यह स्थिति स्पष्ट दिखती है।

ऐतिहासिक राजनैतिक घटनाओं को समझने के प्रति राजनीति तंत्र के शीर्ष जनों में या तो प्रमाद और उपेक्षा-भाव दिखता है, या फिर एक अस्पष्ट अपेक्षा-भाव। हमारे प्रतिभाशाली लोग समकालीन राजनीतिक घटनाओं को किस रूप में देख रहे थे इसका एक उदाहरण हैं, राममोहन राय।

कहा जाता है कि बचपन में अपने साथ घटी घटनाओं के कारण उन्होंने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और हुगली जिले से पटना जा पहुँचे वहाँ फारसी और अरबी का अध्ययन किया। अरबी विज्ञान और दर्शन पढ़ा। यूनानी चिंतकों के अरबी अनुवाद पढ़े। हाफिज, रुमी आदि की शायरी पढ़ी। फिर कुछ साल बनारस रहे। वहाँ उपनिषद् और गीता पढ़ी। फिर मुर्शिदाबाद जाकर अरब की विद्या पढ़ने लगे। वहीं अपनी पहली पुस्तक 'तुहफत-उल-मुवहिदीन' फारसी में लिखी, जिसमें एकपंथवाद का घनघोर समर्थन किया। इसकी भूमिका अरबी भाषा में थी। तदुपरांत ब्रिटिश राज में नौकरी की। १८१४ ईस्वी में कोलकता पहुँचे। वहीं ईसाई साहित्य पढ़ा और हिब्रू, लैटिन और यूनानी भाषाएँ सीखीं। और फिर एक यूनिटेरियन मिशन प्रेस, सभाघर, पुस्तकालय आदि बनवाया व 'द प्रिसेप्ट्स ऑफ जीसस', 'अपील टु द क्रिश्चियन पब्लिक', 'द आइडियल ह्यूमैनिटी ऑफ जीसस' आदि पुस्तकें प्रकाशित कीं। अँग्रेजी की शिक्षा के देशव्यापी प्रचार के लिए वातावरण बनाने में लगे रहे और अंत में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका मुख्य लक्ष्य था मूर्तिपूजा की परंपरा पर तीव्रतम प्रहार करना। साथ ही उन्होंने देशभर में एकपंथवाद की स्थापना के लिए अत्यधिक श्रम किया। आधुनिक अभिजनों ने उनमें 'रेनेसाँ' का नव-प्रवर्तक देखा।

यहीं पर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का स्मरण प्रासंगिक है। बंकिम ने 'आनंदमठ' जैसे उपन्यास लिखे और संन्यासी-विद्रोह जैसी राजनैतिक घटनाओं की मीमांसा की। प्रसिद्ध राष्ट्रगीत वंदेमातरम् रचा। उन्हीं बंकिम की अँग्रेजी राज के बारे में यह व्याख्या थी कि वह दैवी इच्छा से भारत के शुभ के लिए ही आया है। यह बोध उस काल-खंड का है, जब अंग्रेज भारत की समाज-रचना, कृषि, शिल्प, प्रौद्योगिकी, विद्या-संस्था आदि को देशभर में नष्ट कर चुके थे। लेकिन जन-जीवन का व्यापक क्षय और विनाश करने वाला ब्रिटिश राज ऐसे शक्तिशाली लोगों को पूर्ववर्ती इस्लामी त्रास से मुक्ति दिलाने वाले वरदान के रूप में दिख रहा था। ये सब भारत के मेधावी नागरिक थे। देशभक्ति और संस्कृति-रक्षा की भावना इनमें कम नहीं थी। किंतु बृहत् सामाजिक जीवन के विध्वंस का या तो इन्हें पर्याप्त ज्ञान नहीं था, या फिर विध्वंस इन्हें अपनी या अपने जैसों की निजी क्षति न होने के कारण उतना पीड़ाप्रद नहीं लगता था। निजी अनुभव, निजी दैहिक-मानसिक स्तर पर भोगा हुआ यथार्थ ही इन्हें सामाजिक यथार्थ का प्रयास प्रतिनिधि दृष्टांत लगता था। बृहत् समाज के दुःखों का राजनैतिक ऐतिहासिक संदर्भ पहचानना उन्हें आवश्यक नहीं लगता था। सब परंपरागत अर्थ में विरक्त भी नहीं थे। क्योंकि परंपरा में तो गुरुतम निजी दुःख से भी विचलित न होने का आदर्श रहा है, जबकि ये सब निजी दुःखों के दारुण अनुभवों से ही महत्त्वपूर्ण सामाजिक निष्कर्ष निकालते दिखते हैं। (क्रमशः)

साभार : (भारतीय चित्त, मानस एवं काल से)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रंगा हरि

धर्म पंथ विवेचन

(गतांक से)..धर्म कोई दृश्य-स्पृश्य वस्तु नहीं, बल्कि एक तत्त्व है। सभी तत्त्वों के समान वह निराकार है। प्राणवान मानव के माध्यम द्वारा ही वह साकार हो सकता है। धर्म को सफल और सक्षम बनाने वाले जो गुण हैं, उनका धनी मानव है। मानव को उन गुणों से संस्कारित बनाने की भूमिका मुख्यत: परिवार, शिक्षासंस्था और पंथ-सम्प्रदाय की है; साहित्य, कला, इतिहास और प्रशासन की भी है।

बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सबको कथा-कहानियाँ आकृष्ट करती हैं। साहित्य, कथाओं के भरोसे बचपन में ही कोमल मन को शिष्टगुणों से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए पंचतंत्र व हितोपदेश प्रतिदिन नजर आते क्षुद्र जन्तुओं को कथापात्र बनाकर वचनबद्धता, मित्रता, एकता, सामञ्जस्य, सहकार, सहवर्तिता आदि सद्गुणों के बीज उपजाऊ बाल मन में बोते हैं। अत: नैतिकता धर्म का पर्यायवाची शब्द बन गया।

चोरी, तस्करी, ठगी आदि निकृष्ट कृत्यों को मिटाने हेतु प्रशासन ने योग्य नियम बनाये। अत: धर्म का एक और नाम बन गया 'नियम' या विधि। इसी प्रकार घर-घर के द्वारों पर आकर भिखारी कहता है, 'धरम करो मय्या'- 'धरम करो मय्या' तब उसको मुट्ठीभर अनाज देती माँ-चाचियों को बालकों ने देखा। अत: उनको लगा धर्म याने दान है। इस प्रकार भिन्न प्रकार के आयामों के कारण धर्म का अर्थ नैतिकता, दान, कर्तव्य, नियम, करुणा, सेवा-शुश्रुषा, परोपकार इत्यादि बन गया। फलस्वरूप धर्म समूहवाची लोकसंग्रही गुणों के कुंदन का पिटारा बन गया।

धर्म को इस प्रकार बनाने में सबसे बड़ा योगदान पंथ-सम्प्रदाय का है। संतुलित चित्त से विश्लेषण करके सोचें तो मानव मन पर सबसे बड़ा प्रभाव पंथ-सम्प्रदाय का है। विदेश में मृत्यु होने पर भी आदमी अपना सम्प्रदाय नहीं छोड़ देता। यदि यह हिन्दू है तो उनके रिश्तेदार वहीं शव का दाह संस्कार करने का प्रयास करते हैं। उस देश में शव जलाने की अनुमति नहीं तो हजारों रुपये के खर्चे से उसको भारत में लाने का भी प्रयास करते हैं। इतनी प्रबल एवं प्रभावी है यह पकड़! मानव मन पर अमिट संस्कार अंकित करने का काम पंथ-सम्प्रदाय करता है। पंथ-सम्प्रदाय की अपील साहित्य, कला, शासन आदि की अपील से बहुत अधिक है। पंथ-सम्प्रदाय में दो शब्द है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुण्य और पाप। विश्व के समस्त आस्तिक लोग, पंथ निर्विशेष, सहमत हैं कि 'परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम्', 'धर्मचक्रप्रवर्तनाय' आदि जितने सारे गुण हैं, वे निरपवाद पुण्य देने वाले हैं और उसके विपरीत का जो व्यवहार है, वह पाप देनेवाला है। पुण्य शाश्वत सुख देनेवाला है और पाप चिरन्तन दु:ख। सभी सम्प्रदायों में अटल रहती इस संकल्पना का परिणाम है पुण्य कमाकर चिरन्तन सुख प्राप्त करने की प्रेरणा तथा पाप-कर्म से हटकर चिरन्तन दु:ख से छुटकारा पाने की लालसा। अर्थात् धर्मानुकूल सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ना और धर्मविरोधी नकारात्मक दिशा से मुँह मोड़ना, पंथ-सम्प्रदायों के प्रबल प्रभाव के कारण सम्भव होता है। अर्थात् धर्मनिष्ठ जीवन बिताने की अक्षुण्ण प्रेरणा देनेवाला साधन है पंथ या सम्प्रदाय। परिणाम स्वरूप पंथ-सम्प्रदायों ने भी नैतिकता, दान, कर्त्तव्य आदि गुणों के समान धर्म का अभिधान अर्जित किया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ साध्य से समरस होकर साधन साध्य का नाम ग्रहण करता है। मूर्ति को निमित्त बनाकर भक्त अमूर्त भगवान् का सान्निध्य अनुभव करता है और अन्तत: मूर्ति को ही भगवान मानता है। उसी प्रकार आजकल प्राय: सभी दवाइयाँ गोली के रूप में मिल जाने के कारण गोली ही दवाई मानी जाती है। धर्म की भी स्थिति यही है। पंथ, जो 'साधन' है, ने 'साध्य' धर्म का नाम ले लिया।

यहाँ एक स्पष्टीकरण की आवश्यकता महसूस होती है। कहा जाता है कि पंथ-सम्प्रदायों को 'धर्म' नाम से उल्लिखित करने की विकृति अंग्रेजों के कारण है। सोचने पर विश्वास बढ़ता है कि हम ही उसके अपराधी हैं। अपने लोगों ने ही त्रुटिपूर्ण अनुवाद किया होगा। उदाहरण के नाते, सन् १८५० के आसपास बंगाल के राजनारायण बसु ने 'The Superiority of Hindu Religion' के विज्ञापन से बंगाली भाषा में 'हिन्दुधर्मेर श्रेष्ठता' नाम की पुस्तक लिखी थी।

परन्तु हमारे अध्यात्म साहित्य में आदि शंकराचार्य को 'षण्मताचार्य' कहा है, न कि 'षड्धर्माचार्य'। स्वामी विद्यारण्य जैसे तत्वज्ञानी महात्मा ने शंकरमत को संस्कृत में शंकर धर्म नहीं कहा। यह प्राचीन पुरातन बात नहीं, १५-१६वीं सदी की बात है। आज भी दक्षिण की चार भाषाओं का रिलीजन के लिए शब्द है 'मतम्'। तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम् के शब्द हैं, हिन्दुमतम्, क्रिस्तुमतम्, मुस्लिम मतम्, जैनमतम्, बुद्धमतम्, शैवमतम्, वैष्णवमतम् आदि। जिन पंथ-सम्प्रदायों को आज गलती से धर्म कहते हैं, वह मतम् ही हैं। ईश्वर, मोक्ष, पुण्य, पाप सम्बन्धी ईसा मसीह का मत है 'ईसा मतम्', मुहम्मद का मत है मुहमदीय मतम्, बुद्ध का मत है बुद्धमतम्, जिन-तीर्थकर का मत है जैनमतम्, सिख-गुरुओं का मत है सिखमतम्, मूर्ति उपासना के आधार पर विष्णु के उपासकों का मत है वैष्णवमतम्, उसी कड़ी में शैवमतम्, शाक्तेयमतम् आदि। (गुरु परम्परा के उपासकों का मत है शिष्य मतम् जिसका तद्भव है सिख मतम्) मतम् के उद्गम का स्थान कोई न कोई पुरुष होता है। अत: मतम् पौरुषेय है तथा धर्म अपौरुषेय है।

दक्षिण की भाषाओं में हिन्दुओं के ईसाकरण को 'धर्मान्तर' नहीं, 'मतान्तर' कहते हैं। अथवा 'मतंमाट्टं'। उसी प्रकार 'सेकुलर' को 'धर्मनिरपेक्ष' नहीं, 'मतनिरपेक्ष' कहते हैं। Religious fanaticism को मतान्धता कहते हैं। पंथ-सम्प्रदाय सम्बन्धित प्रवचनों को मतप्रभाषणं कहते हैं। किन्तु धर्म सम्बन्धित सुविदित गीता उद्घोष ('यदा यदा हि धर्मस्य...') को भाषान्तरित करके समझाते समय कोई आचार्य 'धर्मग्लानि' के लिए मनग्लानि और 'धर्मसंरक्षण' के लिए 'मतसंरक्षण' नहीं कहते हैं। वहाँ वे धर्म का ही प्रयोग करते हैं। अर्थात् मतम् व

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धर्म दो अलग शब्द माने जाते हैं।

इसका अनुभव यह है कि 'रिलीजन' को 'धर्म' कह कर जितना वैचारिक भ्रम अन्य भाषायी प्रदेशों में उत्पन्न होता है, उतना दक्षिण के चार प्रान्तों में नहीं होता। साहित्यिक लेन-देन के वर्तमान कालखण्ड में दक्षिण का यह 'मत' प्रयोग सबके लिए लाभकारी होगा।

वैसे देखा जाये तो, पूरे भारत में धर्म का शब्द हम ठीक ढंग से प्रयोग करते आये हैं। उदाहरण के नाते धर्मपत्नी, उसका अर्थ पंथ या सम्प्रदाय सम्बन्धित पत्नी नहीं। यहाँ धर्म को मजहब के नाते कोई नहीं समझता। और एक शब्द 'धर्मशाला' का अर्थ मजहबी मकान नहीं। परोपकार, भूतानुकंपा, हमदर्दी आदि धार्मिक भावों की अन्त:प्रेरणा से अज्ञात अपरिचित अनामिक यात्रियों के सुविधापूर्वक निवास हेतु सेवाभाव से निर्माण किया गया स्थान है धर्मशाला। पुराने जमाने में न्यायालय या कचहरी को धर्मसभा या धर्माधिकरण कहा करते थे। इसका अर्थ यह नहीं था कि वहाँ मजहब की नजर से भिन्न मजहबवालों को भिन्न प्रकार का न्याय मिलता रहा। पंथ सम्प्रदाय के परे जहाँ चिरन्तन सत्य और नैतिकता के बल पर न्याय मिलता था वह थी धर्मसभा। पुराने जमाने में राजाओं के पास, अनपेक्षित प्राकृतिक पीड़ाओं से प्रजा को मुक्त करने हेतु विशेष संचित धनराशि रहती थी। वह धर्मकोष नाम से जानी जाती थी। उसका उद्देश्य वर्तमान की 'हज्ज सबसिडि' मदरसा सबसिडि जैसी मजहबी सहायता देने का नहीं था। धर्मकोष कभी मज़हबी कोष नहीं था। पुराने जमाने में राजमहलों, मुख्यनगरों, मन्दिरों के सिंहद्वारों पर ऊँचे स्थान पर टाँगी हुई जो घड़ी रहती थी उसका नाम था धर्मघड़ी। मजहब और घड़ी का क्या सम्बन्ध? फिर भी थी धर्मघड़ी, क्यों? अभीष्ट था सब कोई, अमीर-फकीर, व्यापारी-कर्मचारी, किसान-कारीगर, शिक्षक-शिक्षार्थी, इधर-उधर जानेवाले सब, समय देखकर लाभ उठा सकें।

हम सब मानते हैं कि महाभारत का युद्ध 'धर्मयुद्ध' था। यहाँ धर्म का संकेत क्या है? पंथ-सम्प्रदाय-मजहब कभी नहीं। दोनों पक्ष एक ही सम्प्रदाय के, एक ही कुल के थे। अगर धर्म का अर्थ मजहब है तो यह धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। 'धरति लोकान्' जो धर्म था, वह खतरे में था। उसके संरक्षण हेतु 'धर्म संस्थापनार्थाय' जो अवतरित हुए उनके नेतृत्व में जो युद्ध हुआ वह है 'धर्म युद्ध'। यदि धर्म युद्ध का अर्थ मजहबी युद्ध है तो ईसाई-मुसलमानों के बीच मध्यकालीन युग में जो युद्ध हुए उन्हीं 'क्रूसेड्स' (crusades) को धर्मयुद्ध कहना होगा। कितना अनर्थकारी!

वास्तव में धर्म, मतम् से व्यापक है; वह अधिष्ठान है। धर्म समावेशक है। उसमें आस्तिक, नास्तिक, सबका स्थान है। क्योंकि मानव समुदाय की सुव्यवस्था हेतु आस्तिक-नास्तिक सब प्रतिबद्ध और उत्तरदायी हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का ठोस अधिष्ठान मानवीयता है, न आस्तिकता, न नास्तिकता। वैसे देखा जाये तो मनुस्मृति में मनुद्वारा परिभाषित धर्म के सारे दस लक्षण मानवता से सम्बन्धित हैं। वे लक्षण हैं- धृति (धैर्य), क्षमा, दम, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रियनिग्रह, धी (ज्ञान), विद्या, सत्य, अक्रोध। ''धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:। धी विद्यां सत्यमक्रोध: दशकं धर्मलक्षणम्।।'' (मनुस्मृति ६/९१) सावधानी से विवेचन करें, उपासना मार्ग पर उनमें किसी का आग्रह नहीं। आस्तिक हो या नास्तिक, सभी सदाचारी स्त्री-पुरुष में ये गुण अपेक्षित हैं।

हमारे धर्म साहित्य में इसी तरह के असंख्य उल्लेख हैं। उपलब्ध सामग्री की प्रचुरता के कारण चयन करना बहुत कठिन है। फिर भी मात्र एक उल्लेख करूँगा। भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं- 'जो सर्व भूतों का बन्धु है और सर्व भूतों से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एकात्म है, वहीं धर्मयुक्त कहलाता है।'
'सर्वभूतानुकम्पी यः सर्व-भूतार्जवव्रतः / सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते।' (महाभारत-अनुशासन पर्व-१४२-२८)

यह विश्वमानव का लक्षण है, वैश्विक नागरिक के गुण हैं। जब राजा रन्तिदेव ने कहा कि 'ईश्वरीय चरम स्थान मुझे नहीं चाहिए, आठ दैवी सिद्धियाँ भी नहीं चाहिए, पुनर्जन्मों के चक्र के परे ले जानेवाली दैवी शक्ति भी नहीं चाहिए, वरन दुःख भुगतने वालों के अन्दर रहते हुए उनके दुःखों का भागीदार बनकर उनके दुःख को शमन करने वाली क्षमता मुझे चाहिए।'

'न कामयेऽहंगतिमीश्वरात्परं अष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा /आर्ति प्रपद्येऽखिल दुःखभाजां, अन्तःस्थितों येन भवन्त्युदुःखाः।।' (भावगत -९-२१-१२)

तब वे उपर्युक्त विश्वमानव के धार्मिक स्तर पर पहुँच चुके थे। पैनी दृष्टि से देखा जाये तो पंथ-सम्प्रदाय मतम् व्यतिरेकी हैं। वैष्णवों की उपासना पद्धति में शैव और शैवों की उपासना पद्धति में वैष्णव अपेक्षित नहीं, दोनों का कर्मकाण्ड अलग है। उसी प्रकार इस्लामी कर्मकाण्डों में ईसाई और ईसाई कर्मकाण्डों में इस्लामी अनपेक्षित हैं, अवांछनीय भी। पंथों में पृथक्ता है और धर्म में संपृक्तता। पंथ विश्लेषी है धर्म आश्लेषी है। धर्म का वर्तुल सर्वाश्लेषी है, मतम् का वर्तुल स्वैच्छिक है।

इतना ही नहीं, दुनिया में कई लोग दिखाई पड़ते हैं जो जीवन के आचरण में अतीव धर्मप्रवण हैं, किन्तु विश्वास से अपंथीय। इतिहास साक्षी है, यूरोप के मध्यकालीन पुनरुत्थान के कालखण्ड में ऐसे अनेक वैज्ञानिक थे जो मानवीय हमदर्दी के धनी थे, साथ ही साथ ईसाइयत के अविश्वासी। हमारे भारत में भी इस तरह के कई हृदयालु लोग थे। आज भी होंगे। इन अपंथीय धार्मिकों को स्वच्छन्द स्वैचारी मानना गलत होगा, अन्याय होगा।

इसी प्रकार दूसरी ओर हम ऐसे लोगों को भी देखते हैं जो पंथ के तो निष्ठावान अनुयायी हैं किन्तु धर्म के दिवालिये। शायद किसी इष्ट मन्दिर में वे मूर्ति के माथे पर नवरत्न खचित सोने का मुकुट चढ़ाते होंगे, किन्तु व्यवसायी जीवन में अक्खड़ धर्महीन। लंकेश्वर रावण का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है। कहा जाता है कि वे शिवजी के अनन्य भक्त थे। किन्तु धर्म के विषय में क्या कहें? ...दुनिया जानती है।

इस प्रकार दो प्रकार के लोगों को- अपंथीय धार्मिक तथा अधार्मिक पंथीय- हम देखते हैं। किन्तु उनकी संख्या तुलना में कम होगी। अनुभव में, अधिकांश लोग पंथ के द्वारा धार्मिक और धर्म के द्वारा पंथीय बन जाते हैं। पुराने संस्कृत कविवर के पीछे चलकर हम कह सकते हैं ''धर्मेण मतम् च मतेन धर्मः, धर्मेण मतेन संयाति नरः'' दोनों परस्पर पुष्टिकारक हैं।

संक्षेप में धर्म और मतम् एक नहीं। धर्म मानव को व्यक्तिशः एवं समूहशः ऐहिक पारलौकिक उन्नति की ओर ले जानेवाले शाश्वत गुण विशेषों का आगार है। मतम् अथवा पंथ उपासना-साधना सम्बन्धी आचार-विचारों के आदेश-निदेशों की निर्धारित परिक्रमा है।

धर्म और अध्यात्म : हमने कहा था कि धर्म और मतम् दो अलग-अलग शब्द हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों के बीच कोई रिश्ता-नाता नहीं, वास्तव में अत्यन्त निकटता का सम्बन्ध है। उसी प्रकार धर्म और अध्यात्म भी परस्पर सम्बन्धित विषय है। उसका भी छोटा सा विश्लेषण यहाँ करें।

कौन आस्तिक, कौन नास्तिक, यह प्रश्न मतम् का है। धर्म इस सम्बन्ध में चुप है। फिर भी अध्यात्म से जुड़ा है। कारण जैसे कणाद ने और शंकराचार्य ने कहा वह 'निःश्रेयस हेतु' है। धर्म की संकल्पना निरपवाद भारत की होने के कारण उसका जीवन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्बन्धित दृष्टिकोण भारतीय दर्शन का ही होना स्वाभाविक है। यह पश्चिमी सेमेटिक दर्शन से बिलकुल भिन्न है, जिसके अनुसार जीवन की अवधि मृत्यु तक की है। मृत्यु के बाद उस प्रेत प्राण को विश्व के अन्तिम दिन पर होने वाली सुनवाई की बेला तक कब्र में बाट जोहनी पड़ती है। किन्तु भारतीय दर्शन में जीवन की यात्रा अन्तहीन है। उसके अनुसार मृत्यु जीवन का पूर्णविराम नहीं, दूसरे जन्म के पूर्व का मात्र अर्धविराम है। अर्थात् इह-पर लोक की कड़ियों से बनी जंजीर है, जीवन। स्वयं के कर्मफलों से मोक्ष प्राप्ति तक जीवन चलता रहेगा।

धर्म का जीवन से सम्बन्धित दृष्टिकोण यही है। अत: धर्म जीवन के विषय में मात्र इहलोक का विचार नहीं करता अपितु परलोक का भी करता है। उसी को कहते हैं, अध्यात्म। इसलिए स्वभावत: धर्म के कार्यक्षेत्र में अध्यात्म भी आता है। श्रीमद्भगवद्गीता के भाष्य में श्रीमद् शंकराचार्य कहते हैं कि धर्म जगत् की स्थिति का हेतु है, 'जगत: स्थितिकारणं' साथ ही 'प्राणिनां अभ्युदय नि:श्रेयसहेतु' है। अभ्युदय का अर्थ है इस भौतिक जगत में प्रगति, नि:श्रेयस का अर्थ है मोक्ष: आध्यात्मिकता सर्वान्तिम लक्ष्य। अर्थात् धर्म इहलोक की और परलोक की परम उन्नति का साधन है। उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति किसी भी उपासना के मार्ग को अपनी भाव-भावना के अनुसार स्वीकार कर सकता है। धर्म उसमें हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु इतना तो आग्रहपूर्वक कहता है कि 'मानव का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है और उसका अधिष्ठान स्वयं मैं (धर्म) हूँ।' धर्म की उपासना से सम्बन्धित दृष्टि भगवान श्रीकृष्ण की है- ''जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ।''

'यो यो यां यां तनुं भक्त: श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।'

(गीता-७-२१)

भारतीय दर्शन के अनुसार मानवीय जीवन एक नदी है, उसका जल और प्रवाह मानव को सदा चेष्टित करने वाले अर्थ और काम हैं। उस नदी के दो तट हैं धर्म और मोक्ष। जीवनरूपी नदी कल्याणकारी होने के लिए, उसको दोनों तटों के बीच, दोनों तटों का उल्लंघन न करते हुए बहना पड़ेगा।

इसको भारतीय द्रष्टाओं ने 'पुरुषार्थों का योग्य पालन कहा'। ये चार पुरुषार्थ हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इस संकल्पना की विलक्षणता है कि इस प्राचीन देश में विद्यमान सभी पंथ-सम्प्रदायों के अनुगामी निरपवाद इसको मानते हैं। अर्थात् ये चार पुरुषार्थ किसी एक 'मतम्' के परे मूलभूत अध्यात्म के अंग बने। उपासना-पंथों के परे प्राय: सभी ऋषितुल्य प्राचीन अर्वाचीन मनीषियों ने इसका समर्थन किया है।

प्रथम पुरुषार्थ धर्म को भारतवर्ष में उद्भूत सभी पंथ-सम्प्रदायों ने आध्यात्मिक नैतिकता का अधिष्ठान माना। जैन, बौद्ध सिक्ख, वैष्णव, शैव, शाक्तेय-ये सारे सम्प्रदाय धर्म को मानते हैं। बौद्धों के त्रिशरणों में एक है 'बुद्धं शरणं गच्छामि।' हमारी भव्य लोकसभा के सुविशाल कक्ष के अन्दर सभाध्यक्ष की पीठ के पीछे की दीवार के ऊपर अंकित 'धर्मचक्र-प्रवर्तनाय' बौद्धों का ध्येय वाक्य था। जैनों की दृष्टि में 'धर्म उत्कृष्ट मंगल' है। अहिंसा, संयम और तप उसके स्वरूप हैं। जिसका मन सदा धर्म में रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। 'धम्मोमंगल मुक्किट्टठम् अहिंसा संजमो तवो। देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणे' (आत्मा का दर्शन- १/१)

तमिल भाषा का वेद समान प्रतिष्ठा प्राप्त 'तिरुक्कुरल' धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों का प्रतिपादन करने वाला धर्मग्रंथ है। तीन भागों में बँटे उस ग्रंथ का पहला भाग धर्म सम्बन्धित है। दो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सहस्राब्द पूर्व रचित उस पवित्र ग्रंथ में चारों पुरुषार्थों के लिए मौलिक तमिल शब्द हैं। वे हैं, यथाक्रम 'अरम् पोरुल, इम्पम्, वीडु'। 'अरम्' (धर्म के खण्ड में ३८ सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में दस-दस दोहे हैं। उसमें चौथा सर्ग पूर्णत: धर्म विषयक है, जिसका भाषान्तर इस प्रकार है।)

दोहा-१ धर्म मोक्ष देता है, धर्म वैभव भी देता है, धर्म की तुलना में दूसरा कुछ दुनिया में नहीं।

दोहा-२ धर्म श्रेय का दाता है। उसको भूलने पर सर्वनाश अवश्य।

दोहा-३ यथाशक्ति यथाबुद्धि नियत कार्य है, धर्मकार्य।

दोहा-४ धर्म का धाम वह मन है, जिसमें लवलेश मैल नहीं।

दोहा-५ तृषा, ईर्ष्या, क्रोध, कुभाषण को मिटाकर जीना चाहिए, वहीं है धर्म।

दोहा-६ विना टाल के धर्म करो, वहीं अन्तिम साथी है।

दोहा - ७ धर्म से क्या लाभ! मत पूछो, एक पालकी में बैठा है, दूसरा पालकी को ढोता है, उसमें से उत्तर निकालो।

दोहा - ८ एक क्षण भी व्यर्थ न बिताओ, धर्म को पकड़कर जिओ। उससे होगा पुनर्जन्म का अन्त।

दोहा - ९ सुख जो धर्म से प्राप्त होता है, वहीं है सच्चा सुख। अन्य प्रकार से मिलने वाला सुख अन्ततः कीर्तिहारी दुःख बनेगा।

दोहा-१० वही कार्य करना है, जिसका आधार है धर्म। अन्य कोई भी कार्य अधार्मिक है।

ध्यानपूर्वक इसका अध्ययन करो, धर्म की आध्यात्मिक भूमिका समझ में आयेगी। साथ ही साथ यह भी ध्यान में आयेगा कि यहाँ किसी उपासना मार्ग के कर्मकाण्ड का आदेश नहीं है। विषय विवेचना में तिरुक्कुरल की रीति उपनिषद् जैसे श्रुतिग्रंथों की है। उन ग्रंथों में प्रतिपादित तत्त्वों के अनुसार धर्म का उल्लंघन न करते हुए स्वयं स्वीकृत मार्ग से आगे बढ़ना, यही मानव के लिए श्रेयस्कर है। यह है धर्म और अध्यात्म का सम्बन्ध।

धर्म संकट : धर्म प्रत्यक्ष जीवन से सम्बन्धित है और मानव अपने जीवन के चारों ओर विवश होकर छोटे-छोटे वर्तुल खड़ा करता है, जिसके कारण उसका धर्म भी छोटा-बड़ा आकार ग्रहण करता है। सर्वप्रथम व्यक्ति के नाते उसका व्यक्तिधर्म रहता है। वहाँ से विकसित होकर वह एक परिवार बन जाता है और उसका एक परिवार धर्म या कुटुम्ब धर्म रहता है। उसी प्रकार उसके चारों ओर जाति, ग्राम, प्रान्त, देश, राष्ट्र, विश्व आदि के वर्तुल विकसित होते हैं, फलस्वरूप वह इन भिन्न-भिन्न धर्मों से संलग्न हो जाता है। इनको निभाने के लिए व्यक्ति धर्म के अलावा कुलधर्म, जातिधर्म, देशधर्म, अध्यापकधर्म इत्यादि रहते हैं। किसी भी स्तर का धर्म एक दूसरे से अलिप्त, भिन्न नहीं क्योंकि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है 'धरति लोकान्' (सुव्यवस्थित ढंग से सँभालना)। किन्तु व्यावहारिक तौर पर कभी-कभी दो धर्मों के बीच संघर्ष होता दिखाई देता है और इन दोनों के बीच फँसा बेचारा मनुष्य बेचैन किंकर्तव्यूमूढ़ हो जाता है। इसी को कहते हैं, धर्मसंकट।

धर्मसंकट दुविधा से अलग है। दुविधा निर्णय लेने की असमर्थता है। सिनेमा देखने जाना है कि नहीं, रात का भोजन करना है कि नहीं, शादी में जाने के लिए खादी का कुर्ता पहनूँ कि रेशमी कुर्ता पहनूँ - यह दुविधा है। यहाँ संघर्ष की बात नहीं मन की अनिश्चितता की बात है।

किन्तु धर्मसंकट वह है जब दोनों काम करणीय हैं परन्तु यदि एक किया तो वह दूसरे के विरुद्ध हो जाता है। दोनों काम धर्म हैं, एक धर्म और दूसरा अधर्म नहीं। अर्थात् यहाँ द्वन्द्व धर्म-अधर्म का नहीं वरन्, धर्म-धर्म का है। दोनों धर्म होने के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कारण मनुष्य संकट में पड़ जाता है। इसको कहते हैं धर्मसंकट। केवल मानव धर्मसंकट में पड़ जाता है, पशु नहीं। पशु के सामने कभी धर्मसंकट खड़ा नहीं होता।

पुरानी एक कथा है। मातंग मुनि पेड़ के नीचे बैठकर तप कर रहे हैं। एक परेशान पथिक जिसके हाथ में धन का थैला था दौड़ता हुआ आया और बोला ''महाराज! बचाइये, डाकू पीछा कर रहा है।'' मातंग ने उसको पेड़ के खोखले में घुस बैठने को कहा। थोड़े समय के बाद डाकू आया। उसने मुनि से पूछा - ''किसी को भागते हुए देखा क्या?'' अब तपस्वी मुनि धर्मसंकट में पड़ गये। उनका जीवनव्रत था अहिंसा और सत्य। अब क्या कहें? दोनों धर्म। किन्तु सत्य बोल दिया तो हिंसा होगी, मुनि भी उसके भागीदारी होंगे अर्थात् पापकर्मी। यदि असत्य बोले तो वे स्वयं असत्य कथन के पापकर्मा होंगे। तुरन्त उन्होंने विवेचन किया और निष्कर्ष पर पहुँचे कि जीवन रक्षा उत्कृष्टतर धर्म है और डाकू से असत्य बोल दिया। कथा बताती है मातंगमुनि को किसी भी पाप का लांछन नहीं लगा।

इसी प्रकार की एक कथा महाभारत के कर्णपर्व में है, किन्तु उसके कथानक में थोड़ा सा अन्तर है। एक सत्यवचनी ब्राह्मण था, कौशिक। गाँव के पास संगम पर वह तपस्या कर रहा था। एक बार कुछ पथिक, चोरों के आक्रमण के कारण इसके आश्रम में आ छिपे। थोड़े समय के बाद लुटेरे पूछने आये। तपस्वी कौशिक ने सच बता दिया। फलस्वरूप सारे पथिक पकड़े गये, और मारे गये। इस कारण वह ब्राह्मण सत्यवचन कहने के पश्चात् भी हिंसा के पाप का भागी बना और उसकी अधोगति हुई।

सुविदित कथा है भक्त प्रहलाद की। उनके पिताजी हिरण्यकशिपु थे। पिताजी ने बेटे से पूछा- ''तेरे आचार्य ने तुझसे कहा था न कि बाप का आदेश नहीं टालना?'' ''हाँ'', कहा प्रहलाद ने। ''तब क्यों मेरे आदेश के विरुद्ध नारायण के नाम का प्रचार करता है?'' तब प्रहलाद जवाब देते हैं- ''पिताश्री, कभी-कभी बड़े धर्म और छोटे धर्म के बीच द्वन्द्व होता है। तब छोटे धर्म को टालकर बड़े धर्म को सँभालना चाहिए। यही करणीय है। अन्यथा संकट बढ़कर सर्वनाश होगा।'' सार्वजनिक जीवन में प्रहलाद का कथन अनमोल है।

इसी तत्त्व को देवेन्द्र, श्येनपक्षी के रूप में राजा शिबि से कहते हैं- ''महाराज, महत्त्वपूर्ण क्या है, इसको देखकर धर्म-अधर्म का निर्णय करना पड़ेगा। महत्त्व जहाँ है उसको मानकर धर्म निर्णय करें।

'गुरुलाघवमादाय धर्मोऽधर्म विनिर्णये। यतो भूयांस्ततो राजन् कुरुष्व धर्मनिर्णयम्।।' (म.भा.वन.-१३१-१३)

इसी तत्त्व को मातंग मुनि ने भी अपनाया। प्राणि रक्षा और सत्य कथन, इन दो धर्मों के बीच जब संघर्ष हुआ तो उन्होंने तुलना में बड़े धर्म के नाते प्राणिरक्षा को प्रधान माना और उसको स्वीकारा, छोटे धर्म को छोड़ दिया। इसके विपरीत कौशिक ने छोटे धर्म को पकड़कर बड़े धर्म को छोड़ा और पाप का भागी बना।

विशेषतः आज के लोकतान्त्रिक वातावरण में जब मानवाधिकार, वैचारिक स्वतन्त्रता, जातीय अधिकार, भाषायी स्वाभिमान, प्रान्तीयता, राष्ट्रीयता, विश्वमानवता आदि विषयों को लेकर कोलाहल मचता है तब धर्म-सम्बन्धित यह विवेचन अत्यन्त लाभकारी होगा। (क्रमशः)

संपर्क : माधव निवास, पेरण्डर रोड, इलमकरा, कोच्ची- ६८२०२६

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमृत लाल नगर

हिंदी और मध्यम वर्ग का विकास

समय निकल जाता है, पर बातें रह जाती हैं। वे बातें मानव पुरखों के पुराने अनुभव जीवन के नए-नए मोड़ों पर अक्सर बड़े काम की होती हैं। उदाहरण के लिए, भारत देश की समस्त राष्ट्रीय भाषाओं के इतिहास पर तनिक ध्यान दिया जाए। हमारी प्रायः सभी भाषाएँ किसी न किसी एक राष्ट्रीयता के शासन-तंत्र से बँध कर उसकी भाषा के प्रभाव या आतंक में रही हैं। हजारों वर्ष पहले देववाणी संस्कृत ने ऊपर से नीचे तक, चारों खूँट भारत में अपनी दिग्विजय का झंडा गाड़ा था। फिर अभी हजार साल पहले उसकी बहन फारसी सिंहासन पर आई। फिर कुछ सौ बरसों बाद सात समुंदर पार की अँग्रेज़ी रानी हमारे घर में अपने नाम के डंके बजवाने लगी। यही नहीं, संस्कृत के साथ कहीं-कहीं समर्थ, जनपदों की बोलियाँ भी दूसरी भाषाओं को अपने रौब में रखती थीं। प्राचीन गुजराती भाषा पर ब्रजभाषा का भी गहरा प्रभाव था। बँगला भाषा उड़िया और असमिया पर रौब रखती थी। मलयालम कभी तमिल भाषा की दबोच में थी। यह सब भी चलता था। मैं समझता हूँ कि शायद इसी की ऊब, आजादी की नई चेतना में, अब भारत के हर भाषा क्षेत्र के शिक्षित जनों और उनके प्रभाव से अर्थाभावग्रस्तो चिड़चिड़े जनसाधारण में गहरी घुटन-सी फूट रही है। भारत की हर भाषा, हर बोली अब अपनी स्वतंत्र स्थिति चाहती है। स्थिति यह है कि इस समय हर व्यक्ति बस 'स्वतंत्र' होना चाहता है, 'स्व' से 'तंत्र' का सम्बंध और उसका करतब समझे बिना ही।

बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी से हमने देखा कि हर भाषा अपने क्षेत्रीय-जन की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक भूख को शांत करने में समर्थ होकर संस्कृत भाषा के अंकुश से उबरने लगी थी। ज्ञानेश्वर ने गीता रचने के लिए अपनी मातृभाषा मराठी की शरण ली। कृतिवास ने बँगला में, कंबन ने तमिल में, तुलसी ने हिन्दी की अवधी बोली में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामायण लिखी। इसी तरह रस-अलंकार आदि समान नियमों से शास्त्रबद्ध भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में भी एकरसता थी; अब भी है। मजे की बात है कि भाषाएँ अपनी रचना-शक्ति और कौशल दिखलाने में तो जरूर स्वतंत्र हो गईं, पर उनकी भाववस्तु एक ही रही। भाषाओं की ऐसी स्वतंत्र सत्ता हमें तनिक भी घातक नहीं मालूम होती। लल्लेश्री उर्फ लालदे कश्मीरी भाषा में अपने आराध्य का स्मरण करती हैं। आंडाल तमिल भाषा में अपने आराध्य को भजती हैं। मीरा ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती भाषाओं में अपने आराध्य को और जनाबाई मराठी में अपने आराध्य भाव को, लेकिन इन चारों के आराध्य भारत भर के आराध्य थे। भारत का जनमानस एक भाव में बहता था। चैतन्य, रामानंद, वल्लभाचार्य, कबीर, सूर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, नानक आदि कोई व्यक्ति किसी भी भाषा-क्षेत्र का हो, सारे भारत का प्रतिनिधित्व करता था। इनके इष्ट देव अलग-अलग, सगुण या निर्गुण हो सकते हैं, पर ये सभी भक्तिमार्गी थे। ये अपने इष्टदेव की महिमा बढ़ाने के लिए दूसरों के इष्टदेवों पर घृणा के गोले नहीं दागते थे। इनका महाभाव किसी भी इष्टो देवी-देवता के उपासक को अपने ढंग से स्पर्श और आंदोलित करने की क्षमता रखता था। यही कारण है कि मुसलमान सूफी और भारतीय भक्त तक अपनी-अपनी आराधना पद्धतियों के जुदा होने पर भी यह पहचान सके कि दोनों के भजन-पूजन का आधार एक ही है। जहाँ यह भावनात्मक एकता हो वहाँ चौदह क्या चौदह-सी भाषाएँ अलग होकर भी दरअसल एक ही हैं।

भक्तिमार्ग के अलावा ज्ञानमार्गी पद्धति भी भारत भर में व्याप्त थी। पेशावर, कश्मीर, पंजाब, अवध, मगध, गुजरात, बंगाल या धुर दक्षिण, कहीं का भी निवासी विद्वान, शास्त्री, संन्यासी हो, समूचे देश में हर जगह अपनी विधा की छाप छोड़कर अपना सिक्का जमा सकता था। संस्कृत भाषा हिंदुस्तान भर में इनको कहीं भी परायापन अनुभव नहीं होने देती थी।

इन दो मार्गों के अलावा एक और मार्ग भी था। भगवती बाबू के उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' में शिवानंद द्वारा एक नारा बखाना गया है- 'लूटो मेरे भाई', चूँकि हिन्दी की समझ हिंदुस्तान को अभी कम और अँग्रेज़ी की अधिक है; इसलिए 'बोल-चाल' की, चाँदनी चौक की भी भाषा में उस नारे को 'एल.एम.बी.' कहना हमने आरंभ कर दिया है। कहिए तो और नाम के अभाव में हम उसे फिलहाल अनंत काल तक 'एल.एम.बी. मार्ग' अर्थात् 'लूटो मेरे भाई मार्ग' के नाम से पुकार लें। महानुभाव अपनी अवतारी लीला पूरी करके चले जाते थे। एल.एम.बी. मार्गी उन के नाम पर पंथ चला कर अपना धर्म पालन करते थे। यह एल.एम.बी. ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी अपने-अपने इष्टदेवों के अखाड़े बनाकर लड़ता भी था, घृणा भी फैलाता था; पर इसके लिए भी जिस तंत्र का वह उपयोग करता था, वह भारत भर में एक-सा ही था; पाप में भी वह मजबूरी इसलिए थी कि भारतीय शिक्षा-पद्धति एक थी। सारे भारत में असंख्यत ब्राह्मण, जैन या बौद्ध आचार्यों के गुरुकुल थे, अपने-अपने घरों में थे, वे अपनी शिष्य-मंडली को शिक्षा देते थे। संस्कृत साहित्य की शिक्षा के लिए बड़े-बड़े नगरों या उनके आस-पास की जगहों में विद्यापीठ कायम थे। नगरों और ग्रामों की पाठशालाएँ अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं और संस्कृत के व्यावहारिक ज्ञान के अलावा महाजनी हिसाब-किताब में अपने-अपने जन को कुशल बनाती थीं। राज्य और महाजनी निगम अथवा व्यक्तिगत दोनों और क्षेत्रीय जातीय पंचायती पैसे से भी यह शिक्षा अमीर-गरीब सबके लिए सुलभ थी। श्री सुंदरलाल लिखित 'भारत में अँग्रेज़ी राज' के छत्तीसवें अध्याय में ये सारी कहानी संक्षेप में पढ़ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को मिल जाती है। इसी अध्याय में उद्धृत सन १८३२ ई. की ईस्ट इंडिया कंपनी की एक सरकारी रिपोर्ट में कहा गया है- 'शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊँची नहीं है, जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में।' तरीका यह था कि ऊँचे दर्जों के विद्यार्थी निचली कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और साथ-साथ अपना ज्ञान भी पढ़ाते और बढ़ाते चलते थे। 'म्युअचुअल ट्यूशन' की इस भारतीय शिक्षा-पद्धति को इंग्लिस्तानी शिक्षा-पद्धति में जोड़ लिया गया और हिंदुस्तान में तोड़ दिया गया। मुसलमानी शासन-काल में अरबी, फारसी और उर्दू पढ़ाने के लिए बहुत से मकतब और मदरसे भी स्थापित थे, अँग्रेज़ी नीति ने उन्हें भी उजाड़ा। पंडित सुंदरलाल ने अपने इतिहास ग्रंथ में लिखा है- 'सन् १७५७ से लेकर पूरे सौ वर्ष तक लगातार बहस होती रही कि भारतवासियों को शिक्षा देना अँग्रेजों की सत्ता के लिए हितकर है या अहितकर।' सन् १८३३ में ब्रिटिश गवाही देते हुए श्री जे.सी. मार्शमैन ने पार्लियामेंट की सेलेक्ट कमेटी के सामने कहा था- 'भारत में अँग्रेज़ी राज कायम होने के बहुत दिनों बाद तक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध होता रहा। ...कंपनी के एक डायरेक्टर ने कहा कि हम लोग अपनी इसी मूर्खता से अमेरिका से हाथ धो बैठे हैं, क्योंकि हम ने उस देश में स्कूल और कॉलेज कायम हो जाने दिए, अब भारत के विषय में हमारा उसी मूर्खता को दोहराना ठीक नहीं है।'

अँग्रेज जानता था कि भारतीय शिक्षा-पद्धति को तोड़ना भारत-भारती की तब तक सकुशल अखंड प्रतिमा को खंडित करना है। सैकड़ों सदियों से लगे सुव्यवस्थित ज्ञान-बगीचे को उन्होंने अज्ञान का बीहड़ जंगल बना दिया। हमारी परंपराएँ छिन्न-भिन्न करके उन्होंने हमें जंगली बना देने का भरसक प्रयत्न किया।

यहाँ एक बात और भी ध्यान में रखने की है। भारत अनेक राष्ट्रीयताओं और जातियों-उपजातियों का देश है। इन में आपस में राजनीतिक स्वार्थवश सदा से फूट और बैर भाव भी रहा है। ज्ञानमार्ग हो या भक्तिमार्ग इनके आपस के मत-मतांतर जब जन समुदायों में अपनी ताजगी लेकर जाते हैं, तब तो उनमें महाभाव जगा कर एकता लाते हैं, उन्हें सभ्य बनाते हैं, पर जब वे रूढ़ होकर लौकिक स्वार्थों अर्थात एल.एम.बी. के प्रभाव में आ जाते हैं, तब अपनी असलियत खोकर बैर और फूट बढ़ाने के कारण भी बन जाते हैं। भारतीय शिक्षा-पद्धति, तीर्थ-यात्रा के आकर्षण से साधु-संन्यासियों का परिभ्रमण, पौराणिक कथाओं की एकसूत्रता इस फूट को बराबर जोड़ती भी रहती थी। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, भारत के किसी भी कोने में उत्पन्न होने वाले महापुरुष सारे भारत को प्रभावित करने की क्षमता रखते थे। अँग्रेजों ने हमारी शिक्षा-पद्धति को उजाड़कर हमारी एकता के उस सूक्ष्म तंतुजाल को काटना चाहा। लेकिन इस महादेश पर शासन करने के लिए उन्हें दफ्तरी कारिंदों की आवश्यकता भी थी। कहाँ से लाएँ? राज-काज यहाँ की भाषाओं में चलाएँ या अँग्रेज़ी भाषा में? मैकाले ने सन् १८३५ ई. में फतवा दिया कि ऊँची श्रेणी के भारतीयों को अँग्रेज़ी में शिक्षा देकर उनका एक ऐसा वर्ग बनाना चाहिए जो रंग और खून से तो हिंदुस्तानी हो पर जो रुचि, मतों, शब्दों और बुद्धि से अँग्रेज हो। हमारे देश में बहुत-से लोग यह समझने और मानने लगे हैं कि अँग्रेज़ी ही हमारी इस व्यापक राष्ट्रीय एकता का कारण है। लेकिन मेरी विनम्र समझ में उनका यह मत ठीक नहीं। नया ही सही पर अँग्रेजों की अशिक्षा प्रसार-नीति के बाद शिक्षा प्रसार का यह माध्यम पुरानी भारतीय सभ्यता को, हमारी भावात्मक एकता को पुनर्प्रतिष्ठित करने में तत्काल ही सहायक हो गया। अँग्रेज़ी पढ़कर भारत में एक नया काला अँग्रेज तैयार तो हुआ, पर ठीक-ठीक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अँग्रेजी सरकार की धारणा के अनुसार सभी अँग्रेज़ी पढ़ने वाले ऐसे न बने। अँग्रेज़ी के अध्ययन ने उन्हें अपना पुराना और विदेशों का नया ज्ञान वैभव प्रदान कर के कट्टर भारतभक्त, स्वतंत्रता प्रिय, न्यायी और विवेक-शील बना दिया। ये भारतीय ही हमारे नए राष्ट्र निर्माता बने। हमारा आधुनिक मध्यम-वर्ग इन्हीं अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे, स्वस्थचेता भारतीयों और काले अँग्रेजों का है। स्वस्थचेता अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को नए सिरे से उठाया, उसमें उन्होंने साहित्यिक-रचना करनी आरंभ की, सामाजिक वैचारिक आंदोलनों को मातृभाषा के माध्यम से जनमानस में आंदोलित किया। नई वैज्ञानिक शक्तियों का महात्यिय बखाना। हमारे हिन्दी भाषी प्रदेशों में भी एक नया युग आरंभ हुआ।

हिंदी के पुराने सुलेखक श्रीयुत ज्ञानचंद जैन ने वर्षों पहले अपनी किसी प्रस्तोवित थीसिस के लिए बड़े श्रम से बड़ा मसाला जुटाया था। उनके एक रजिस्टर में मुझे सन् १८५३ ई. में आगरा के मोती-कटरा मुहल्लेट से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक समाचार पत्र बुद्धि प्रकाश के कई उद्धरण टँके हुए मिले। पत्र के संपादक मुंशी सदासुखलाल थे। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा में उक्त साप्ताहिक पत्र की कुछ फाइलें सुरक्षित हैं। गदर से चार वर्ष पहले की हिन्दी की बानगी देखने के साथ ही नयी चेतना के शुभागमन की सूचनाओं पर भी गौर करना उचित होगा। २० अप्रैल, १८५३ के अंक में 'लोहे की सड़क के समाचार' प्रकाशित हुए हैं। रेल शब्द जो आज भारतीय जन साधारण में खूब प्रचलित है, उस समय अपरिचित था। समाचार की भाषा इस प्रकार है- 'हिंदुस्तान के निवासियों को प्रकट हो कि एक लोहे की सड़क इस देश में भी बन गई और वर्तमान महीने को ४ तारीख से पंथियों का आवागमन भी उस पर होने लगा और ये लोहे की सड़क जो बंबई में बनी है हिंदुस्तान में सब से पहली है।' उस समय कोई 'हिंदी फोनेटिक' तो मौजूद न था। पर समाचारों की भाषा फिर भी हिन्दी ही थी।

१७ अगस्त, १८५३ ई. के अंक में लखनऊ के समाचार पढ़िए। वाजिद अली शाह की फिजूलखर्ची इस समाचार में बखानी गई है। लिखा है- 'पहले महीने के पिछले दिनों में अवध के बादशाह ने बड़ी जिवनार की। नगर के निवासियों को केवल इसीलिए बुलाया था कि श्रीयुत बादशाह सलामत कहते हैं कि आज देखें लोग जोगिए भेस में कैसे दृष्टि आते हैं। सो आज्ञा हुई कि जितने सेवक इस दरबार के हैं सब गेरुए वस्त्र पहनकर आएँ। उनके अनुसार लोग वही भेस बना के इकट्ठे हुए और यह जमाय परस्तावन बाग में हुआ। तीन दिवस तक खान-पान, नाच-रंग होता रहा और प्रत्येक दिन एक लाख मनुष्य से अधिक इकट्ठे होते थे। क्यों न हों, राजाओं के योग्य यही बातें हैं। आशय यह कि जब धूमधाम हो चुकी साहिब रेजीडेंट बहादुर असिस्टेंट साहिब को साथ ले बादशाही दरबार में सिधारे। निश्चित होता है कि इस मूर्खता के विषय में कुछ कहने गए होंगे।'

उसी वर्ष में २६ अगस्त के अंक में मुरादाबाद में मुहर्रम के अवसर पर शिया-सुन्नीम झगड़े और दशहरे पर अलीगढ़ में हिंदू-मुस्लिम दंगे की खबरों के साथ ही बंगाल में होने वाली एक सामाजिक सभा के समाचार भी छपे हैं- 'राजा राधाकांत बहादुर ने पिछले महीने की २६ तारीख मंगलवार को पंडितों की सभा इस निमित्त की कि विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह के विषय शास्त्रार्थ होने के पीछे जो कुछ निर्णय हो सो व्यवस्थाओं की रीति पर लिखा जाए।'

एक सौ नौ वर्ष पहले की यह हिन्दी भाषा क्या बनावटी है? कठिन है? नहीं, हमारे लिए नहीं, पर हिन्दी की परंपरा को 'फैनेटिसिज्म' के नाम पर रद्दी मोल तोलने वालों को यह भी शायद कठिन और बनावटी लगे। राजर्षि टंडन के स्वर्गवास का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाचार रेडियो की प्रयोगवादी भाषा में यों प्रसारित किया गया था- '...चल बसे।' 'स्वर्गवास' शब्द दिल्ली? के चाँदनी चौक में प्रचलित नहीं, 'अधीन' शब्द भी चाँदनी चौक में प्रचलित नहीं, वहाँ केवल 'मातहत' ही लोकप्रिय है। चाँदनी चौक की हिन्दी के नाम पर हाल ही में रेडियो मंत्रियों ने बड़े तूफान खड़े किए थे। मैं दिल्ली के चाँदनी चौक की जनता से सीधा प्रश्न करता हूँ, क्या चाँदनी चौक के निवासी स्वर्ग नहीं, केवल जन्नत ही जानते है? चाँदनी चौक किसी भी शहर के चौक से बहुत अलग होकर भी एकदम निराला तो नहीं हो सकता। हम 'आधीन' तो बोलते ही हैं, 'मातहत' शब्द बहुत कम और 'आधीन' बहुत अधिक प्रचलित है, रामाधीन, श्यामाधीन, शिवाधीन आदि नाम हम में से हर एक ने खूब सुने होंगे।

फिल्लौर, जिला जालंधर, पंजाब के पंडित श्रद्धारामजी ने सन १८७७ ई. में भाग्यवती नाम का एक उपन्यास लिखा था। उस समय भी कोई 'हिंदी फोनेटिक' नहीं था। इसलिए भाग्यवती की भूमिका गंभीरतापूर्वक ध्यान देने के योग्य है। फिल्लौरी जी लिखते हैं- 'इस ग्रंथ में वह हिन्दी भाषा लिखी है जो दिल्ली और आगरा, सहारनपुर, अंबाला के इर्द-गिर्द के हिंदू लोगों में बोली जाती और पंजाब के स्त्री-पुरुषों को भी समझनी कठिन नहीं है। इस ग्रंथ में जिस देश और जिस भाँति के स्त्री-पुरुषों की बात-चीत हुई है वह उसी की बोली और ढंग से लिखी है, अर्थात् पूर्वी पंजाबी पढ़ा-अनपढ़ा, स्त्री और पुरुष गौण और मुख्य जहाँ पर कोई जैसे बोला उसी की बोली भरी हुई है।'

श्रीयुत डॉ गोपाल रेड्डी कृपा करके इस भाषा परंपरा पर ध्यान दें। आंध्र प्रदेश में हैदराबाद के निजामी प्रभाव से उर्दू का खास चलन चला। राघवेंद्र राव आदि कुछ तेलगु भाषी हिंदुओं ने उर्दू काव्य साहित्य को अपनी प्रतिभा का दान भी उसी तरह से दिया है जिस तरह पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य भारत के हिंदू परंपरागत शब्द मिट गए? क्या वे जनसाधारण की बोल-बाल से भी उठ गए? सीताराम राजू की 'बोरो कथा' में 'ओ तेलुगु बिड्डुला ओ वीर योधुड़ा' वाली उत्साहवर्धक पंक्तियाँ अगर 'तेलगु फैनेटिसिज्म' की परिचायक है, 'कंबन पिरंद तमिलनाडु' गीत गाने वाले अगर तमिल-फैनेटिक है, 'बांगालेर माटी' की महिमा गाने 'फैनेटिक' है तो हमें भी 'हिंदी-फैनेटिक' कहलाने में गर्व का ही बोध होगा।

उन्नीसवीं सदी केवल हिन्दी या हिन्दी भाषा-भाषियों के समाज ही में क्रांति नहीं लाई, बल्कि पूरे देश की भाषाओं और उनके बोलने वालों के समाज में भारी परिवर्तन ला रही थी। बढ़ते हुए अँग्रेज़ी प्रभाव को देखकर सारे देश भर में यहाँ का पुराना निवासी एक साथ जागा था। कलकत्ता, मद्रास, बंबई, काशी, पूना, इलाहाबाद, पटना, लाहौर, कराँची, आदि नई मध्यवर्गीय चेतना के तीर्थ थे। नागरिक और हद से हद प्रादेशिक स्तर पर सारे साहित्यिक, सामाजिक और जातीय आंदोलन हो रहे थे। वह हमारे नए जागरण का पहला दौर था। छापेखानों के प्रचार ने इसमें बड़ा योगदान दिया है। अँग्रेज़ी पढ़ना नौकरी पाने के लिए ज़रूरी था, पर ईसाइयों के स्कूलों में न पढ़ाना पड़े, इसलिए भारतीयों द्वारा चंदे से स्कूल खोले जाने लगे। आरंभ में अँग्रेज़ी पढ़ने के सम्बंध में घरों में बिरादरी वालों से लेकर गाँव के जमींदार तक में कुलीन नौजवान का विरोध भी हुआ है, पर जान पड़ता है कि अँग्रेज़ी पढ़ाने के लिए बड़ा आकर्षण भी समाज में क्रमशः घर करता गया। एक बुजुर्ग से मैंने सुना था कि उनके बाबा अपने बाप से छिप कर अँग्रेज़ी पढ़ने के लिए गाँव से गए थे। पिछ्वाड़े के द्वार से छिपकर अपनी माँ से मिलने घर आया करते थे। पाँच-छह वर्षों तक यों ही चलता रहा। फिर पिता भी राजी हो गए. पंडित मदनमोहन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मालवीय, महाराज के चबूतरे पर स्थापित पाठशाला में पढ़ने वाला, दरिद्र किंतु सत्यनिष्ठ कथावाचक का बेटा, पढ़ने के लिए ईसाइयों के स्कूल में तो भेजा जाता है, पर प्यास लगने पर वहाँ पानी नहीं पी सकता। प्यास बेकाबू होने पर और मौलवी साहब के छुट्टी न देने पर लड़का घर भाग जाता है। ताऊ सुन कर चाँटा मारते हैं- 'लड़का भाषा भले ही अँग्रेज़ी पढ़ रहा था, पर उसकी निष्ठा सदियों-दर-सदियों के तपे संस्कारों की ही थी। प्रात: स्मरणीय महामना अपने समय में एक नहीं थे। उस काल में भारत के हर प्रदेश में उत्पन्न होने वाले राजनीतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक महापुरुषों की जीवनियों में आपको यह निष्ठा तत्त्व किसी न किसी रूप में अवश्य मिलेगा। यही निष्ठा-तत्त्वम तो भारत भर में फैलते-सिमटते सन १८८४ ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस बन गया।'

गदर के बाद वाले नए काल में जमाना दस-दस, बीस-बीस बरस में बड़ी तेजी से बदला है। अवध में गदर का अंतिम युद्ध १४ जनवरी १८५९ को बहरामघाट पर लड़ा गया। लगभग दो वर्षों तक अर्थात् सब से ज़्यादा दिनों तक जहाँ अँग्रेजों के प्रति सक्रिय विरोध रहा है, वहीं १८६५-६६ की सरकारी रिपोर्टों के अनुसार अँग्रेजी सरकार के तेरह सौ स्कूलों में पाँच हजार लड़के अँग्रेज़ी भाषा पढ़ रहे थे। यह हमारे समाज की तीव्र प्रगति का प्रमाण है, कुछ अँग्रेज़ी की लैला पर मर-मिटने का नहीं। अँग्रेज़ी पढ़ने वालों में सरकारी, अफसर, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर सभी हुए। अफसर के पास सत्ता थी, लेकिन वकील, प्रोफेसर, और संपादक आदि पढ़े-लिखों के साथ जन-बल था। पुराने भारतवासियों के समाज में उसके स्वजातीय अफसरों के रौब ने जो सुधार आंदोलन लादा, उस से कहीं अधिक स्वस्थ और स्वच्छ धरातल पर बौद्धिक वर्ग ने सुधार किया। यह आज की दुश्मन सांप्रदायिकता भी कुर्सी वालों ही की देन है। फलाँ मुसल्लों अफसर ने साहब की खुशामद करके इतने मुसलमानों को नौकरी दिला दी और अमुक हिंदू, धोतीप्रसाद ने सरकारी नौकरियों में इतने हिंदू घुसा दिए, इस तरह की चकल्लस से हमारे समाज के दूसरे अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे बुद्धिवादी बुद्धिजीवी आरंभ में बिल्कुल अलग थे। मुहम्मद अली जिन्ना अनेक पढ़े लिखे मुसलमान कांग्रेस में शामिल थे।

वे सब पढ़े-लिखे हिंदू-मुसलमान अधिकतर थे? नामी खानदानी, अमीर उमरा के वंशज? नहीं। इनमें दरिद्र घरों में जन्म लेने वालों गोखले, मालवीय जैसे लोग ही अधिक थे। गाँधी एक गुजराती ताल्लुकेदार के दीवान के बेटे थे; अधिक-से-अधिक कह लीजिए, खाता-पीता, खुश-परिवार था। इन्हीं औसत खाते-पीते, भले या दरिद्र, किंतु कुलीनों के तेजस्वी नैनिहाल अँग्रेज़ी पढ़-लिखकर देशी-प्रेमी, स्वभाषा-प्रेमी, संस्कृति-प्रेमी, उदार मानवीय दृष्टि-कोण पाने वाले महापुरुष हुए। उन्होंने अँग्रेजी, संस्कृत और पाली आदि भाषाओं के अध्ययन से अपने देश की प्राचीन उपलब्धियों को फिर से उपलब्ध किया और अपनी-अपनी भाषाओं में प्रेम के द्वारा एक नई वैचारिक क्रांति उत्पन्न की। जो गीता, रामायण, पुराण, उपनिषद् आदि प्राचीन साहित्य को धार्मिक ग्रंथ मात्र समझते हैं, उन्हें उस जमाने में भी यह देखकर बड़ा अचरज हुआ था कि गीता पढ़कर हमारे यहाँ लोग बमबाज क्रांतिकारी भी बने और तिलक, गाँधी अरविंद भी बने। शायद आज यह बात आश्चर्यजनक लगे, किंतु दिन के उजाले की तरह सच है कि राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों में एक सीताराम बाबा ने तुलसीकृत रामयण की चौपाइयों से उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बहुत से गाँवों में क्रांति की चिंगारियाँ मूसलाधार बरसाई थीं। संध्या के एक नित्य पाठ वाले संकल्प के मंत्र में 'राज्यम् वैराज्यम् गण-राज्यम् साम्राज्य' आदि शब्दों पर ध्यान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देकर इन की खोज में जुटते ही बैरिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल को हमारे देश का वह अनूठा इतिहास मिला, जो हिंदू पॉलिटी नामक पुस्तक में उनकी तथा उनके देश की कीर्ति को सदा अमर रखेगा। उपनिषद्-पुराणों का उद्देश्य से एल.एम.बी. मार्गियों ने चाहे जैसे भी सिद्ध किया हो, लेकिन उससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वे भारतीय दर्शन और कला की उच्चतम सिद्धियाँ नहीं हैं या उन्हें और पढ़ने से आदमी सांप्रदायिक बन जाता है? जब हम यह सत्य जान लेते हैं कि अपने ऊँचे संस्कारों वाले मन की इच्छाओं को ज्ञान-सधी बौद्धिक शक्ति और शारीरिक क्रिया-शक्ति रूपी पंखों के सहारे मनुष्य को हर दिशा और हर ऊँचाई पर उड़ने का अधिकार मिल जाता है। चाहे वह साहित्य में प्रवेश करे या राजनीति, दर्शन योग या शिक्षा आदि के क्षेत्रों में, तो धर्मों से जुड़कर भी हमें संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता का पता लग जाता है।

अपनी संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता पहचानने से हमारे नए मध्यस्थ वर्ग के पुरखों को हमारी पुरानी भावनात्मक एकता की पहचान हुई, यही एकसूत्रता वे भाषा और लिपि के रूप में भी चाहते थे। राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के कारण हिन्दी की एक न एक बोली भी संस्कृत के साथ-साथ सारे भारत से जुड़ी रही और देवनागरी लिपि भी। इसलिए संस्कृत भाषा वाली एकसूत्रता उन्हें देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृत छाप खड़ी बोली में भी मिल गई, खड़ी बोली की उर्दू शैली एक लिपि के साथ मुसलमानी शासनकाल में भरसक फैलाई गई थी; पर उससे हिंदी-भाषी पुराने देशवासियों या अहिंदी-भाषी पुरानी परंपरा के भारतीयों का काम नहीं चलता था। सन् १९१० ई. में जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर ने कहा था- 'अब जब उत्कृष्ट लेखक देशी भाषाओं के साहित्य की पूर्ति कर रहे हैं और उन सब देशी साहित्यों का उद्गम प्राचीन आर्य साहित्य है, तब क्या एक भाषा की संपत्ति को दूसरी के पास पहुँचाना आवश्यक नहीं? ...अब हम यदि किसी एक लिपि को ग्रहण करना चाहें तो... एक और अरबी लिपि है, जिसे यदि सब नहीं तो अधिकांश मुसलमान अपने संकीर्ण जातीय ममत्व के वशीभूत होकर अपनाए हुए हैं। कुछ लोग रोमन अक्षरों को उपयुक्त बतलाते हैं। फिर देवनागरी लिपि है जिसमें हिन्दी और प्राय: समस्त भारतीय भाषाओं की जड़ संस्कृत लिखी जाती है। अरबी लिपि तो इस तरह तिरस्कृत है कि वह अपूर्ण भी है और उसमें व्यर्थ के अक्षरों की भरती है। ...मुझे इस विषय के अच्छे ज्ञाता श्री सैयदअली बिलग्रामी का यह निश्चित मत सुनाया गया है कि अरबी लिपि भारतीय लिपि होने के योग्य नहीं। रोमन अक्षरों के विषय में इतना निश्चित है कि लोगों के जातीय भाव को धक्का लगेगा। ऐसी स्थिति में क्या मेरी यह प्रार्थना निष्फल होगी कि देश के हित के लिए नागरी अक्षरों का व्यवहार स्वीकार करें।' (चंद्रवती पांडेय लिखित शासन में नागरी पुस्तक से) जस्टिस कृष्ण स्वामी अय्यर या बाबू शारदाचरण मित्र या राजर्षि टंडन 'नागरी फैनेटिक' नहीं, बल्कि देश और अपनी संस्कृति के प्रेमी थे। उनके पुरखे सौ से भी अधिक वर्षों से राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी-नागरी को बढ़ावा दे रहे थे। राजा राममोहन राय देश के सुधार के लिए अखबार निकालने बैठे तो केवल अँग्रेजी भाषा और रोमन अक्षरों ही से उनका मन न भरा। हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों को भी अपनाया। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, दयानंद सरस्वती, लोकमान्य तिलक आदि भी अपनी भारतीय निष्ठा के कारण ही हिंदी-नागरी को बढ़ावा दे रहे थे। यही कारण है कि हिन्दी का विकास कई दिशाओं से हो रहा था और भारतेंदु को अपने हिन्दी भाषा नामक ग्रंथ में संस्कृत, अँग्रेजी, फारसी शब्दों के न्यूनाधिक प्रयोग और उच्चारण विभेद से हिन्दी के बारह भाग करने पड़े। अधखिला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फूल की भूमिका में हरिऔध जी ने इसका हवाला देते हुए 'अधिक संस्कृत शब्द युक्त हिंदी', 'अल्प संस्कृत शब्द प्रयुक्त हिंदी', 'शुद्ध हिंदी', 'अधिक फारसी शब्द युक्त हिंदी', 'बंगालियों की हिंदी', 'अँग्रेजों की हिंदी', आदि विभाग गिनाए हैं।

यह हिन्दी और देवनागरी लिपि नए भारतीय मध्य वर्ग के प्रयत्न से पुराने भारतवासियों के समाज में वैचारिक क्रांति ला रही थी। विधवा-विवाह हो, बाल-विवाह न हो, धर्मांधता से मुक्ति मिले, अपनी भाषा और संस्कृति के लिए प्रेम बढ़े, राजनीतिक और आर्थिक क्रांति लाई जा सके-इसलिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा था, कुछ 'हिंदी फैनेटिसिज्म' बढ़ाने के लिए नहीं। जिस तरह से अहिंदी-भाषी बौद्धिकी लोग राष्ट्र की भावनात्मक एकसूत्रता के लिए हिंदी-नागरी की और बढ़ रहे थे, उसी तरह हिंदी-भाषी बुद्धिचेता जनता भी बँगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के नए साहित्य की ओर शुरू ही से उन्मुख हो रही थी। उत्तर भारत का देशवासी अपनी परंपराओं के प्रति आस्था पाने के लिए ही भारत की दूसरी भाषाओं के साहित्य से बँध रहा था। उसके क्षेत्र में फलने-फूलने वाला, उसकी अपनी ही एक बोली की विदेशी शैली साहित्य यानी उर्दू से उसे वह आस्था नहीं मिलती थी। यही कारण था कि लखनऊ रानी कटरा के निवासी पंडित रतननाथ दर 'सरशार' के मुहल्ले वाले होकर भी पंडित रूपनारायण पांडेय हिन्दी और बँगला भाषाओं के बीच की एक महान कड़ी बने; यही कारण है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन देश के हर भाषा-क्षेत्र में सफलतापूर्वक संपन्न होते रहे और यही कारण है कि दक्षिण में एक हिन्दी प्रचार सभा ने पिछले चालीस-पैंतालीस वर्षों में अपनी सफलता का एक चमत्कारिक इतिहास बनाया है। यह हिन्दी भला 'फैनेटिक' बना सकता? हाँ, यह हिन्दी अटूट लगन वाले राष्ट्र-प्रेमी, मानव-मात्र के सच्चे प्रेमियों का सुदृढ़ आस्था वाला समाज अवश्य बना सकती है; और यदि 'अटूट लगन' और सुदृढ़ आस्था 'फैनेटिसिज्म' शब्द की व्याख्या के अंतर्गत ही आते हों तो हम कुछ नेता बाबुओं के बाँधे हुए हुल्लड़ के अनुसार अवश्य ही 'हिंदी फैनेटिक' हैं और इसी में अपना गौरव-बोध करते रहेंगे, हमारी भाषा और समाज का विकास भी इस ढंग पर निर्भय-निःशंक होता रहेगा।

साभार : (1962, साहित्य और संस्कृति में संकलित)

मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूँ पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं सह नहीं सकता।

-आचार्य विनोबा भावे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गणेश शंकर विद्यार्थी

भाषा और साहित्य

श्रीमन् स्वागताध्यक्ष।

महोदय, देवियो और सज्जनो,

इस स्थान से आपको संबोधित करते हुए मैं अपनी दीनता के भार से दबा-सा जा रहा हूँ। जिन साहित्य के महारथियों से इस स्थान की शोभा बढ़ चुकी है, उनका स्मरण करके, और जिस प्रकार के साहित्य-मर्मज्ञों को इस आसान पर आसीन होना चाहिए, उनकी कल्पना करके मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता हूँ कि इतने भारी कार्य के भार को लेकर मैंने बड़ी भारी धृष्टता की है। मैं कार्य की गुरुता को पहले भी जानता था, किंतु समय और सुविधा की कमी से चिंतित गोरखपुरी मित्रों के प्रबल अनुरोध से मुझे इस बात के लिए तैयार होना पड़ा कि पूजनीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की अनुपस्थिति में उनके एक बहुत छोटे सेवक के नाते मैं गोरखपुर सम्मेलन की साधारण कार्यवाही को भले या बुरे, जिस ढंग से बने, इसे पूरा करा दूँ। जब सम्मेलन का समय आगे के लिए टल गया, तब मैंने चाहा भी कि इस बड़े काम से मुझे छुट्टी मिल जाये। किंतु अनेक कारणों से मेरा पीछे हट आना असंभव हो गया, इसीलिए आज मैं यहाँ इस प्रकार आपके सामने उपस्थित हूँ। कहाँ राजनीति का चंचल क्षेत्र और उसका नित्य का अस्थिर और उच्छृंखल पर्यटन, और कहाँ यह सुंदर सुललित साहित्य-सर, जिसमें पैठने के लिए बड़ी साधना और पुण्य की आवश्यकता है। अपनी असमर्थता, अपनी कमी का मुझे स्वयं जितना अधिक अनुभव था, आज इस अवसर पर, आपके समक्ष वह अनुभव और भी अधिक तीव्रता के साथ मुझे व्यवस्थित कर रहा है। मैं आपके समक्ष कोई नयी बात नहीं रखने जा रहा। मैं जो कुछ कहूँगा वह भी बहुत त्रुटिपूर्ण होगा। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरी त्रुटियों पर ध्यान न दें, उनके लिए मुझे क्षमा करें, और जिस बड़े कार्य के लिए हम सब इस महान देश के कोने-कोने से आकर बाबा गोरखनाथ की इस पुरी में एकत्र हुए हैं, उसकी सिद्धि ही के लिए हम कुछ विशेष निष्कर्षों पर पहुँचें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh,Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज से उन्नीस वर्ष पहले, जबकि इस सम्मेलन (गोरखपुर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के १९वें अधिवेशन में २ मार्च, १९३० को विद्यार्थी जी द्वारा दिये गये अध्यक्षीय अभिभाषण की अविकल प्रस्तुति) का जन्म नहीं हुआ था और उसके जन्म के पश्चात् भी कई वर्षों तक अपनी मातृभाषा का स्वंतत्र अस्तित्व सिद्ध करने के लिए पग-पग पर न केवल संस्कृत, प्राकृत, शौरसैनी, मगधी, सौराष्ट्रीय आदि की छानबीन करते हुए शब्द-विज्ञान और भाषा-विज्ञान के आधार पर यह सिद्ध करने की आवश्यकता पड़ा करती थी कि हिंदी भाषा संस्कृत या प्राकृत की बड़ी कन्या है, किंतु बहुधा बात यहाँ तक पहुँच जाया करती थी और यह भी सिद्ध करना पड़ता था कि नानक और कबीर, सूर और तुलसी की भाषा का, बादशाह शाहजहाँ के समय जन्म लेने वाली उर्दू बोली का पहले कोई अलग गद्य रूप भी था। जिस भाषा में पद्य की रचना इतने ऊँचे दर्जे तक पहुँच चुकी हो, उसके संबंध में इस बात की सफाई देनी पड़े कि उसका उस समय गद्य रूप भी था, इससे बढ़कर कोई हास्यापस्पद बात नहीं हो सकती। इस देश में गद्य में लिखने का बहुत प्रचार नहीं था। बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गए, पहले संस्कृत में और फिर उसकी कन्या-भाषाओं में, किंतु थे अधिकांश पद्य में। ऐसा भाषित होता है कि उस समय गद्य में लिखना गेय समझा जाता था। पद्य लिखने ही से विद्वता का अधिक परिचय प्राप्त हुआ करता था। अन्य देशों में भी पहले पद्य लिखने ही की बहुत परिपाटी थी। ग्रीस और रोम, ईरान और चीन में प्राचीन काल में गद्यात्मक रचनाएँ भी हुई, किंतु इनका इतना अधिक महत्त्व नहीं था, जितना पद्यात्मक रचनाओं का। इसी प्रकार भारतवर्ष में भी पद्यात्मक रचना का महत्त्व अधिक था। यह संभव है कि अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ पद्यात्मक रचना और भी अधिक आवश्यक और गद्यात्मक रचना और भी अधिक अनावश्यक समझी गयी हो। किंतु पद्यों के बड़े-से-बड़े युग में भी गद्य का कोई मूल्य न रहा हो और उसका अस्तित्व नितांत लोप हो गया हो, इस बात की कल्पना करना भी हास्यास्पद है। इसीलिए उत्कृष्ट हिंदी-पद्य-रचना के समय के पश्चात हिंदी के गद्य के स्वतंत्र अस्तित्व के सिद्ध करने की आवश्यकता पड़ना इस देश का एक विचित्र व्यापार है। विचित्र व्यापार का एक बड़ा भारी कारण है। मैं जिस कारण की ओर निर्देश करूँगा, वह संभव है आपमें से अनेकों को मेरी निज की निरंतर विचार-शैली का एक कारण मात्र जँचे, किंतु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उस कारण को आपके सामने रखने में किसी प्रकार की संकीर्णता से काम नहीं ले रहा। मैं केवल एक सर्वमान्य बात को आपके सामने रख रहा हूँ, और मैं यह भी चाहूँगा कि आप में से जो सज्जन मुझसे इस विषय में मतभेद रखते हों, वे इसके विपरीत संसार भर में कहीं से कोई भी उदाहरण निकालकर उपस्थित करने की कृपा करें। मैं जो कुछ कहने वाला हूँ, वह केवल इतना ही है कि राजनीतिक पराधीनता पराधीन देश की भाषा पर अत्यंत विषम प्रहार करती है। विजयी लोगों की विजय-गति विजितों के जीवन के प्रत्येक विभाग पर अपनी श्रेष्ठता की छाप लगाने का सतत् प्रयत्न करती है। स्वाभाविक ढंग से विराजितों की भाषा पर उनका सबसे पहले वार होता है।

भाषा जातीय जीवन और उसकी संस्कृति की सर्वप्रधान रक्षिका है, वह उसके शील का दर्पण है, वह उसके विकास का वैभव है। भाषा जीती, और सब जीत लिया। फिर कुछ भी जीतने के लिए शेष नहीं रह जाता। विजितों का अस्तित्व मिटता चलता है। विजितों के मुँह से निकली हुई विजयी-जनों की भाषा उनकी दासता की सबसे बड़ी चिह्नाजनी है। पराई भाषा चरित्र की दृढ़ता का अपहरण कर लेती है, मौलिकता का विनाश कर देती है और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नकल करने का स्वभाव बना करके उत्कृष्ट गुणों और प्रतिभा से नमस्कार करा देती है। इसीलिए, जो देश दुर्भाग्य से पराधीन हो जाते हैं, वे उस समय तक, जब तक कि वे अपना सब कुछ नहीं खो देते, अपनी भाषा की रक्षा के लिए सदा लोहा लेते रहना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अनेक यूरोपीय देशों के इतिहास भाषा-संग्राम की घटनाओं से भरे पड़े हैं। प्राचीन रोम साम्राज्य से लेकर अब तक के रूस, जर्मन, इटैलियन, ऑस्ट्रियन, फ्रेंच और ब्रिटिश सभी साम्राज्यों ने अपने अधीन देशों की भाषा पर अपनी विजय-वैजयंती फहरायी। भाषा-विजयी का यह काम सहज में नहीं हो गया। भाषा-समरस्थंजली के एक-एक इंच स्थान के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुई। देश की स्वाधीनता के लिए मर मिटने वाले अनेक वीर-पुंगवों के समयों में इस विचार का स्थान सदा ऊँचा रहा है कि देश की भौगोलिक सीमा की अपेक्षा मातृभाषा की सीमा की रक्षा की अधिक आवश्यकता है। वे अनुभव करते थे कि भाषा बची रहेगी तो देश का अस्तित्व और उसकी आत्मा बची रहेगी, अन्यथा फिर कहीं उसका कुछ भी पता न लगेगा।

भाषा-संबंधी सबसे आधुनिक लड़ाई आयरलैंड को लड़नी पड़ी थी। पराधीनता ने मौलिक भाषा का सर्वथा नाश कर दिया था। दुर्दशा यहाँ तक हुई कि इने-गिने मनुष्यों को छोड़कर किसी को भी गैलिक का ज्ञान न रहा था, आयरलैंड के समस्त लोग यह समझने लगे थे कि अँग्रेजी ही उनकी मातृभाषा है, और जिन्हें गैलिक आती भी थी, वे उसे बोलते लजाते थे और कभी किसी व्यक्ति के सामने उसके एक भी शब्द का उच्चारण नहीं करते थे। आत्म-विस्मृति के इस युग के पश्चात् जब आयरलैंड की सोती हुई आत्मा जागी तब उसने अनुभव किया कि उसने स्वाधीनता तो खो ही दी, किंतु उससे भी अधिक बहुमूल्य वस्तु उसने अपनी भाषा भी खो दी। गैलिक भाषा के पुनरुत्थान की कथा अत्यंत चमत्कारपूर्ण और उत्साहवर्धक है। उससे अपने भाव और भाषा को बिसरा देने वाले समस्त? देशों को प्रोत्साहन और आत्मोद्वार का संदेश मिलता है। इस शताब्दी के आरंभ हो जाने के बहुत पीछे, गैलिक भाषा के पुनरुद्धार का प्रयत्न आरंभ हुआ। देखते-देखते वह आयरलैंड भर पर छा गयी। देश की उन्नति चाहने वाला प्रत्येक व्यक्ति गैलिक पढ़ना और पढ़ाना अपना कर्तव्य समझने लगा। सौ वर्ष बूढ़े एक मोची से डी-वेलरा ने युवावस्था में गैलिक पढ़ी और इसलिए पढ़ी कि उनका स्पष्ट मत था कि यदि मेरे सामने एक ओर देश की स्वाधीनता रखी जाए और दूसरी ओर मातृभाषा, और मुझसे पूछा जाये कि इन दोनों में एक कौन-सी लोगे, तो एक क्षण के विलंब के बिना मैं मातृभाषा को ले लूँगा, क्योंकि इसके बल से मैं देश की स्वाधीनता भी प्राप्त कर लूँगा।

राजनीतिक पराधीनता ने भारतवर्ष में भी उसी प्रकार, जिस प्रकार उसने अन्य देशों में किया, भाषा-विकास के मार्ग में रोड़े अटकाने में कोई कमी नहीं की। यद्यपि इस देश के मुसलमान शासक बहुत समय तक विजेता और विदेशी नहीं रहे और उनकी भाषा का विशेष प्रभाव देश के अन्य भागों पर बहुत कम पड़ा है, किंतु तो भी उनके कारण भारतीय भाषाओं का सहज स्वाभाविक विकास नहीं हो सका। सबसे अधिक हिंदी की हानि हुई। उसकी सत्ता देश के उत्तर, पश्चिम और मध्यवर्ती भाग में थी। यही प्रदेश शाही सत्ता के कारण, अरबी अक्षरों और फारसी साहित्य से इतने प्रभावित हुए कि उनका रंग-रूप ही बदल गया, और आज तक बहुत-से स्थानों में सत्यनारायण की कथा तक विधिवत अरबी अक्षरों में पढ़ी जाती है। एक भाषा दूसरी भाषा के संसर्ग में आकर शब्दों और वाक्यों का सदा दान प्रतिदान किया करती है। यह हानिकारक या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपमानजनक बात नहीं। प्रत्येक भाषा के विकास के लिए इस बात की आवश्यकता है। किंतु जब यह दान-प्रतिदान प्रभुता और पराधीनता की भावना से होता है, एक भाषा को दूसरी भाषा के शब्दों और वाक्यों को इसलिए लेना पड़ता है कि दूसरी भाषा को दूसरी भाषा के शब्दों और वाक्यों को इसलिए लेना पड़ता है कि दूसरी भाषा के लोग बलवान है, उनकी प्रभुता है, उनको प्रसन्न करना है, उनके सामने झुकना है, तो इससे लेने वालों की उन्नति नहीं होती, वे अपनी गाँठ का बहुत कुछ खो देते ही हैं और परभाषा की सत्ता स्वीकार करके अपनी परवशता और हीनता को पुष्ट करते है और अपने सर्वसाधारण जन से दूर जा पड़ते हैं। इस देश में विजेताओं के साथ फारसी के प्रदेश से ये बातें हुई। इसलिए बाबा गोरखनाथ, गंग कवि आदि के गद्य पर जोर देते हुए, हिंदी भक्तों को यह सिद्ध करने की आवश्यकता पड़ती रही कि फारसी के आगमन और उर्दू के जन्म से पहले भी हिंदी गद्य-रूप में वर्तमान थी और उसका स्वतंत्र अस्तित्व था। फारसी से जो कुछ हुआ, वह उसका प्रसंग भी नहीं है जो अँग्रेजी के आगमन से इस देश में हुआ। हिंदी भाषा, जिसे सम्मेलन के मंच से स्वर्गीय पं. बद्रीनारायणजी नागरी भाषा और स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंदजी आर्य भाषा के नाम से पुकारना उचित समझते हैं, अँग्रेजी के कारण जितने घाटे में रही और अब तक है, उतने घाटे में वह शाही समय में न थी और यदि उसे स्वाभाविक वायुमंडल मिलता, तो कभी न रहती।

अँग्रेजी शासन के आरंभ में फारसी अदालती भाषा थी। किंतु अदालतों और उनकी भाषा से सर्वसाधारण का उस समय इतना संबंध नहीं था। अँग्रेजी शासन ने फारसी के स्थान पर उर्दू को अदालती भाषा का स्थान दिया। उस समय उर्दू का कोई विशेष और स्वातंत्र अस्तित्व न था। मुसलमान जिस हिंदी को बोलते और लिखते थे और जिसमें वे फारसी के कुछ शब्दों का भी प्रयोग करते थे, वही उर्दू थी। हिंदी का उससे कोई संघर्ष नहीं था। उर्दू को उस समय पूरक भाषा का स्थान प्राप्त था। अर्थात देश के जो लोग शुद्ध हिंदी नहीं बोल सकते थे, वे भी फारसी के कुछ शब्दों और शक्लों को लेकर हिंदी भाषा-भाषी थे। अँग्रेजी शासन ने उत्तर भारत में उर्दू को एक ऐसा स्थान देकर, जो उसे पहले प्राप्त न था, हिंदी और उर्दू के अर्थ के विवाद का सूत्रपात किया, और इस प्रकार बहुसंख्यक हिंदी भाषा-भाषी लोगों की सुविधा और विकास में बाधा उपस्थित कर दी। इसका यह फल हुआ कि उर्दू, देश की बोली, समझी और लिखी जाने वाली भाषा से, दूर की वस्तु हो गयी है। उसने अपने कोष को देश के भावों, शब्दों और वाक्यों से भरना छोड़ दिया, उसने अपने कोष को देश के भावों, शब्दों और वाक्यों से भरना छोड़ दिया, उसने हर बात में अपना रुख फारसी की तरफ किया। देश की भाषाओं की ओर देखने की अपेक्षा उसने अँग्रेजी भाषा की ओर देखना अधिक आवश्यक समझा और हिंदी भाषा-भाषियों पर दो-दो भाषाओं का, एक उर्दू के बदले हुए रूप का और दूसरे अँग्रेजी का, भारी बोझ व्यर्थ में पड़ गया। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उस समय उर्दू में, अर्थात् अरबी अक्षरों में लिखी जाने और फारसी शब्दों में मिश्रित हिंदी में, यथेष्ट साहित्य-ग्रंथ और साहित्य-सेवी वर्तमान थे और सर्वत्र पढ़े-लिखे लोग इस प्रकार की भाषा को शिरोधार्य समझते थे। हिंदी गद्य के खड़ी बोली में लिखे जाने का सूत्रपात हो चुका था। लल्लूलाल, मुंशी सदासुख, सदल मिश्र, इंशा आदि की सुंदर कृतियों का जन्म हो चुका था। आगे चलकर पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी और श्रीरामपुर के ईसाई पादरियों को अपने धर्म-प्रचार की। इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति भी हिंदी में की गयी। किंतु सरकारी सहायता के कारण उर्दू हिंदी से एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नितांत अलग भाषा होती गयी, और साथ ही, अँग्रेजी का दबदबा दिन-ब-दिन बढ़ता गया। इसी कारण, हिंदी साहित्य सम्मेलन के जन्म के पहले और उसके पश्चात् भी कुछ समय तक, समय-समय पर हमें यह सिद्ध करने की आवश्यकता पड़ी कि हिंदी भाषा का स्वतंत्र अस्तित्व है, उसका अलग स्रोत और अलग विकास है, वह करोड़ों जनों की सोचने, बोलने और लिखने की भाषा है, और अलग विकास है और जो लोग उसकी अवहेलना करते हैं, वे देश में करोड़ों व्यक्तियों और उनकी आवश्यकताओं और वाद की अवहेलना करते हैं। अनेक मुखों से अनेक अवसरों पर यह बात कही गयी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने जन्म ही से इस मंत्र का उच्चारण किया। हिंदी के बड़े-बड़े आदमी, राजा शिवप्रसाद, बाबू हरिश्चन्द्र, राजा लक्ष्मणसिंह, पं.मदनमोहन मालवीय, डॉ. सुंदरलाल, बाबू श्यामसुंदर दास आदि हिंदी के स्वतंत्र अस्तित्व के माने जाने के लिए सतत् परिश्रम करते रहे। इस प्रांत में, सर एंटोनी मेकडोनल्ड ने हिंदी में भी अदालती कागज लिये जाने की आज्ञा प्रदान की। यह बात यथार्थ में हिंदी के विशेष पोषण के लिए नहीं थी। देश के लिए नहीं थी। देश के कितने ही राजनीतिज्ञ तो इस आशा में हिंदी का उतना हित नहीं पाते, जितना कि वे उसमें और कुछ देखते हैं। उनकी धारणा तो यह है कि इधर यदि हिंदी को कुछ बल मिला, उसकी कुछ उन्नति हुई, तो उसका कारण यह है कि अनेक कारणों से देश के जीवन के प्रत्येक खंड में अधिक व्यापकता और विशालता का शुभागमन हुआ है, कचहरियों में कुछ कागजों का हिंदी में लिया जाना या बे-मन से उसके अस्तित्व का स्वीकार कर लिया जाना उसका कारण नहीं।

हिंदी के अस्तित्व के लिए बहुत समय से संघर्ष है। संघर्ष उस समय था, जब गद्य रूप में हिंदी कुछ भी नहीं थी और उस समय भी था, जबकि उस रूप में वह कुछ था भी, और इस समय भी है, जब कि गद्य और पद्य दोनों रूपों में हिंदी के अस्तित्व से कोई मुकर नहीं सकता। इस समय भी हिंदी को पूरा खुला हुआ मार्ग नहीं मिल रहा है। उसके निज के क्षेत्र पर केवल उसी का आधिपत्य नहीं है। अभी तक इस देश के करोड़ों बालक, जिनकी मातृभाषा हिंदी थी, कच्ची उम्र ही में साधारण-से-साधारण विषयों तक की ज्ञान-प्राप्ति के लिए विदेशी भाषा के भार से दाब दिये जाते थे। अब भी उच्च शिक्षा के लिए बालक ही क्या बालिकाएँ तक उसी भार के नीचे दबती हैं। उनकी मौलिक बुद्धि व्यर्थ के भार के नीचे दबकर हतप्रभ हो जाती है और देश और जाति को उसके लाभ से सदा के लिए वंचित हो जाते हैं। बाल्यकाल से अँग्रेजों की छाया में पढ़ने के लिए विवश होने के कारण हमारे अधिकांश सुशिक्षित जन अपनी संस्कृति, अपनी भूतकालिक महत्ता, अपने पूर्वजों की कृतियों से दूर तो पड़ ही जाते हैं, वे अपने और अपनों के भी पराये हो जाते हैं। बाल्य काल से अँग्रेजों की छाया में पढ़ने के लिए विवश होने के कारण हमारे अधिकांश सुशिक्षित जनों के चित्तक पर अँग्रेजी में ही करते हैं और अपने निकटस्थ जनों से अपनी बात कहते या लिखते हैं तो अँग्रेजी ही में। हिंदी में लिखी हुई अनेक सुशिक्षित सज्जनों की भाषा-शैली से इस बात का पता चल सकता है। उनका शब्द-विन्यास, उनके वाक्यों की रचना और उनका व्याकरण, सभी अँग्रेजों के ढंग के प्रतिबिंब हैं। हमारे सुशिक्षितों ही में ऐसे लोग मिल सकते हैं, जो आपस में, यहाँ तक कि पिता-पुत्र और पति-पत्नी तक, अकारण, हिंदी में पत्र-व्यवहार करने की अपेक्षा अँग्रेजी में उसे करना अधिक अच्छा मानते हैं। यदि उनका ध्यान मातृभाषा की ओर आकर्षित करें, तो बहुधा यह उत्तर सुनने को मिले कि हिंदी में अभी शब्दों और मुहावरों का उतना सुंदर भंडार नहीं है। हिंदी की इसी दरिद्रता की दुहाई देकर, उच्च

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिक्षा में अँग्रेजी का समावेश भी अनिवार्य सिद्ध किया जा सकता है। नि:संदेह हिंदी में अभी उपयुक्त शब्दों और वाक्यों की कमी है। कविवर रामनरेश त्रिपाठी का कहना है कि हम हिंदी में केवल 300 शब्दों के घेरे में ही घूमते रहते हैं। किसी भी विदेशी भाषा के शब्दकोष में इतनी दरिद्रता नहीं है, किंतु इस दरिद्रता का दोष जितना हमारे सुशिक्षितों पर है, उतना दूसरों पर नहीं। वे अपनी आवश्यकता को विदेशी भाषा से पूरी कर लिया करते हैं। वे विदेशी भाषा बोलना सुगम समझते हैं। यदि हिंदी पर कृपा भी करते हैं, तो बहुधा देखने में यह आता है कि उनकी बातों में अँग्रेजी शब्दों की भरमार होती है, और कभी-कभी तो उनके वाक्यों की हिंदी का परिचय केवल उनकी हिंदी-क्रियाओं से ही लगता है। यदि हमारे सुशिक्षित इस प्रकार भाषा की अनावश्यक और अपावन वर्ण-संकरता न करें, अपने भावों को उसमें व्यक्त करना आवश्यक समझें, तो कुछ ही समय में, हमारी भाषा की उपकथित दरिद्रता दूर हो जाये और हिंदी भाषा-भाषियों की शिक्षा और ज्ञान का मापदंड भी ऊँचा हो जाये। स्वर्गीय जस्टिस तैलंग ने मराठी भाषा पर इसी प्रकार अँग्रेजी भाषा की चढ़ाई देखकर सुशिक्षित महाराष्ट्र सज्जनों की एक ऐसी परिषद् की स्थापना की थी, जिसके सदस्य नित्य कुछ समय तक अँग्रेजी शब्दों और वाक्यों का प्रयोग नहीं करते थे और उनका स्थान शुद्ध मराठी प्रयोगों को देते थे।

संक्षेप में, जो लोग हिंदी को मातृभाषा मानते हैं, उनके सामने स्पष्ट ढंग से यह बात सदा रहनी चाहिए कि हिंदी की जो इधर उन्नति हुई, वह उसकी आगामी बाढ़ के लिए कदापि ऐसी नहीं है कि हम समझ लें कि अब गाड़ी चलती जायेगी, वह रुकेगी नहीं, अब हमें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी की स्वाभाविक गति के लिए, अनेक बाधाओं के हटाने की आवश्यकता है, किंतु उन सबके दूर होने में तो अभी बहुत समय लगेगा। इस बीच में कम-से-कम हम अवहेलना की बाधा को उपस्थित न होने दें और अचेत न हो जायें। साहित्यिक ढंग से, मातृभाषा के प्रचार और पुष्टि के लिए जहाँ और जिस प्रकार जो-कुछ हो सके, उसका करना हम सबके लिए नितांत आवश्यक है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी : हिन्दी भाषा-भाषियों के उद्योग से हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त नहीं हुआ। जैसी परिस्थिति थी, उसको देखते हुए बाबू हरिश्चन्द्रजी और उनके समकालीन हिन्दी विद्वान तो कभी इस बात को व्यावहारिक बात भी नहीं मान सकते थे कि देश के अन्य भाषा-भाषी लगभग सभी समुदाय हिंदी को इतना गौरवांवित स्थान देने के लिए तैयार हो जायेंगे। किंतु सार्वदेशिक आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं और देश-भर के लिए काम करने वालों के सामने प्रकट और अप्रकट दोनों ही प्रकार से यह प्रश्न उपस्थित होता गया कि वह किस प्रकार अपनी बात को देश के दूर से दूर कोने के झोंपड़े तक पहुँचावें। भगवान बुद्ध ने धर्म के प्रचार के लिए पाली को अपनाया था, देश के वर्तमान कार्यकर्ताओं ने युग-धर्म के प्रचार और ज्ञान के लिए अनेक गुणों के कारण हिंदी को अपनाना आवश्यक समझा। नानक और कबीर, सूर और तुलसी राष्ट्र भाषा के लिए पहले ही क्षेत्र तैयार कर गये थे। उनकी वाणी और पद्य देश के कोने-कोने में उन असंख्यों श्रद्धालु नर-नारियों के कंठों से आज कई शताब्दियों से प्रतिध्वनित हो रहे हैं, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है। हिंदी के फारसी-मिश्रित रूप उर्दू ने भी एक विशेष दिशा में एक बहुत बड़ा काम किया था। देशभर में जहाँ भी मुसलमान बसते हैं, वहाँ की भाषा चाहे कोई भी क्यों न हो, वे उर्दू के रूप में हिंदी समझते हैं और हिंदी बोलते हैं। अँग्रेजी शासनकाल में फारसी के स्थान पर आसीन होने पर उर्दू हिंदी के मार्ग में किसी अंश में कुछ बाधा डालने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाली अवश्य सिद्ध हुई, किंतु अब वह ऐसी कदापि नहीं है और उसका जन्म हिंदी के विरोध के लिए नहीं, हिंदी की वृद्धि के लिए हुआ। मेरी धारणा तो यह है कि उर्दू के रूप में मुसलमान भारतीयों ने हिंदी की और भारतवर्ष की अर्चना की। उर्दू वह वाणी पुष्प है जिसे मुसलमानों ने इस देश के हो जाने के पश्चात् भक्ति-भाव से माता की अरदास करते हुए उसके चरणों में चढ़ाया। आज नहीं, जब यह राष्ट्र पूर्णराष्ट्र हो जाने के योग्य होगा, जब संसार के अन्य बड़े राष्ट्रों के समकक्ष खड़े होने में यह समर्थ होगा, उस समय राष्ट्रभाषा के निर्माण में उर्दू और उसके द्वारा देश की जो सेवा मुसलमान भारतीयों से बन पड़ी, उसका वर्णन इतिहास में स्वार्णांकित अक्षरों में होगा। स्वामी दयानंद, आर्यसमाज और गुरुकुलों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने में बड़ा श्रम किया। राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों से राष्ट्रभाषा के आंदोलन को बहुत बल मिला। सुदूर प्रांतों तक में राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि की आवश्यकता अनुभव होने लगी। कृष्ण स्वामी अय्यर, जस्टिस शारदाचरण मित्र, महाराज सयाजीराव गायकवाड़, जस्टिस आशुतोष मुकर्जी आदि ने आज से बहुत पहले इस दिशा में बहुत उद्योग किया था। अन्य भाषा-भाषियों ने देशभक्तियों और राष्ट्रनिर्माण के विचार से हिंदी को अपनाना आरंभ किया। मराठी और गुजराती की साहित्य -परिषदों ने हिंदी को राष्ट्र भाषा स्वीकार किया। महात्मा गाँधी के इस प्रश्न को अपने हाथ में लेने के पश्चात् तो राष्ट्र भाषा हिंदी का प्रचार विधिवत् अन्य प्रांतों में होने लगा और दक्षिण में, जहाँ सबसे अधिक कठिनाई थी, बहुत संतोषजनक काम हुआ है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने भी हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है, और अब देश के विविध भागों से आये हुए उसके प्रतिनिधि उसका अधिकांश कार्य हिंदी में करते हैं। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का स्थान निर्विवादरूपेण सुरक्षित है। उर्दूवालों को पहले चाहे जो आपत्ति रही हो, किंतु अब वे भी इसे मानने लगे हैं कि उर्दू हिंदी ही का फारसी-मिश्रित रूप है और डॉ. अंसारी और मोहम्मद जफरअली ऐसे मुसलमान नेता तक हिंदी को राष्ट्रीयभाषा के नाम से पुकारना आवश्यक और गौरव की बात समझते हैं। इस द्रुत गति से, बहुत ही थोड़े समय में हिंदी को इस स्थान को प्राप्त कर लेना देश में नये जीवन के उदय का विशेष चिन्ह है। राष्ट्रभाषा का काम अभी तक केवल भारत ही में हुआ है, वृहत्तर भारत अभी तक उससे कोरा है। लाखों भारतवासी विदेशों में पड़े हुए हैं, वे अपनी वेशभूषा और भाषा भूलते जाते हैं। अभी तक वे इस देश के हैं और देश के नाम पर विदेशों में टूटे-फूटे रूप में हिंदी को अपनाते हैं किंतु धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति का अधिकार उन पर से कम होता जाता है और संभव है कि कुछ समय पश्चात् वे नाममात्र ही के लिए भारतीय रह जायें। उनको अपना बनाये रखने और हिंदी का संदेश संसार के अनेक स्थलों में पहुँचाने का यही सबसे सुगम उपाय है कि उन तक राष्ट्रभाषा हिंदी का संदेश पहुँचाया जाये।

साहित्य की गति : हिंदी साहित्य की गति इस समय किस ओर है और वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए उसे किस प्रकार का होना चाहिए, यह प्रश्न अत्यंत महत्त्व का है। पुराने समय में गद्य साहित्य की सृष्टि की ओर लोगों का विशेष ध्यान ही न था। उस समय का जो गद्य साहित्य है, यद्यपि उसका अधिकांश प्रतिशत श्रृंगार और भक्ति रस ही का है, किंतु है वह बहुत ऊँचे ढंग का और संसार के अनेक देशों के समकालीन साहित्य से तुलना में बहुत अच्छा ठहर सकता है। इधर लगभग एक शताब्दी के भीतर हिंदी साहित्य के रूप और रंग में पहले से बहुत अंतर पड़ गया है। न गद्य का वह रूप है और न पद्य का नितांत वैसा ही। जिस समय ईस्ट इंडिया कंपनी की संरक्षता में हिंदी गद्य की कुछ पुस्तकें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिखी गयीं, लगभग उस समय के कुछ उपरांत से ही हिंदी के सेवकों को हिंदी अक्षरों की रक्षा और हिंदी भाषा और साहित्य की स्वतंत्र सत्ता की स्थापना करने के काम ही में अपनी शक्ति लगानी पड़ी। इस अवसर पर हिंदी के आकाश में कितने ही दीप्यमान नक्षत्र उदय हुए। यदि उस समय बाबू हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, पं. बद्रीनारायण उपाध्याय, पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. अंबिका दत्ता व्यास और अन्य अनेक महान आत्माओं ने अपनी प्रतिभा और ओज के बल से हिंदी की जड़ न जमायी होती, तो इस समय हम सबको हिंदी के उद्धार के लिए कदाचित् उसी प्रकार प्रयत्नशील होना पड़ता, जिस प्रकार नवजीवन के उदय होने पर आयरलैंड को अपनी खोयी हुई भाषा और साहित्य को खोज निकालने के लिए होना पड़ा था। साहित्य-पथ के उन दृढ़निश्चयी अग्रगामियों के कुछ समय पश्चात् हिंदी भाषा और साहित्य की ओर, सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा संबंधी आंदोलनों के कारण, देश के अँग्रेजी पठित समाज का ध्यान गया और हिंदी लिखने में उन्हें पहले जो संकोच हुआ करता था, वह मिट गया। यह समय हिंदी लिखने में उन्हें पहले जो संकोच हुआ करता था, वह मिट गया। यह समय हिंदी में विविध विषयों पर पुस्तकों के निकलने का था। इस युग में अनुवादों की बाढ़ आयी और जो कुछ लिखा गया वह विशेषाध्ययन या विशेष ज्ञान द्वारा बहुत कम लिखा गया। एक साहित्य-सेवी मित्र का तो कथन यहाँ तक है कि इन नवागंतुक साहित्य-प्रेमियों ने कुछ समय तक अपनी लेखन-शैली से भाषा और व्याकरण की ऐसी हत्या की कि कुछ न पूछिये, और यदि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में अपनी खरी आलोचना द्वारा इन सहित्यिकों को भाषा और व्याकरण के संबंध में ठीक रास्ते पर न लाते, तो बहुत समय तक हिंदी के क्षेत्र में बड़ी अस्त-व्यस्तता रहती। अब इस समय हिंदी में पहले का-सा दारिद्रय नहीं है। अनेक विषयों पर पुस्तकें और निबंध लिखे जाने लगे हैं। पहले की अपेक्षा भाषा और व्याकरण का अधिक विचार किया जाता है और प्रौढ़ विचार और नवीन दृष्टि से विषयों का प्रतिपादन, संपादन और प्रकाशन होने लगा है। संसार-भर में इस समय विचारों की क्रांति-धारा बह रही है। प्रत्येक देश के नर-नारी जीवन के समस्त व्यवहारों पर एक नए ढंग से सोचने-समझने के लिए विवश हो रहे हैं। इस देश पर भी इन बातों का प्रभाव पड़ रहा है। यहाँ भी हृदयमंथन आरंभ हो गया है। हिंदी के लेखक अँधेरे में भले ही भटकते हों, किंतु कोई यह नहीं कह सकता कि युग-धर्म की जो पहेलियाँ अपने विश्लेषण के लिए सामने उपस्थित हैं उनकी ओर हिंदी का साहित्य क्षेत्र उदासीन है। किंतु समय नया है, समस्याएँ नयी हैं, उनसे उलझने या उनके सुलझाने वाले नये हैं, हिंदी का गद्य-साहित्य स्वयं नया है, इसलिए नये साहित्य-सेवी अपने नये विषयों के प्रतिपादन में सिद्धहस्त नहीं हैं और अपने उद्योग से वे अभी तक न कोई विशेष स्थायी साहित्य ही रच सके और न कोई ऐसी लीक खींच सके कि उस पर चलकर औरों के लिए उद्देश्य-सिद्धि का मार्ग मिले। अस्थिरता का समय है या ये कहिये कि हम एक अस्थायी युग के बीच में से होकर गुजर रह हैं, और यद्यपि इस समय हमारे नये साधनों में कच्चापन हैं, किंतु आगे चलकर, कुछ ही समय पश्चात् हमारे साहित्य-क्षेत्र में सिद्धहस्ती लेखक और विशेषज्ञ सामने आ जायेंगे और हमारे साहित्य-उद्यान के चारों ओर जो घास-फूस इकट्ठा हो जायेगा, उसे चतुर और सहृदय समालोचक, ऐसे समालोचक, जो केवल शब्दों और व्याकरण के नियमों ही को न पकड़ेंगे, किंतु जो तत्वदर्शी के समान लेखक और विषय की आत्मा में प्रवेश करके, उनके गुण, उनके अंतर्भावों का विश्लेषण भी करेंगे, अलग करके उद्यान को सदा दर्शनीय और विचारणीय बनाये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रखेंगे।

हिंदी में नाटकों की कमी है। दृश्य-साहित्य से समाज के जीवन पर बहुत प्रभाव डाला जा सकता है। उसकी ओर वर्तमान लेखकों की उदासीनता का क्या कारण है? ऐतिहासिक वार्ताओं पर नाटक की रचना के लिए तत्कालीन समाज और ऐतिहासिक वातावरण के पूर्ण अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है। वर्तमान सामाजिक जीवन पर नाटक की रचना के लिए यह अनिवार्य है कि उसके आधार के सामाजिक जीवन का अत्यंत निकट से पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त किया जाये। जिनमें इतनी अध्ययन व सायशीलता हो और साथ ही हो मनोविज्ञान का अनुभव, वे नाटक और साथ ही उपन्यास लिखने में सफल हो सकते हैं।

देशभक्ति के भाव को लेकर पद्य-रचनाएँ अब पहले की अपेक्षा अधिक होती हैं। पहले के संकीर्ण क्षेत्र से निकलकर हिंदी कविता ने अब अधिक दिशा व भाव और भावनाओं के प्रांगण में पग रखा है। विश्व-वेदना से हृदय के अंतर्भाव उथल-पुथल होने लगे हैं। नये हिंदी कवि ब्रजभाषा और खड़ी बोली के झगड़े से अलग होते जाते हैं। वे अपने भावों को टकसाली शब्दों ही में बंद नहीं रखना चाहते। शब्दों के वे आगे बढ़ते जा रहे हैं। भाव का भी स्पष्ट होना आवश्यक है या नहीं, इस समय इस पर विवाद छिड़ा है। कहीं-कहीं सब प्रकार के छंदों से भी स्वच्छंदता प्राप्त कर ली गयी है। भाषा के साथ उसकी कविता का प्रसार होना भी आवश्यक है। कविता भरे हुए हृदय की भावनाओं का साहित्यिक रूप है। उसमें और गद्य में कुछ अंतर तो अब तक चला ही आता था, और उसकी मनोहरता के लिए यह आवश्यक है कि वह बहुत स्वतंत्र होती हुई भी स्वर और मात्राओं के बंधनों में बँधी रहे।

सज्जनो! हिंदी साहित्य के एक विशेष अंक पर भी मुझे अपना कुछ मत प्रकट करना आवश्यक लगता है। इस समय 'घासलेटी साहित्य' की चर्चा बहुत जोरों से उठ रही है। मुझे इस बात को बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि घासलेटी साहित्य किस प्रकार के साहित्य को कहते हैं? जो साहित्य यथार्थ में सार्वजनिक कुरूचि की वृद्धि करने वाला है, वह नि:संदेह त्याज्य् और भर्त्सनीय है। किंतु उसका त्याज्य और भर्त्सनीय होना उसके अस्तित्व और वृद्धि का अंत नहीं कर सकता। मेरी धारणा तो यह है कि हमें उससे तनिक भी घबराने की आवश्यकता नहीं है, वह तो अनिवार्य बुराई है। वह किसी देश की बुराई नहीं है? वह किस देश में और किस भाषा में नहीं है? जिस प्रकार शरीर में अनेक सुंदर अवयवों और शक्तियों के होते हुए उसमें मल-मूत्र ऐसे गंदे पदार्थ भी होते हैं, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में प्रत्येक देश में गंदा साहित्य भी होता है। इस प्रकार का साहित्य कहीं भी भद्र समाज में आदरणीय नहीं समझा जाता। आप भी उसको आदरणीय या ग्राह्य नहीं समझ सकते। बस, इस साहित्य के प्रति आपकी ऐसी ही भावना यथेष्ट है। इससे अधिक इसके पीछे हाथ धोकर पड़ने में, मेरी विनम्र सम्मति से हानि होगी। मानव स्वभाव बहुत दुर्बल हुआ करता है। बुराई की ओर यह बहुत झुकता है। आपका हाथ धोकर पीछे पड़ना इस प्रकार के साहित्य का विज्ञापन करना होगा। इस प्रकार उसे आप साधारण लोगों में और भी अधिक प्रचलित करेंगे। पैसे के लाभ के लिए इस प्रकार के कला और विज्ञान से शून्य साहित्य की रचना और प्रकाशन करने वालों को छोड़कर, एक विशेष श्रेणी के साहित्य-सेवी ऐसे भी हैं जो लोक-कल्याण या रचना-कला की दृष्टि से, जो बात जैसी है, उसका वैसा ही चित्र खींचना आवश्यक समझते हैं। इसे वे प्रकृतिवाद (Realism) के नाम से पुकारते हैं। अपनी शैली के कलापूर्ण होने के प्रमाण में, वे पाश्चात्य देशों के बहुत-से धुरंधर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्यिकों के नाम पेश करते हैं। फ्रांसीसी कहानी-लेखक मोपासाँ का नाम इस संबंध में बहुत लिया जाता है। इस संबंध में, मेरा विनम्र निवेदन यह है कि प्रकृतिवाद के संबंध में कुछ भ्रमात्मक धारणाएँ प्रचलित हो गयी हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्य -सेवी अनातोले फ्रांस भी प्रकतिवादी थे। उनका ही यह कथन था कि किसी घटना का तद्वत् चित्र खींचने के लिए या किसी मनोभाव के तद्वत प्रदर्शित करने के लिए नेत्र और ह्रदय खोलकर उस प्रकार की घटनाओं या भावों में या उनके अत्यंत निकट से होकर निकलने की आवश्यकता है, और कितने व्यक्ति है जो साहित्य-क्षेत्र में अपने प्रकृतिवाद का प्रदर्शन करने के पहले ऐसा कर चुके हो? बहुधा होता यह है कि लेखक के मस्तिष्क से जो कलुषित भाव ऊपर ही रखे होते हैं, प्रकृतिवाद की आड़ में वह उन्हीं का अपनी कृति में प्रदर्शन कर दिया करता है। नि:संदेह मोपासाँ अपने कार्य में बहुत चतुर है, वह अद्वितीय है। किंतु, उसको अनुकरणीय मान लेने के पहले, इस बात को भी ह्रदयसंगम कर लेने की आवश्यकता है कि कला के संबंध में उसका आदर्श बहुत ऊँचा नहीं था। वह कला में सत्यम् शिवम् सुंदरम् के दर्शन नहीं करता था। वह कहा करता था कि संसार में कोई वस्तु या भाव नया नहीं है, साहित्यिक कोई नयी बात नहीं कह सकते, वे केवल किसी वस्तुक या अवस्था को नयी विचारदृष्टि से देख सकते हैं, और यही बड़ी भारी बातें हैं।

प्रचार और उन्नति के कुछ उपाय : हिंदी के प्रचार और उन्नति के लिए, पहले के सहज और स्वाभाविक ढंग की अपेक्षा अब अधिक क्रमबद्ध शैली को ग्रहण करने की आवश्यकता है। एक भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी इस समय जिस स्थान पर पहुँच चुकी है, वहाँ से उसका सतत आगे बढ़ सकना उसी समय संभव है, जब उसके प्रचार और उन्नति के लिए नये और अधिक व्यापक साधनों से काम लिया जाए।

(अ) हिंदी के प्रचार का सबसे बड़ा साधन है हिंदी-प्रांतों में लोकशिक्षा को आवश्यक और अनिवार्य बना देना। कोई घर ऐसा न रहें, जिसके नर-नारी, बच्चे और बूढ़े तक तुलसीकृत रामायण और साधारण पुस्तकें और समाचार-पत्र न पढ़ सकें। यह काम उतना कठिन कदापि नहीं है, जितना कि समझा जाता है। यदि टर्की में कमालपाशा बूढ़ों और बच्चों तक को थोड़े से समय के भीतर साक्षर कर सकते हैं और सोवियत शासन दस वर्ष के भीतर रूस में अविद्या का दिवाला निकाल सकता है, तो इस देश में भी, सब प्रकार की शक्तियाँ जुटकर, बहुत थोड़े समय में, अविद्या के अंधकार का नाश कर प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ने और लिखने के योग्य बना सकती हैं। देश के अंतरतर में रहने वाले लोग तक शिक्षा के महत्त्व को सहज में समझने लगे हैं और इस समय जो लोक-सेवक ग्राम-संगठन के आवश्यक कामों में अपना समय और शक्ति लगाये हुए हैं, उनका अनुभव है कि बहुत थोड़े से प्रयास से, देहात के लोगों में साक्षर होने की अभिलाषा उत्पन्न की जा सकती है। हम जितनी साक्षरता बढ़ावेंगे उतना ही भाषा और साहित्य का कल्याण होगा। जब करोड़ों निरक्षर साक्षर बन जायेंगे, तब उनकी बौद्धिक आवश्यकताओं की प्रेरणा से हिंदी भाषा और साहित्य के सौष्ठव में स्वत: बहुत वृद्धि हो जायेगी। किसी समय, शरीर और स्वास्थ्य की त्रुटियों के दूर करने के लिए, जर्मनी में यह आंदोलन उठाया गया था कि जर्मन लोग भोजन में शक्कर अवश्य खायें। आलू और केले के अपने व्यापार की वृद्धि को क्षति न पहुँचने देने या उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए इंग्लैंड में 'खूब आलू खाओ' 'खूब केले खाओ' का आंदोलन चल चुका है। निरक्षरता को दूर करने के लिए रूस में बड़े-बड़े चित्रों द्वारा झोंपड़े-झोंपड़े

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तक में यह विचार पहुँचाकर कि निरक्षर व्यक्ति आँख पर पट्टी बाँधे हुए उस व्यक्ति के समान है, जो चट्टान की कगार पर खड़ा हुआ पग बढ़ाते ही नीचे खड्डे में गिरने के लिए तैयार है, साक्षरता का आलोक देश के कोने-कोने में पहुँचाया गया। इस देश में हिंदी और देश के हित के लिए इसी प्रकार से सुसंयत और व्यापक आंदोलन उठाया जाना चाहिए। लोक-शिक्षा के काम में हिंदी के समाचारपत्रों से बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है। यदि वे इस आंदोलन को आंदोलन के ढंग से उठा लें और अपने कलेवर में साधारण आदमियों के नित्य के जीवन और नित्य की आवश्यकताओं का अधिक सजीव चित्रण करें, तो वे निःसंदेह अधिक लोकप्रिय होंगे और अपना प्रचार बढ़ाते हुए देश के करोड़ों आदमियों की सुषुप्त बुद्धि के जागरण और हिंदी के कहीं अधिक प्रचार का श्रेय प्राप्त करेंगे।

(आ) जिन स्थानों में हिंदी को स्थान मिल चुका है, या जहाँ उसका स्थान मिलना और न मिलना दोनों एक समान है, वहाँ उसका प्रसार बढ़ाने और उचित स्थान की प्राप्ति के लिए पूरा यत्न करना आवश्यक है। सरकारी और अर्धसरकारी कार्यों एवं स्कूलों में अब भी हिंदी को उचित स्थान प्राप्त नहीं है। मातृभाषा को पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त नहीं है। मातृभाषा को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिये, इस दृष्टि से, स्कूली पुस्तकों में बहुत-सी त्रुटियाँ हैं। इसी देश में यह बात देखी जा सकती है कि छोटे-छोटे बच्चों के मस्तिष्क पर अनावश्यक रूप से परायी भाषा का बोझ पड़ता है। यहीं यह देखा जा सकता है कि उच्च शिक्षा कहीं भी, यहाँ तक कि हिंदू विश्वविद्यालय तक में, मातृभाषा द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। यहीं यह संभव है कि लड़कियों तक को उच्च शिक्षा के लिए एक विदेशी भाषा अवश्य पढ़नी पड़े और इस पर भी, यह अनोखी बात यहीं देखी जा सकती है कि मातृभाषा में भी, गणित, रेखागणित, भूगोल आदि की जो पुस्तकें पढ़ायी जाती हैं, उनके अंक और उनके पारिभाषिक शब्द अँग्रेजी में होते हैं। अपने स्वाभाविक वातावरण के कारण हम इस प्रकार की बहुत-सी अधोगति को दूर नहीं कर सकते, किंतु तो भी बहुत कुछ कर सकते हैं, और उसके करने से हमें कदापि नहीं चूकना चाहिए। रेल के बहुत-से कामों में हम हिंदी को अच्छा स्थान दिला सकते हैं और कम-से-कम, यह तो करा ही सकते है कि स्टेशनों पर लगे हुए नामपटों और समय-सूचक-पत्रों में हिंदी की हत्या तो न होने पाये। पंजाब और सिंध में हमारी धार्मिक संस्थाएँ बहुत सहज में हिंदी के प्रयोग को स्वीकार कर सकती हैं। देश के अन्य प्रांतों में हिंदी का जो काम हो रहा है, वह तो बढ़ेगा ही, हमें परदेशों में अपने भाइयों के पास भी अधिक बल के साथ हिंदी का संदेश भेजना चाहिए। वहाँ अपने आदमियों में हिंदी ही का एकछत्र राज्य था, किंतु अब दशा बदलती जाती है और ऐसा भाषित होता है कि मातृभाषा के विस्मरण के साथ-साथ ही वे देश और उसकी संस्कृति का भी विस्मरण कर बैठेंगे। अमेरिका, अफ्रीका, फीजी, गुयाना, बर्मा आदि में अपने भाइयों तक हिंदी का संदेश पहुँचाना भारतवर्ष की संस्कृति की रक्षा करना है। युवकों को इस काम के लिए आगे बढ़ना चाहिए। वे किसी प्रकार भी घाटे में न रहेंगे। वे इस प्रकार हिंदी और देश की सेवा कर सकेंगे और संसार-भ्रमण करके अपने मानसिक क्षितिज को भी अधिक विस्तृत कर सकेंगे।

(इ) हिंदी में अच्छे और आवश्यक ग्रंथों को लिखाने और प्रकाशित कराने के लिए भी संगठित प्रयत्न होना चाहिए। हिंदी विद्वानों की सुसंगठित मंडली सदा भाषा और साहित्य के क्षेत्र की त्रुटियों पर विचार करे। यह संभव नहीं है कि कोई भी मंडली सब प्रकार की पुस्तकों को लिख या प्रकाशित कर सके, इसलिए, इस प्रकार की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंडली लेखकों और प्रकाशकों से संबंध स्थापित करे। जिन विषयों पर लिखे जाने की आवश्यकता हो, उन पर लिखने के लिए लेखकों को और प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों को उत्साहित करे। ऐसे लेखक भी इस समय हैं, जो किसी आवश्यक विषय पर ग्रंथ लिखे बैठे हैं, किंतु यद्यपि उनका ग्रंथ है तो अच्छा और खोजपूर्ण, किंतु वह चलेगा नहीं, इसलिए कोई प्रकाशक उसके प्रकाशन का साहस नहीं करता। इस प्रकार की मंडली किसी भी ऐसे ग्रंथ को प्रकाशकों की कमी के कारण व्यर्थ न पड़ा रहने दे। उसके उद्योग से या तो उस ग्रंथ का कोई प्रकाशक खड़ा हो जाये, या फिर सम्मेलन ऐसी कोई संस्था अपनी ओर से उसका प्रकाशन करे।

सद्-साहित्यक की वृद्धि के लिए, साहित्य मंडली प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के विषय की आलोचना-प्रत्यालोचना भी करे। अनुवाद का काम बे-सिर-पैर का हो रहा है। अनावश्यक और व्यर्थ के अनुवाद अपने-आप समाप्त हो जायेंगे, किंतु यदि सुविज्ञ जन समय-समय पर उन पर अपना मत प्रकट किया करें, तो बहुत-से श्रम और शक्ति की बचत हो जाये कि किसी समय बँगला से अनुवाद की झड़ी लगी थी, अब अँग्रेजी से हम बहुत कुछ लेते हैं। व्यर्थ की वस्तु कहीं से भी लेने की आवश्यकता नहीं, अच्छा को कहीं से छोड़ना भी नहीं चाहिए। विदेशी भाषाओं में केवल अँग्रेजी को अपना आधार मान बैठने के कारण हमने अपनी दृष्टि को बहुत संकुचित बना लिया है और हम संसार-भर की वस्तुओं को केवल अँग्रेजी चश्मे से देखने लगे हैं। अँग्रेजी में जो कुछ नहीं है, उसे हम नहीं जान पाते। उसमें जो कुछ तोड़ा-मरोड़ा हुआ है, उसे हम उसी प्रकार के विकृत रूप में देखते हैं। अँग्रेजी और बँगला के शब्दों और वाक्यों के लेने के विरुद्ध नहीं हूँ, किंतु अपनी भाषा के व्यतक्तित्व की रक्षा का विचार रखते हुए मैं कुछ लेना चाहता हूँ, उसे खोकर नहीं। हमारे अनुवादकों को विदेशी भाषाओं में फ्रेंच और जर्मन भाषा के भंडार तक पहुँचने का यत्न करना चाहिये। घर में हमें संस्कृत, पाली और उर्दू की ओर भी दृष्टि डालनी चाहिए। संस्कृत और पाली के अनेक ग्रंथ और उनका पौराणिक बौद्ध और जैन साहित्य हिंदी के रूप में आकर हमारे बौद्धिक जीवन के लिए बहुत श्रेयस्कर हो सकता है। आयुर्वेद के समस्त ग्रंथों के हिंदी में होने और लोक-कल्याण के लिए उनकी शिक्षा बहुत व्यापक रूप से हिंदी में होने की आवश्यकता है। विज्ञान, पुरातत्व, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र और विविध धर्मों के ऐतिहासिक उत्थान और पतन पर मौलिक और अनुवादित बहुत-सी पुस्तकें हिंदी में होनी चाहिए। अभी पिछले मास ही में, महिला विद्यापीठ के उपाधि-वितरण-उत्सव पर अध्यक्षा महोदया ने कहा था कि हिंदी में स्त्री-साहित्य की बहुत कमी है और उसकी वृद्धि के लिए यत्न होना चाहिए। स्त्रियों ने हिंदी की बहुत रक्षा की। उन दिनों में जब उत्तरी भारत में हिंदी का ज्ञाता होना लज्जाजनक तक समझा जाता था, लाला हरदयाल के कथनानुसार उन कठिन दिनों में भी हिंदी यदि बची रही तो केवल स्त्रियों के कारण और माताओं, बहनों और पत्नियों को पत्र लिखने के लिए पुरुषों को विवश होकर नागरी अक्षरों का परिचय प्राप्त करना पड़ता था। अब इस युग में तो उनके लिए जो साहित्य आवश्यक है, उसकी कमी न रहनी चाहिए। साइमन कमीशन के साथ देश-भर की शिक्षा की दशा की जाँच करने के लिए, हर्टान कमेटी बैठी थी। उसकी रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुई है। वह कमेटी कहती है कि देशी भाषाओं में बाल-साहित्य की बहुत कमी है, और यह भी एक कारण है जिससे लोक-शिक्षा को प्रोत्साहन नहीं मिलता। हिंदी के साहित्य-सेवियों का इधर भी ध्यान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाना चाहिए। इधर हिंदी में स्त्री -साहित्य और बाल-साहित्य के रूप में कुछ पुस्तकें निकली भी हैं, किंतु अभी बहुत सुरुचि और सुचयन के साथ निकलने की आवश्यकता है। उर्दू की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। उससे अब हिंदी को बहुत लाभ पहुँचा सकता है। उसके नजीर, हाली, दाग, गालिब, आजाद और अकबर सहज में हमारे हो सकते हैं और उनकी कृतियों से हम लाभ उठा और गर्व कर सकते हैं। हिंदी और उर्दू के शब्द और वाक्य-रचना में कोई अंतर नहीं है। हाली और रतननाथ सरशार ऐसे उर्दू साहित्य-सेवियों के ग्रंथों के मुहावरे बहुत लाभ के साथ हिंदी में ग्रहण किये जा सकते हैं। हिंदी भारतीय राष्ट्र की समस्त निधि की रक्षिका होनी चाहिए। इसलिए प्राचीन विशाल भारत पर भी उसमें साहित्य होना चाहिए। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर की 'बृहत्तर भारत' संस्था के कारण हमें प्राचीन विशाल भारत के दर्शन होते जा रहे हैं। वह अत्यन्त दिव्य है। वह अत्यन्त गौरवान्वित करने वाला है। श्रीमान कपूरथला-नरेश हाल ही में स्याम देश के अंगकोर नामक स्थान के खंडहरों में प्राचीन विशाल भारत के गौरव-स्वरूप कुछ सुंदर मंदिरों और उनमें खिंचे हुए शताब्दियों पुराने रामायण और महाभारत संबंधी चित्रों और मूर्तियों को लगभग 2-3 मील के घेरे में अब तक बने हुए देखकर आश्चर्य से चकित हो गये थे। उनके ये शब्द हैं, ''प्राचीन रोम और ग्रीस के सबसे अधिक सुंदर वैभवशाली स्मारकों से भी बढ़कर यह सुंदर और शोभाशाली हैं, और संसार-भर में इनसे बढ़कर अद्भुत कोई वस्तु मैंने आज तक नहीं देखी।'' कपूरथला-नरेश संसार-भर में कई बार भ्रमण कर चुके हैं। उनकी यह राय है। जावा, सुमात्रा, बाली, स्याम, तिब्बत, नेपाल, अफगानिस्तान आदि में पता नहीं हमारी संस्कृति का कितना वैभव छिपा पड़ा है। जो कुछ पता लगता जाए, उसका हिंदी द्वारा परिचय हमारी भाषा को जितना ऊँचा करेगा, कम-से-कम उतना ही ऊँचा वह हमारे मन को भी करेगा।

नागरी लिपि पर जो आक्रमण हो रहे हैं, उनसे भी इसकी रक्षा के लिए यत्न होना चाहिए। पहले तो हिंदी का राष्ट्र भाषा माना जाना ही कठिन था, किंतु अब जब यह कठिनाई नहीं रही, तब रोमन अक्षरों की श्रेष्ठता और सुविधा प्रकट करके देश के काम में उनके व्यवहृत किए जाने की बात उठायी जा रही है। यह चर्चा पहले तो विदेशी लोगों द्वारा चली, किंतु अब तो अपने आदमी भी टर्की के कमालपाशा के अनुकरण के बहुत अभिलाषी हैं। अभी हाल ही में पंजाब के कमिश्नर मि. लतीफी ने रोमन लिपि में भारतवर्ष की राष्ट्रलिपि के बना दिए जाने के लिए समाचारपत्रों में लेख लिखे और कुछ समय पहले, सर्वदल सम्मेलन की लखनऊ की एक बैठक में, जबकि देश की लिपि पर विचार हुआ तब, देश में कुछ मुख्य कार्यकर्ता बड़े आग्रह के साथ इस बात के लिए तैयार थे कि रोमन लिपि राष्ट्रलिपि मान ली जाये। नागरी लिपि सर्वथा दोष-शून्य नहीं है और हिंदी के टाइप में तो सुविधा और शुद्धता की दृष्टि से बहुत से सुधार वांछनीय हैं, किंतु केवल इन त्रुटियों के कारण देश और राष्ट्र पर गौरव करने वाले किसी व्यक्ति को मन में रोमन लिपि का सबसे बड़ा आकर्षण यह कहा जाता है कि उसके द्वारा हम इस संसार के और भी निकट हो जायेंगे और उसकी बहुत सी समान सुविधाओं से लाभ उठाने वाले बन जायेंगे। किंतु स्वतंत्र अस्तित्व को मिटा देने वाले इस मोह के कारण हम अपनी इस आशा और विश्वास को क्यों छोड़ दें कि तीस करोड़ आदमियों की लिपि से संसार एक दिन परिचय प्राप्त करने और उसे विशेष स्थान देने के लिए लालायित होगा।

और भी बहुत-सी दिशाओं में हमें अपनी शक्ति लगानी पड़ेगी। हमारी संस्थाओं में और उनके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्य के ढंग में जो त्रुटियाँ हों, उनको भी दूर करना आवश्यक है। इस महायज्ञ में सबकी और सब प्रकार की शक्तियों का संयोजित होना आवश्यक है। कुछ कर सकने योग्य कोई भी भारतीय ऐसा न बचे, जो अपनी शक्ति-भर भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा की भीतरी और बाहरी वृद्धि के काम में हाथ बँटाने के लिए आगे न बढ़े। मनुष्य के भाग्य का नक्षत्र उसे अपने जीवन के लक्ष्य की ओर प्रेरित किया करता है। मनुष्य के समूह जातियों और राष्ट्रों का रूप धारण करके दैवी बल की प्रेरणा से अपने हिस्से के विश्व-वृत्त की पूर्ति करते हैं।

भाषा और उसके साहित्य के जन्म और विकास की रेखाएँ भी किसी भी विशेष ध्येय से शून्य नहीं हुआ करतीं। हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का भविष्य भी बहुत बड़ा है। उसके गर्भ में निहित भवितव्यताएँ इस देश और उसकी भाषा द्वारा संसार-भर के रंगमंच पर एक विशेष अभिनय कराने वाली हैं। मुझे तो ऐसा भाषित होता है कि संसार की कोई भी भाषा मनुष्य जाति को उतना ऊँचा उठाने, मनुष्य को यर्थाथ बनाने और संसार को सुसभ्य और सद्भावनाओं से युक्त बनाने में उतनी सफल नहीं हुई जितनी कि आगे चलकर हिंदी भाषा होने वाली है।

हिंदी को अपने पूर्व संचित पुण्य का बल है। संसार के बहुत बड़े विशाल खंड में सर्वथा अंधकार था, लोग अज्ञान और अधर्म में डूबे हुए थे, विश्व बंधुत्व और लोक-कल्याण का भाव भी उनके मन में उदय नहीं हुआ था, उस समय जिस प्रकार, इस देश से सुदूर देश-देशांतरों में फैलकर बौद्ध भिक्षुओं ने बड़े-बड़े देशों से लेकर अनेकानेक उपत्यकाओं, पठारों और तत्कालीन पहुँच से बाहर गिरि-गुहाओं और समुद्र-तटों तक जिस प्रकार धर्म और अहिंसा का संदेश पहुँचाया था, उसी प्रकार अदूर भविष्य में उन पुनीत संदेशवाहकों की संतति, संस्कृति और पालि की अंग्रेजी, हिंदी द्वारा भारतवर्ष और उसकी संस्कृति के गौरव का संदेश एशिया महाखंड के प्रत्येक मंचस्थल में, एशियाई महासंघ के प्रत्येक रंगमंच पर, सुनावेगी। मुझे तो वह दिन दूर नहीं दिखायी देता, जब हिंदी-साहित्य अपने सौष्ठव के कारण जगत्-साहित्य में अपना विशेष स्थान प्राप्त करेगा और 'हिंदी' भारतवर्ष ऐसे विशाल देश की राष्ट्रभाषा की हैसियत से न केवल एशिया महाद्वीप के राष्ट्रों की पंचायत में, किंतु संसार-भर के देशों की पंचायत में एक साधारण भाषा के समान केवल बोली भर जाएगी, किंतु अपने बल से, संसार की बड़ी-बड़ी समस्याओं पर भरपूर प्रभाव डालेगी और उसके कारण अनेक अंतरराष्ट्रीय प्रश्न बिगड़ा और बना करेंगे। संसार की अनेक भाषाओं के इतिहास, धमनियों में बहने वाले ठंडे रक्त को उष्ण कर देने वाली उन मार्मिक घटनाओं से भरे पड़े हैं, जो उनके अस्तित्व की रक्षा के लिए घटित हुई। फ्रांस की किरचों की नोंक छाती पर गड़ी हुई होने पर भी रूर प्रांत के जर्मनों ने अपनी मातृभाषा के न छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और उसका अक्षर-अक्षर पालन किया। कनाडा के फ्रांसीसियों का अपनी मातृभाषा के लिए प्रयत्न करना किसी समय अपराध था, किंतु घमंडी मनुष्यों के बनाये हुए इस कानून का मातृभाषा के भक्तों ने सदा उल्लंघन किया। इटली, ऑस्ट्रिया के छीने हुए भू-प्रदेशों के लोगों के गले के नीचे जबर्दस्ती अपनी भाषा उतारना चाहती थी, किंतु वह अपनी समस्त शक्ति से भी मातृभाषा के प्रेमियों को न दबा सकी। ऑस्ट्रिया ने हंगरी को पद-दलित करके उसकी भाषा का भी नाश करना चाहा, किंतु ऑस्ट्रिया-निर्मित राज-सभा में बैठकर हंगरी वालों ने अपनी भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में बोलने से इंकार कर दिया था। दक्षिण अफ्रीका के जनरल बोथा ने केवल इस बात को सिद्ध करने के लिए कि न उनका देश विजित हुआ और न उनकी आत्मा ही, बहुत अच्छी अँग्रेजी जानते हुए भी, बादशाह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जार्ज से साक्षात होने पर अपनी मातृभाषा डच में बोलना ही आवश्यक समझा और एक-दो भाषिया उनके तथा बादशाह के बीच में काम करता था।

यद्यपि हिंदी के अस्तित्व पर अब इस प्रकार के खुले प्रहार नहीं होते, किंतु उन ढके-मुँदे प्रहारों की कमी भी नहीं है, जो उस पर और इस प्रकार देश की सु-संस्कृति पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। साहस के साथ और उस अगाध विश्वास के साथ, जो हमें हिंदी भाषा और उसके साहित्य के परमोज्ज्वल भविष्य पर है, हमें इस प्रकार के प्रहारों का सामना करना चाहिए और जितने बल और क्रियाशीलता के साथ हम ऐसा करेंगे, जितनी द्रुत-गति के साथ हम अपनी भाषा की त्रुटियों को पूरा करेंगे और उसे 32 करोड़ व्यक्तियों की राष्ट्रभाषा के समान बलशाली और गौरवयुक्त बनावेंगे, उतना ही शीघ्र हमारे साहित्य -सूर्य की रश्मियाँ दूर-दूर तक समस्त देशों में पकड़कर भारतीय संस्कृति, ज्ञान और कला का संदेश पहुँचावेंगी, उतने ही शीघ्र हमारी भाषा में दिए गए भाषण संसार की विविध रंगस्थनलियों में गुंजरित होने लगेंगे और उनसे मनुष्य-जाति मात्र की गति-मति पर प्रभाव पड़ता हुआ दिखायी देगा, और उतने ही शीघ्र एक दिन और उदय होगा और वह होगा तब, जब इस देश के प्रतिनिधि उसी प्रकार, जिस प्रकार आयरलैंड के प्रतिनिधियों ने इंग्लैंड से अंतिम संधि करते और स्वाधीनता प्राप्त करते समय अपनी विस्मृत भाषा गैलिक में संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, भारतीय स्वाधीनता के किसी स्वाधीनता पत्र पर हिंदी भाषा में और नागरी अक्षरों में अपने हस्ताक्षर करते हुए दिखायी देंगे।

(गोरखपुर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के 19वें अधिवेशन में 2 मार्च, 1930 को विद्यार्थी जी द्वारा दिये गये अध्यक्षीय अभिभाषण की अविकल प्रस्तुति)

-साभार

हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है।

-विलियम केरी

हिंदी आम बोलचाल की 'महाभाषा' है। **-जॉर्ज ग्रियर्सन**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जगदीश तोमर

हिन्दी : बनने चली विश्व की भाषा

२००३ में सूरीनाम की राजधानी परामारिबो में सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सुसंपन्न हुआ था। वहाँ दुनिया के २० देशों के ४०० हिंदी प्रेमी और विद्वान एकत्रित हुये थे। उन सबने हिंदी की बहुव्यापकता और सामर्थ्य की बड़े जोर-शोर से चर्चा की थी। उस सम्मेलन के एक सत्र के अध्यक्ष डॉ. शैलेंद्र नाथ श्रीवास्तव ने अपने उद्बोधन में व्यक्त किया था कि हिंदी एक सौ करोड़ जनों की संविधान सम्मत भाषा है और दुनिया के एक सौ पचास करोड़ लोग उसका काम चलाऊ ज्ञान रखते हैं तथा हिंदी फिल्मों एवं धारावाहिकों का आनंद लेते हैं। उस समय सोवियत संघ से पधारे वयोवृद्ध विद्वान वरान्निकोव (१९२३-२००८) ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में हिन्दी फिल्मों की सराहना करते हुए कहा लेकिन रूस में अब अँग्रेजी फिल्मों का अपेक्षाकृत अधिक बोलबाला है। सूरीनाम के जानकी प्रसाद सिंह तथा त्रिनिदाद की कमला रामलखन ने अपने-अपने देशों में बढ़ रहे हिंदी प्रेम की चर्चा की थी और इन चर्चाओं के मध्य सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने एकराय होकर हिन्दी को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाये जाने की माँग की थी और इस निमित्त भारत सरकार से अनुरोध किया था कि वह उक्त आशय का प्रस्ताव भारतीय संसद में पारित कराये तथा नियमानुसार सौ करोड़ रुपयों के साथ उस प्रस्ताव को संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय को भेजें।

आशंकाएँ और बाधाएँ भी- सूरीनाम के विश्व हिंदी सम्मेलन में और आगे के ऐसे ही सम्मेलनों में हिंदी को जो प्रेम और प्रतिष्ठा मिली, उससे उसके विश्व भाषा बनाये जाने का अत्यंत अनुकूल वातावरण तैयार हुआ। इससे विश्व भर में फैले हिंदी के विद्वानों एवं रचनाकारों को परम प्रसन्नता हुई, किन्तु

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछेक भारतीय मूर्धन्या ने इस संदर्भ में अनेक आशंकायें प्रकट करना आरंभ कर दिया। उनका कहना था कि कोई भी सरकार हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में ला सकती है, किन्तु इसके पहले हिंदी का भारत में ही सम्मानित किया जाना परमावश्यक है। उन्हें संदेह है कि ऐसा प्रस्ताव भारतीय संसद में सहज पारित हो पायेगा। उनका कहना है कि अँग्रेजी में शपथ ग्रहण करने वाले तथा अँग्रेजी में ही अपने विचार प्रकट करने वाले सांसद शायद ही हिंदी का पक्ष समर्थन करें। दुर्भाग्यवश हिंदी को बहुसंख्यक हिंदुओं की, उर्दू को मुसलमानों की और अँग्रेजी को ईसाईयों की भाषा निरूपित किया जा रहा है। आजादी की लड़ाई के दिनों के एक गीत की यह पंक्ति 'हिंदी हैं हम वतन हैं, हिंदोस्तां हमारा' जन गण भूल सा गया है।

इस तरह की सोच अत्यंत विघटनकारी है। स्पष्टत: उसके पीछे क्षुद्र-स्वार्थ एवं संकीर्णतायें ही हैं। दिग्गज साहित्यकार तो एक हिंदी विश्व सम्मेलन में इसलिये गये थे क्योंकि वह सोचते थे कि यदि वह उसमें न पहुँचे तो वह 'विश्व हिंदी सम्मेलन' की बजाय 'विश्व हिंदू सम्मेलन' भर रह जाएगा। हिंदू की ऐसी उपेक्षा पूर्ण व्याख्या करने वाले दिग्गजों के रहते, हिंदी के विश्वभाषा बनने का मार्ग आसान नहीं होगा। इसलिये इस सोच के बरअक्स, देश में स्वतंत्रता संघर्ष के समय की देशभक्ति एवं राष्ट्रीय दृष्टि जागृत करनी होगी। उसके बिना हिंदी न तो अपने देश में सम्मानित होगी और न ही विश्वमंच पर प्रतिष्ठा प्राप्त कर पायेगी।

भाषाई साम्राज्यवाद- हिंदी के विकास पथ की सबसे बड़ी बाधा है, अँग्रेजी का दिन-ब-दिन बढ़ता वर्चस्व। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कामकाज की भाषा तो अँग्रेजी ही है। इस कारण नौकरियों की तलाश में उमड़ रहे महत्त्वकांक्षी युवजन अँग्रेजी की ओर बड़ी तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। यही नहीं, अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों में शिक्षक तथा छात्र-छात्राओं के लिये बातचीत तथा काम माध्यम अनिवार्यत: अँग्रेजी ही है। ऐसे अँग्रेजी वातावरण में, हिंदी में प्रयुक्त देवनागरी अंक तो लुप्त होने की स्थिति में जा पहुँचे हैं। हमारे अखबार और आमजन हिंदी के स्थान पर हिंग्लिश का प्रयोग पर्याप्त धड़ल्ले से कर रहे हैं। वे शायद भूल रहे हैं कि जिस दिन हिंग्लिश में ६०% अँग्रेजी शब्द आ गये, उस दिन हम उस हिंदी से हाथ धो बैठेंगे जिसने सदियों चली, राजभाषा बनी फारसी का सामना किया और उसे भारतीय समाज-जीवन से बाहर कर दिया।

वस्तुत: हमारे समाज-जीवन के भीतर एक ऐसी प्रबल धारा चल रही है जो हमारी भाषा, धर्म, संस्कृति को पूरी तरह पश्चिमी रंग में रंग देना चाहती है। यह समूचे विश्व में ही अँग्रेजी भाषा के साम्राज्य को स्थापित किये जाने का सुनियोजित प्रयास है। उससे हिंदी को क्या विश्व की हर भाषा को (फ्रेंच जैसी समृद्ध भाषा को भी) बड़ा जबरदस्त खतरा है।

विश्व के प्रकाण्ड भाषाविदों का मानना है कि संसार में कभी ६०००+ भाषाएँ थीं। आज घटते-घटते वे १००० रह गई हैं। आश्चर्य नहीं कि किसी दिन घटकर उनकी संख्या ९०० रह जाये और फिर अंत में अँग्रेजी ही विश्व की एकमात्र भाषा बन जाये। इस तरह जैविक विविधता पर छा रहे संकट की भाँति, भाषागत विविधता पर भी संकट उत्पन्न सकता है। वस्तुत: आज साम्राज्यवाद का रूप बदल गया है। अब वह प्रकटत: अर्थ, वाणिज्य, भाषा, संस्कृति के माध्यम से अपना लौह जाल फैलाता है और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके सिपाही हर देश में 'बुद्धिजीवियों' के रूप में सक्रिय रहते हैं। भारत भी इन स्थितियों से अछूता नहीं है। संयोग से यहाँ एक ऐसा वर्ग भी सदैव से विद्यमान रहा है, जो जानता है कि भाषाई पारतंत्र्य, सांस्कृतिक पारतंत्र्य का आरंभिक रूप है और इसलिये उसे हल्के से नहीं लिया जा सकता है।

समाधान आमजन के पास- विचार संक्रमण की इस बेला में दुनिया के शीर्षस्थ विद्वानों एवं विचारकों का मानना है कि हिंदी विश्व की सर्वाधिक विज्ञान सम्मत भाषा है। वे यह भी जानते-समझते हैं कि वह विश्व में सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली एवं समझी जाने वाली भाषा है और इसलिये वे इस बात के भी प्रबल पक्षधर हैं कि उसे विश्वभाषा के रूप में संयुक्त राष्ट्र स्वीकार करे किन्तु भारत में स्वभाषा के सामने बिछी चुनौतियों से तो भारतीय मानस को ही जूझना होगा। अँग्रेजी मिशनरी और उनके परम सहयोगी कभी नहीं चाहेंगे कि हिंद और हिंदी विश्व में कभी सम्मानित और प्रतिष्ठित हो। इसी दृष्टि से और मुख्य रूप से अँग्रेजी की चुनौती को सामने रखकर माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी (पूर्व प्रधानमंत्री) ने एक अत्यंत रोचक 'कुंडलिया' की रचना की थी।

'बनने चली विश्व की भाषा
अपने घर में दासी।
सिंहासन पर अँग्रेजी है
लखकर दुनिया हाँसी।।
लखकर दुनिया हाँसी,
हिंदी दां बनते चपरासी।
अफसर सारे अँग्रेजीमय,
अवधी या मदरासी।।
कह कैदी कविराय,
विश्व की चिंता छोड़ो।
पहले घर में,
अँग्रेजी के घर को तोड़ो।।'

माननीय अटल जी ने अपनी इस रचना 'कुंडलिया' में भरपूर विनोदप्रियता का प्रदर्शन करते हुये हिंदी की प्रतिष्ठापना का मार्ग प्रशस्त किया है।

वस्तुत: अँग्रेजी देश की हर भाषा को क्षति पहुँचा रही हैं और उसके चलते जाने-अनजाने हिंग्लिश, बंग्लिश, तंग्लिश आदि का उदय हो रहा है। अनेक उत्तर-पूर्वी प्रदेशों में तो अँग्रेजी ही राजभाषा है, किन्तु प्रचारित किया जा रहा है कि हिंदी से क्षेत्रीय भाषाओं पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। जबकि कड़वी वास्तविकता यह है कि संकट अँग्रेजी से है और देश की हर भाषा को है।

इस समय हमें यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में गांधीजी ने हिंदी को स्वराज्य से जोड़ा था। उनसे जब एक बार पूछा गया कि 'यदि हिंदी और स्वराज्य में से किसी एक को ही चुनना हो तो आप किसे चुनेंगे', तो उन्होंने कहा था 'उस स्थिति में मैं हिंदी को चुनूँगा क्योंकि आजादी हिंदी से ही आयेगी' और हम यह जान भी लें कि हिंदी १२५ करोड़ लोगों की भाषा बनकर भी विश्व की भाषा बनने का गौरव प्राप्त करेगी।

संपर्क : डी.एच. २५, दीनदयाल नगर,
ग्वालियर (म.प्र.)-४७४००५
मो. ९४२५७११७८४

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय

विश्व में हिंदी की बढ़ती भूमिका

इक्कीसवीं सदी बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है और स्थलीय व भौगोलिक दूरियाँ अपनी अर्थवत्ता खो रहीं हैं। वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनर्संघटन की प्रक्रिया से गुजर रही है। ऐसी स्थिति में विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है।

बदलती दुनिया बदलते भाषिक परिदृश्य: यदि हम विगत तीन शताब्दियों पर विचार करें तो कई रोचक निष्कर्ष पा सकते हैं। यदि अठारहवीं सदी ऑस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व का साक्ष्य देती है। इसी तरह बीसवीं सदी अमेरिका एवं सोवियत संघ के वर्चस्व के रूप में विश्व नियति का नि:दर्शन करने वाली रही है। आज स्थिति यह है कि लगभग विश्व समुदाय दबी जुबान से ही सही, यह कहने लगा है कि इक्कीसवीं सदी भारत और चीन की होगी। इस सदी में इन दोनों देशों की तूती बोलेगी। इस भविष्यवाणी को चरितार्थ करने वाले ठोस कारण हैं। आज भारत और चीन विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से हैं तथा विश्व स्तर पर इनकी स्वीकार्यता और महत्ता स्वत: बढ़ रही है। इन देशों के पास अटूट प्राकृतिक संपदा तथा युवतर मानव संसाधन है जिसके कारण ये भावी वैश्विक संरचना में उत्पादन के बड़े स्रोत बन सकते हैं। अपनी कार्य निपुणता तथा निवेश एवं उत्पादन के समीकरण की प्रबल संभावना को देखते हुए ही भारत और चीन को निकट भविष्य की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वत: महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए वरदान-सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिंदी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है। आज विश्व स्तर पर उसकी स्वीकार्यता और व्याप्ति अनुभव की जा सकती है। जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्व भाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्वप्रथम विश्व भाषा का स्वरूप-विश्लेषण कर लें।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ : जब हम किसी भाषा के वैश्विक परिदृश्य पर विचार करते हैं तो हमें अनेक पक्षों पर गंभीर बात करनी होती है। आज हिंदी वैश्विक परिदृश्य में अपनी भूमिका बखूबी निभाने के लिए सुसज्जित है।

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। सामान्यत: विश्व व्यवस्था को संचालित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों में प्रयुक्त होने वाली भाषाएँ विश्व भाषा कहलाने की अधिकारिणी हैं, परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए उसके कुछ ठोस निष्कर्ष अथवा प्रतिमान बनाने होंगे। ऐसा करके हम हिंदी के विश्व संदर्भ का वस्तुपरक विश्लेषण कर सकते हैं। संक्षेप में, विश्वभाषा के निम्नलिखित अभिलक्षण निर्मित किए जा सकते हैं :-

- उसके बोलने-जानने तथा चाहने वाले विश्व में भारी तादाद में हों।
- उस भाषा में साहित्य-सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्राय: सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों।
- उसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बड़ी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक-दूसरे को प्रेरित-प्रभावित करने में सक्षम हो।
- उसकी शब्दावली एवं अर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन-पाठन और लेखन सहज-संभाव्य हो। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।
- उसमें ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वाङ्मय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।
- वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने-आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।
- वह अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो। उसमें विश्व मन की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने का माद्दा हो।
- वह जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।
- उसका साहित्य, अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो।
- उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो, जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन ई-मेल,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके।

- उसमें उच्चकोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।
- वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो,जो विश्वस्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों।

वैश्विक संदर्भ में हिंदी की सामर्थ्य : जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्राय: सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों- जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है, में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन् 1999 में मशीन ट्रांसलेशन समिट अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है। अँग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। आज संपूर्ण विश्व में हिंदी 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा, 24 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा और 42 करोड़ लोगों की तीसरी, चौथी, पाँचवीं अथवा विदेशी भाषा है। आज हिंदी विश्व के 206 देशों में धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रही है और उसके प्रयोक्ताओं की संख्या एक अरब तीस करोड़ तक पहुँच गयी है। हमारे देश के प्रशिक्षित पेशेवर लगातार विदेशों में अपनी सेवाएँ देने के लिए जा रहे हैं और उनके साथ हिंदी भी जा रही है। इसी तरह बहुराष्ट्रीय निगम बड़े पैमाने पर भारत में पूँजीनिवेश कर रहे हैं। फलत: वे अपने लाभ के लिए ही सही हिंदी का प्रयोग करने के लिए अभिशप्त हैं।'' चीन की भाषा मंदारिन के पिछड़ने का मुख्य कारण यह है कि अड़तीस प्रतिशत चीनी मंदारिन नहीं बोल पाते हैं, जबकि हिंदी की स्थिति इससे बेहतर है। केवल बाईस प्रतिशत भारतीय ही हिंदी बोल अथवा समझ नहीं पाते हैं। चीन में 56 बोलियाँ अथवा उपभाषाएं हैं, जो मंदारिन से एकदम भिन्न हैं। यह मान भी लिया जाय कि आँकड़े झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बड़ी भाषाओं में से है। लेकिन वैज्ञानिकता का तकाज़ा यह भी है कि हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें कि अँग्रेजी के प्रयोक्ता भी विश्व के उतने ही देशों में फैले हुए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली सबसे प्रभावशाली भाषा बनी हुई है। निकट भविष्य में विश्व व्यवस्था परिचालन की दृष्टि से अँग्रेजी की उपादेयता एवं महत्त्व को कोई खतरा नहीं है। इस मोर्चे पर हिंदी का बड़े ही सबल तरीके से उन्नयन करना होगा। उसके पक्ष में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज अँग्रेजी के बराबर वह विश्व के सबसे ज्यादा देशों में व्यवहारित होती है। उसने डिजिटल दुनिया में अँग्रेजी के एकाधिकार को समाप्त कर दिया है।

आने वाली पीढ़ी की भाषा-वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश में विशाल जनसंख्या भारत और चीन के साथ-साथ हिंदी और चीनी के लिए भी फायदेमंद सिद्ध हो रही है। हमारे देश में 1980 के बाद 70 करोड़ से ज्यादा बच्चे पैदा हुए हैं। जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh,Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षित-प्रशिक्षित हो रहे हैं। वे सन् 2025 तक विधिवत प्रशिक्षित पेशेवर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के लिए विश्व के समक्ष उपलब्ध होंगे। दूसरी ओर जापान की साठ प्रतिशत से ज्यादा आबादी साठ साल पार करके बुढ़ापे की ओर बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है। ऐसी स्थिति में विश्व का सबसे तरुण मानव संसाधन होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तमाम देशों में लगातार माँग बढ़ेगी। जाहिर है कि जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे। वहाँ की व्यवस्था परिचालन का सशक्त पहिया बनेंगे तब उनके साथ हिंदी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में होगा, वहाँ हिंदी स्वत: विश्वमंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह माना जा सकता है कि हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि: यदि हम इन आँकड़ों पर विश्वास करें तो संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हिंदी में साहित्य-सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत-अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्वस्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भों से दूर हो गए हैं उनका त्याग भी कर दिया है। आज हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है।

जहाँ देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी की शब्दावली और अर्थ संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं, जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिंदी भाषा में है, बशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर,उपग्रह चैनल हिंदी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं।

मीडिया और वेब पर हिंदी: यह सत्य है कि हिंदी में अँग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। 'इकोनामिक टाइम्स' तथा 'बिज़नेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिंदी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अँग्रेजी में आरंभ हुए थे, वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णत: हिंदी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, 'ई.एस.पी.एन.' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिंदी में कमेंट्री देने लगे हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह-चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार-माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों,अफ्रीका,यूरोप,कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिंदी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है। हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि स्वयं गूगल का सर्वेक्षण सिद्ध कर रहा है कि विगत दो वर्षों में सोशल मीडिया पर हिंदी में प्रयुक्त होने वाली सामग्री में 94 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है,जबकि अँग्रेजी में मात्र 19 प्रतिशत की।

राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में हिंदी: जहाँ तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के क्षेत्र में हिंदी के अनुप्रयोग का सवाल है तो यह देखने में आया है कि हमारे देश के नेताओं ने समय-समय पर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में भाषण देकर उसकी उपयोगिता का उद्घोष किया है। यह भी सर्वविदित है कि यूनेस्को के बहुत सारे कार्य हिंदी में सम्पन्न होते हैं।

इसके अलावा अब तक विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, त्रिनिदाद, लंदन, सुरीनाम तथा न्यूयार्क जैसे स्थलों पर सम्पन्न हो चुके हैं जिनके माध्यम से विश्व स्तर पर हिंदी का स्वर सम्भार महसूस किया गया। अभी आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार वाक्य हिंदी में बोलकर उपस्थित विश्व हिंदी समुदाय की खूब वाह-वाही लूटी। हिंदी को वैश्विक संदर्भ और व्याप्ति प्रदान करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई है। इन विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर हिन्दी अध्ययन अध्यापन की सुविधा है जिसका सर्वाधिक लाभ विदेशी अध्येताओं को मिल रहा है।

विदेशों में हिंदी : हिंदी विश्व के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण देशों के विश्व विद्यालयों में अध्ययन अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग एक सौ पचास से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। आज जब 21वीं सदी में वैश्वीकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान-प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिंदी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहु सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है, जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है।

आज जरूरत इस बात की है कि हम विधि,विज्ञान,वाणिज्य तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पाठ्यसामग्री उपलब्ध कराने में तेजी लाएँ। इसके लिए समवेत प्रयास की जरूरत है।

सम्पर्क : रानाडे भवन, विद्यानगरी,
सांताक्रूज (पूर्व), मुंबई-४०००९८
मो. ०९८६९५११८७६

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी

हिंदी का वैश्विक संदर्भ

भूमंडलीकरण और बाजारवाद के इस युग में अनेक चुनौतियों और संकटों तथा विघ्न-बाधाओं का सामना करती हुई हिंदी अगर अपनी आभा के साथ विश्व-पटल पर दीप्तिमान हो रही है तो यह उसकी भीतरी ऊर्जा और शक्तिमान का ही प्रमाण है। आज उच्च प्रौद्योगिकी एवं सूचना-संचार ने संपूर्ण संसार से एक 'विश्व ग्राम' में बदलकर जहाँ मानवीय सुविधाओं में अभिवृद्धि की है वहीं अनेक भाषाओं/बोलियों तथा सभ्यता-संस्कृति की जड़ों को कमजोर करने का कार्य भी किया है। ऐसे भयावह वात्याचक्र में यह आशंका की जा रही है कि आगामी पाँच दशक बाद वर्तमान समय में विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में से मात्र नौ सौ भाषाओं का ही अस्तित्व रह जाएगा। अँग्रेजी के बढ़ते प्रभाव के कारण कुछ लोग हिंदी की अस्मिता को लेकर भी शंकालु हैं। चिंतन के फलक पर नकारात्मकता अधिक और सकारात्मकता की कमी दिखाकर हिंदी को उपेक्षणीय बनाने वालों की संख्या भी कम नहीं है। समाज में हिंदी के पक्ष में कहीं अधिक उत्साह है तो कहीं घोर निराशा। ऐसे में यह क्या जरूरी नहीं है कि अभिवादिताओं से रहित होकर यथार्थ के धरातल पर हिंदी की दशा-दिशा का समाकलन हो और तब हमें अनुभव होगा कि हिंदी का भाल आज जिस तरह दीप्तिमान है वैसा इससे पूर्व कभी नहीं था। आसमुद्र इसकी कीर्तिगाथा का वितान तना हुआ है। हिमरश्मियाँ इसकी उज्ज्वलता को अत्यधिक प्रभावित कर रही हैं। संपूर्ण भारतवर्ष में पूरब से पश्चिम तक उत्तर से दक्षिण तक हिंदी का जयनिनाद तो ध्वनित हो ही रहा है, विश्व-पटल पर भी इसका जयघोष इसके उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। जाहिर है, जिसका वर्तमान सुंदर होता है उसका भविष्य असुंदर होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। हिंदी का वर्तमान बहुत अच्छा है जिसे स्वीकारने में उन्हें भी आपत्ति नहीं हो सकती जो हिंदी के भविष्य को लेकर संशयग्रस्त हैं। राजभाषा हिंदी को लेकर उनकी आशंका एक सीमा तक सही हो भी सकती है लेकिन संपर्क की भाषा, शिक्षा और साहित्य की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा के रूप में हिंदी की प्रगति का ग्राफ निरंतर उन्नतिगामी हुआ है और इसी बल पर वह 'विश्वभाषा' बनने के पथ पर सतत गतिमान है।

सूचनाओं के आदान-प्रदान की भाषा के रूप में हिंदी की प्रगति तीव्रगामी है। विश्व की दूसरी बड़ी आबादीवाला देश भारत आज सबसे बड़ा खरीददार और उपभोक्ता बाजार है। क्रय-विक्रय की प्रक्रिया में भाषा की बहुत बड़ी भूमिका होती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जाने-अनजाने हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रही हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है कि भारतवर्ष में यदि सामान बेचना है तो हिंदी को माध्यम बनाना ही पड़ेगा। बाजार से लेकर विचार तक अपनी संप्रेषण क्षमता के कारण हिंदी का भूमंडलीकरण भाषा के रूप में अनायास प्रचार-प्रसार हो रहा है। वह विज्ञापन की भाषा बन रही है। यह हिंदी का सौभाग्य है कि आज बाजारवाद की नियोजक शक्तियाँ उसके साथ हैं। अपने हित के लिये ही सही वे हिंदी का दामन पकड़ने के लिये अभिशाप्त हैं और यही स्थिति हिंदी के लिये वरदान साबित हो रही है। अपनी समावेशी प्रवृत्ति के कारण वह प्रिण्ट, इलेक्ट्रानिक तथा इंटरनेट जैसे माध्यमों से जुड़कर अपनी सार्थकता सिद्ध कर रही है। सोशल मीडिया के साथ-साथ ब्लॉग और ई-पत्रिकाओं के माध्यम के रूप में हिंदी जिस तरह पैर पसार रही है उससे उसका वैश्विक भाषा बनने का सपना सच साबित हो रहा है। आज ऐसे सॉफ्टवेयर विकसित हो चुके हैं जिनसे हिंदी तकनीकी की दृष्टि से समृद्ध हो रही है। जाहिर है सामान्य जन से जुड़ने के लिये सूचना प्रौद्योगिकी को भी जनभाषा के सहयोग की अपेक्षा रहती है। 'व्हॉट्सएप' के माध्यम से हिंदी का प्रयोग बढ़ा है। 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' हिंदी शब्दों को सम्मिलित कर एक इतिहास बना चुकी है। अमेरिका में अंतर्राष्ट्रीय संस्था 'इंटरनेशनल रोटरी क्लब' ने भी सर्वसम्मति से हिंदी प्रयोग को मान्यता प्रदान की है। प्रवासी भारतीयों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य-सृजन किया है। जिन पर शोध कार्य हुये हैं। हिंदी की यह विशेषता है कि वह अपने को अवसरानुकूल ढालने में सक्षम है। मुक्त बाजार और वैश्वीकरण के दबावों से हिंदी में अनुकूलन की क्षमता और बढ़ी है। कम्प्यूटर, इंटरनेट तथा सोशल मीडिया आदि के लिये आज वह एक उपयुक्त भाषा है। उसकी गुणता और पात्रता आज के परिवेश की उपज नहीं है, बल्कि उसमें सामयिकता के साथ गतिशील होने की सामर्थ्य प्रारंभ हो रही है। देश और विदेश में निरंतर अग्रगामी तथा परंपरा और आधुनिकता के संवहन में सक्षम हिंदी का वर्तमान जब इतना उल्लासपूर्ण है तब उसका भविष्य भी उज्वल ही रहेगा।

हिंदी वैश्विक साम्राज्यवाद से मुक्ति की भाषा है। उसकी ताकत का समाकलन हमारे स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने किया था। उसे महत्त्व के साथ उच्चासन पर विराजमान किया था। इसीलिये वह गांधी के चरखे के साथ गुनगुनाती थी। आजादी के दीवानों की साँसों में तराना बनकर गूँजती थी। सामासिक संस्कृति की वाहिका बनकर एकता का राग अलापती थी। अंग्रेजों ने हमारी भाषा को नष्ट करने का एक भी दाँव नहीं छोड़ा क्योंकि वे यह जानते थे कि अगर किसी समाज और संस्कृति को विनष्ट करना हो तो सर्वप्रथम उसकी भाषा को नष्ट करना चाहिए। यह हमारी शुभेच्छा और सांस्कृतिक विशेषता है जो लार्ड मैकाले के लाख प्रयत्नों के बावजूद भी भारतीय संस्कृति अपनी अस्मिता बचाये रख सकी अन्यथा उसकी मानसिकता तो यह थी, जो उसने ब्रिटिश संसद के 2 फरवरी, 1835 के अधिवेशन में प्रकट की थी- ''मैंने भारत की ओर छोर की यात्रा की है, पर मैंने यहाँ एक भी आदमी नहीं देखा जो भीख माँगता हो या चोर हो। मैंने इस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुल्क में अपार संपदा देखी है। इस योग्यता और मूल्यों वाले भारतीय को कभी कोई जीत नहीं सकता है, यह मैं मानता हूँ। तब तक जब तक कि हम इस देश की रीढ़ ही न तोड़ दें और भारत की यह रीढ़ है उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत। इसीलिये मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि भारत की पुरानी शिक्षा-व्यवस्था को हम बदल दें। उसकी संस्कृति को बदलें ताकि भारतीय यह सोचें कि जो भी विदेशी हैं, बेहतर हैं ताकि वे सोचने लगें कि अँग्रेजी भारतीय भाषाओं से महान है। इससे वे अपना आत्मसम्मान खो बैठेंगे। अपनी देशज जातीय संस्कृति भूलने लगेंगे और तब वे वह होंगे, जो हम चाहते हैं। सचमुच का एक आक्रांत और पराजित राष्ट्र।'' इससे यह समझने में आसानी होगी कि मैकाले ने किस तरह भाषा की गुलामी से भारतवासियों को अपनी जकड़बंदी में लेने की कोशिश की थी। इस तरह अनेक अवरोधों, भितरघातों के बावजूद हमारी भाषाएँ जीवित हैं और हमारी संस्कृति भी। आज फिर से सांस्कृतिक प्रभुत्ववाद के विस्तार में अमेरिका अथवा यूरोप के समृद्ध एवं शक्तिशाली देश भारत की संस्कृति पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिये सचेष्ट हैं। उनकी गिद्ध-दृष्टि हमारी संस्कृति और हमारी भाषा को विनष्ट करने के लिये आतुर हो रही है। सूचना-संचार के बघनखों से वे भारत जैसे देशों की संस्कृतियों का गला घोटने के प्रयास में है, लेकिन 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' और वह हस्ती है, 'हमारी भाषा और हमारी संस्कृति।' इनके सामर्थ्य से हमारा हौसला बुलंद है। यही कारण है कि सन् 1935 में अपना देश बेल्जियम छोड़कर भारत की नागरिकता स्वीकारने वाले फादर डॉ. कामिल बुल्के को यह कहना पड़ा था- ''अँग्रेजी यहाँ दासी या अतिथि के रूप में रह सकती है, बहूरानी के रूप में नहीं। संस्कृत माँ, हिंदी गृहिणी और अँग्रेजी नौकरानी है।'' यह बात अलग है कि हिंदी अथवा देशी भाषाओं / बोलियों को नौकरों तथा (लुच्चों-लफंगों) अशिक्षितों की बोली सिद्ध करने व अँग्रेजी बोलने वालों को आभिजात्य श्रेणी में रखने का काम भी हो रहा है। इससे हमारी सांस्कृतिक छवि को जो आघात पहुँच रहा है उसकी जिम्मेदारी तय होनी चाहिए।

हिंदी वैश्विक संदर्भ को समझने के लिये भारत से बाहर के मानचित्र पर दृष्टिपात करें तो फिजी, गुयाना, मॉरीशस, सूरीनाम, ट्रबैगो, त्रिनिदाद आदि देशों में आधी आबादी हिंदी भाषी है। नेपाल का सीमावर्ती क्षेत्र हो अथवा सोवियत संघ में तजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान आदि का क्षेत्र वहाँ भी हिंदी के प्रयोक्ता मिल जायेंगे। लंदन, न्यूयॉर्क, हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर आदि महानगरों तथा देशों में भी हिंदी का प्रदीप जलता हुआ देखा जा सकता है। विश्व बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप हिंदी आज जर्मनी, जापान, कनाडा, रूस, इंडोनेशिया, ब्रिटेन, अमेरिका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार आदि देशों में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में संलग्न है। रोजी रोजगार अथवा व्यापार की दृष्टि से विश्व भर में फैले प्रवासी भारतीयों ने हिंदी का माथा उन्नत और प्रशस्त किया है। वे हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं अथवा बोलियों के माध्यम से न केवल सांस्कृतिक आदान-प्रदान करते हैं बल्कि वैश्विक क्षितिज पर भारतीयता का प्रचार-प्रसार भी करते हैं। इस तरह हिंदी विश्व के सभी महाद्वीपों तथा राष्ट्रों में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है। यही कारण है कि देश-विदेश में बोलने वालों की संख्या के आधार पर आज हिंदी की स्थिति सबसे अच्छी है। संख्या बल के आधार पर हिंदी और चीनी विश्व की अग्रगण्य भाषाएँ हैं लेकिन दोनों में एक अंतर यह है कि जहाँ मंडारिन केवल चीन में प्रयुक्त होती हैं वहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी का प्रसार अपेक्षाकृत अधिक देशों में है। गिरमिटिया लोगों ने मॉरीशस, फीज़ी, गुयाना, त्रिनिदाद, ट्रबैगो आदि देशों में हिंदी का प्रदीप जिस प्रकार ज्योतित कर रखा है वह हिंदी के विश्व-संदर्भ को और अधिक विस्तृत करता है।

हिंदी विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है तो उसका एक आधार संसार के महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में उसका अध्ययन-अध्यापन होना भी है। विश्व के डेढ़ सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन हिंदी के विकास को ही दर्शाता है। इसी अमेरिका में बुश प्रशासन ने स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई के लिये उचित वातावरण बनाने पर जोर दिया है। इंग्लैण्ड के चार विश्वविद्यालयों- ऑक्सफोर्ड, लंदन, यार्क और क्रैम्बिज में बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। इटली के ओरएंटल, वेनिस, मिलान, रोम, टूरिन विश्वविद्यालयों से प्रत्येक वर्ष एक बड़ी संख्या में विद्यार्थी हिंदी की डिग्री लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरते हैं। तुलसी साहित्य में विशेष रुचि रखने वाले ए.पी. वारान्निकोव ने हिंदी का जो दीप प्रज्वलित किया उसकी ज्योति सोवियत संघ के विश्वविद्यालयों में विकीर्ण हो रही है। सेंट पीटर्सबर्ग और मरक्वा विश्वविद्यालय आज हिंदी अध्ययन के प्रधान केंद्र हैं। स्वीडन के स्टॉकहोम, नार्वे के ओस्लो, डेनमार्क के कोपेनहेगेन विश्वविद्यालयों में लगभग सत्तर के दशक से हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। यूरोप के अन्य देशों फ्रांस, चेक, ऑस्ट्रिया, रोमानिया, यूक्रेन आदि के विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण हिंदी के भविष्य को समुज्वल बनाता है। नेपाल का त्रिभुवन विश्वविद्यालय भारतीय भाषाओं के समादर के लिये प्रख्यात है। भारत के विद्वानों को वह विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित करता है तथा वहाँ के विद्वान भारत आते हैं जिससे भाषिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापना में मदद मिलती है। नेपाल में महाविद्यालय स्तर पर हिंदी के पठन-पाठन की अच्छी व्यवस्था है। वहाँ का पाठ्यक्रम भारतीय विश्वविद्यालयों के अनुरूप बनाया जाता है। भूटान बौद्ध मतावलंबी देश है इसलिये वहाँ संस्कृत, पालि तथा हिंदी आदि का प्रयोग होना स्वाभाविक है। वहाँ हिंदी संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वहन करती है तो इसलिये कि दोनों देशों के नागरिक एक-दूसरे के यहाँ कार्य करते हैं। वहाँ हिंदी-शिक्षण का कार्य बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही चल रहा है। श्रीलंका के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों कोलंबो, केलाणिय, जयवर्द्धने आदि में हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के शिक्षण-प्रशिक्षण का समुचित प्रबंध है। श्रीलंकाई छात्र हिंदी का ज्ञानार्जन हेतु भारत आते हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में अनेक विदेशी छात्रों के साथ श्रीलंका के विद्यार्थी भी हिंदी की पढ़ाई करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि दक्षेस में भी हिंदी के लिये अनुकूल वातावरण है।

हिंदी के वैश्विक-क्षितिज के विस्तार में सोशल मीडिया की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। सोशल मीडिया इलेक्ट्रानिकी की उपज है। कम्प्यूटर स्मार्टफोन तथा इंटरनेट का उपयोग करते हुये लोग जो एक-दूसरे को सूचना अथवा संदेश देने तथा परस्पर संबंध बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं, वह समस्त कार्य-व्यापार सोशल मीडिया की कार्य-परिधि के अंतर्गत आता है। तकनीकी आविष्कृतियों के अनुरूप अपने आप को ढालने में जो भाषा अक्षम होगी उसे वैश्विक स्वीकृति मिलने में कठिनाई होगी। संतोष की बात है कि हिंदी इन प्रौद्योगिक उपलब्धियों के साथ ताल में ताल मिलाकर चलने के लिये अपने को तैयार कर रही है। फेसबुक एवं व्हाट्सअप पर हिंदी का बढ़ता प्रयोग आश्वस्तिकर है। हिन्दी सोशल मीडिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तन को साकार करने में सन्नद्ध है। इसमें टी.वी. चैनलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। कहना न होगा कि उपग्रह द्वारा प्रसारित विभिन्न चैनलों के माध्यम से हिंदी विश्व के हर कोनों तक अपनी पहुँच बनाने में सफल हुई है। 'डिस्कवरी चैनल', 'नेशनल ज्योग्राफिक चैनल' तथा 'दी कार्टून चैनल' का हिंदी में प्रसारण इस भाषा की विश्व व्याप्ति की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है। यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, खाड़ी देशों, मध्य एशिया, चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में हिंदी के कार्यक्रमों के प्रसारण हो रहे हैं और उन्हें देखा भी जा रहा है। बी.बी.सी. लंदन द्वारा प्रसारित हिंदी कार्यक्रमों के प्रति भी लोगों का आकर्षण कम नहीं है। माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आई.बी.एम. तथा ओरेकल जैसी विश्व की प्रमुख कम्पनियाँ विशुद्ध व्यापारिक दृष्टि और लाभ के लिय हिंदी के प्रयोगों को बढ़ावा दे रही हैं। इससे फायदा तो हिंदी को ही हो रहा है। जहाँ तक हिंदी-शिक्षण में सोशल मीडिया की भूमिका का सवाल है तो वह भी नित नवीन आविष्कारों एवं प्रयोगों तथा प्रविष्टि-प्रक्रिया में उसका सहयोगी साबित हो रहा है। आज कम्प्यूटर की संसाधन क्षमता और इंटरनेट द्वारा संप्रेषण क्षमता तथा मल्टीमीडिया जैसे सॉफ्टवेयर के कारण श्रव्य-दृश्य आधारित अनेक अनुप्रयोग कक्षा की सीमा से बाहर निकलकर वैश्विक कक्षा का निर्माण कर रहे हैं। जहाँ तक हिंदी भाषा की बात है तो कम्प्यूटर द्वारा विशेष पढ़ाई, जिसमें कम्प्यूटर में कार्य करने के लिये कम्प्यूटर के फॉन्ट अथवा इंटरनेट ब्लॉग एवं हिंदी में चेटिंग की सुविधा उपलब्ध है। ई-लर्निंग को सोशल मीडिया से जोड़कर हिंदी-शिक्षण को व्यापक बनाने में मदद ली जा रही है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित बारह हजार पृष्ठों का 'विश्व हिंदी कोष' तथा अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा हिंदी साहित्य के एक लाख पृष्ठों को इंटरनेट पर उपलब्ध कराना हिंदी को वैश्विक बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल है।

सूचना क्रांति के इस युग में हिंदी की लचीली एवं समावेशी प्रकृति ने सूचना-तंत्र के विस्फोटक दर्शन को पचाकर अपनी सार्थकता सिद्ध कर रही है। यद्यपि हिंदी में भाव-विचार तथा प्रौद्योगिकी विज्ञान-संप्रेषण की अपार क्षमता है किंतु भारतीयों में अपनी भाषा के प्रति प्रेम और आत्मविश्वास का अभाव है। वैसे भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति से जिस लक्ष्य को पूरा करने के लिये अँग्रेजी का चयन किया गया था वह भी कहाँ पूरा हुआ? इसके साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि भाषा संस्कृति वाहिनी होती है। अँग्रेजी जिस संस्कृति की वाहिका है, उससे हमारी संस्कृति का मेल नहीं हो सकता। हमारी संस्कृति, सत्य, ईमानदारी, नैतिकता, सहिष्णुता और मानवता के पथ पर अग्रसर होकर अध्यात्म की ऊँचाईयों तक की यात्रा में विश्वास रखती है। जबकि अँग्रेजी संस्कृति भोग और खण्डित जीवन की प्रवक्ता है। इसलिये विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को विदेशी भाषा में पढ़ने और सीखने से विज्ञान और संस्कृति के बीच एक दीवार तो रहेगी ही। इसके विपरीत हिंदी सामासिक संस्कृति की संवाहिका बनकर विकसित और समृद्ध हुई है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण हिंदी एक दिन विश्वभाषा के रूप में अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करेगी।

संपर्क : जवाहर लाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय,
पोर्ट ब्लेयर, अण्डमान -७४४१०४
मो. ९४३४२८६१८९

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. नरेन्द्र मिश्र

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संवाहक विश्वभाषा हिन्दी

हिन्दी का प्रभाव संपूर्ण विश्व में है। हिन्दी सृजन की भाषा है। हिन्दी से संपूर्ण जगत स्पंदित हो रहा है। हिन्दी ने हिन्दुस्तान की खुशबू को सर्वत्र सुवासित किया है। हिन्दी का ही वैशिष्ट्य है कि भारतीयता उसमें रच बस गया है। विश्व के अधिकांश देशों में भारतीय तीज त्यौहार अपनी संपूर्ण छटा के साथ मनाए जाते है। हिन्दी सुख-दुख, उल्लास-अवसाद, प्रेरणा, त्याग, समर्पण नवनिर्माण से लेकर राष्ट्र के लिए हँसते-हँसते प्राणों का न्यौछावर करने का भाव पैदा करती है। हिन्दी परिवार आज संपूर्ण विश्व में फैला हुआ है। हिन्दी की अनदेखी करने का सामर्थ्य आज कार्पोरेट जगत भी नहीं कर सकता। भूमंडली -करण के दौर में आज हिन्दी अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य बनी हुई है। भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने हिन्दी को विश्वजगत में नई पहचान और प्रतिष्ठा प्रदान की है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पोषण करने में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान और भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिषद् ने अतुल्य सहयोग प्रदान किया है। विश्व के अनेक देशों के विद्यार्थी यहाँ भारतीय लोक संगीत, नृत्य एवं गीत सीखकर अपने-अपने देशों में भारतीयता को सींचकर पुष्पित एवं पल्लवित कर रहे हैं।

गुलाबराय ने उचित ही कहा है कि, ''जिस देश में भेद नहीं उसकी इकाई शून्य या गणितशास्त्र की इकाई की भाँति दरिद्र इकाई है। संपन्नता भेदों में ही है किन्तु भेद इतने नहीं होने चाहिए कि उसमें सामंजस्य न रहे।'' यह भारत की अनेकता में एकता की संस्कृति अनूठी है। इसी एकता के चलते विश्व समुदाय इस बात पर चकित है कि भारत में इतनी विविधता तथा भिन्नता के बावजूद एकता के सूत्र किस तरह मजबूत हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह एकता अचानक ही नहीं आ गई है, यह तो भारत की प्राचीनता एवं उसकी गौरवशाली परंपरा की देन है। यदि देखा जाए तो स्वामी शंकराचार्य ने भारत के चारों दिशाओं में अपने मठ स्थापित किए थे। ये मठ उत्तर में ज्योतिर्मठ, दक्षिण में शृंगेरी मठ, पूर्व में गोवर्धन मठ तथा पश्चिम में शारदा मठ स्थापित किए गए थे। इन मठों की स्थापना के पीछे भारत की एकता के सूत्र विद्यमान है। ये भारत की एकता के परिचायक चिन्ह हैं।

युग-युग से भारत के मध्य देश की भाषा ही सारे देश के लोगों के बीच सम्पर्क-सेतु का कार्य करती रही है। हिन्दी भारत के मध्य देश की भाषा है और सैकड़ों वर्षों से शासकों, धर्म-प्रचारकों, सामाजिक नेताओं ने हिन्दी का ही उपयोग किया है। दक्षिण के धर्माचार्यों-वल्लभ, विट्ठल, रामानुज, रामानन्द आदि ने, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने, महाराष्ट्र में महानुभाव सम्प्रदाय, वारकरी सम्प्रदाय ने, पंजाब के सिख गुरुओं ने, सूफी फकीरों ने, गुजरात के स्वामी दयानन्द ने हिन्दी का प्रयोग किया। हिन्दी दीर्घकाल से सारे देश के जन-जन के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा रही है। इतना ही नहीं, वह साहित्य की भी अखिल भारतीय भाषा रही है। कबीर, सूर, तुलसी के पद सारे देश के लोग गुनगुनाते हैं। मुसलमान शासकों के सिक्कों और शाही फरमानों में भी हिन्दी का प्रयोग होता था। ईसाई मिशनरियों ने अपना धर्म-प्रचार हिन्दी में ही किया। ब्रिटिश शासकों को हिन्दी सिखाने के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज में प्रबन्ध किया गया। स्वतंत्रता संग्राम के समय विभिन्न प्रान्तों के नेताओं-तिलक, गांधी, राजगोपालाचार्य, राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन आदि ने भावात्मक और राष्ट्रीय एकता को आवश्यक माना और कहा कि इसके लिए एक भाषा चाहिए और वह हिन्दी ही हो सकती है। कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी होने लगे और इनमें हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयास करने पर बल दिया गया।

बहुभाषिकता इस देश की विशेषता है। भारत की बहुभाषिकता देश की शक्ति है और उसकी कमजोरी भी। देश की शक्ति इसलिए है कि देश की ये भाषाएँ भारतीय संस्कृति की संवाहिकाएँ हैं। यहाँ अनेक भाषा-भाषी, विविध खान-पान एवं रीति-रिवाज के लोग निवास करते हैं। इन सबके बावजूद सभी के मध्य एकता के सूत्र विद्यमान हैं। आज नाना प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक कारणों से भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति या उसके मूल स्वर पर दबाव पड़ा है, परन्तु फिर भी यह मूल स्वर अपने जटिल विन्यास में अब भी विद्यमान है। भारतीय साहित्य की एकता उसके वैविध्य के कारण और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। भारत में किसी भी काल, किसी भी भाषा में जो भी साहित्य रचा गया है, उसका विवेचन भारतीय साहित्य के अंतर्गत होना चाहिए। रामविलास शर्मा का कथन है- ''किसी एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषाओं के साहित्य को जाने बिना समझ में नहीं आ सकता अर्थात वैज्ञानिक दृष्टि से उसका इतिहास नहीं लिखा जा सकता। देखना यह चाहिए कि इन अनेक भाषाओं में लिखा क्या गया है, इसमें आपस में संपर्क कैसा है, साहित्य की वे कौन-सी धाराएँ है, जो प्रदेशों की सीमाएँ लाँघकर अखिल भारतीय स्तर पर प्रवाहित होती हैं।'' आधुनिक भारतीय साहित्य भले ही विभिन्न भाषाओं में लिखा जाता हो मगर उनमें भी एक सर्वभारतीय संवेदना दिखाई पड़ती है- ऐसी संवेदना जिसके मूल में वैसे मूल्य हैं, जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास और अनुभव की उपलब्धियाँ हैं।

इतिहास की भले ही ज्यों की त्यों पुनरावृत्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हो जाए लेकिन साहित्यिक भावधारा ज्यों की त्यों कभी नहीं लौटती उसमें कुछ न कुछ नया जुड़ जाता है।

जहाँ तक साहित्य की बात है तो विभिन्न भाषाओं के साहित्य के बीच कोई अभेद दीवार न थी। मीरा गुजराती और हिन्दी में समान रूप से समादर हैं। मीरा के गीतों से बंगाल भी प्रभावित है। भूषण की वाणी का महाराष्ट्र में भी आदर हुआ था। सन्त तुकाराम आदि महाराष्ट्र सन्तों ने अपनी कविता में हिन्दी को भी अपनाया। विद्यापति समान रूप से हिन्दी मैथिली और बंगला के कवि माने जाते हैं। कबीर, दादू आदि संतों का पूरे भारत वर्ष में व्यापक प्रभाव है। तुलसीकृत रामायण का मराठी और बंगला में भी अनुवाद हुआ। सूरदास के भजनों को प्रायः सभी प्रान्तों के गवैयों ने अपनाया है। बंगला के वन्देमातरम और जन-गण-मन राष्ट्रीय गीत बने। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यंत अपूर्ण रहेगा। उदाहरण के लिए, मधुरा भक्ति का अध्येता यदि अपनी परिधि को केवल हिन्दी या केवल बंगला तक ही सीमित कर ले तो वह सत्य के शोध में असफल रहेगा। उसे अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में प्रवाहित मधुरा भक्ति की धाराओं में भी अवगाहन करना होगा ˙ गुजराती, उड़िया, असमिया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम सभी की तो भूमि मधुर रस से आप्लावित है। एक भाषा तक सीमित अध्ययन में स्पष्टतः अनेक छिद्र रह जाएँगे। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार को जो अनेक घटनाएँ सांयोगिक सी प्रतीत होती हैं, वे वास्तव में वैसी नहीं हैं। आचार्य शुक्ल को हिन्दी के जिस विशाल गीत-साहित्य की परंपरा का मूल स्रोत प्राप्त करने में कठिनाई हुई थी, वह अपभ्रंश के अतिरिक्त दक्षिण की भाषाओं में और बंगला में सहज ही मिल जाता है। सूर का वात्सल्य-वर्णन हिन्दी-काव्य में घटने वाली आकस्मिक या एकान्तिक घटना नहीं थी, गुजराती कवि भालण ने अपने आख्यानों में, पंद्रहवीं शती के मलयालम कवि ने कृष्णगाथा में, असमिया कवि माधव देव ने अपने बड़गीतों में अत्यन्त मनोयोगपूर्ण कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है। भारतीय भाषाओं के रामायण और महाभारत काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन न जाने कितनी समस्याओं को अनायास ही सुलझाकर रख देता है। सूफी काव्य के मर्म को समझने में फारसी के अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम की भाषाओं-कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी और उर्दू-में विद्यमान सत्संबंधी साहित्य से अमूल्य सहायता प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार हिन्दी के अष्टछाप कवियों का प्रभाव बंगाल और गुजरात तक अव्यक्त रूप से व्याप्त था। वहाँ के कृष्णकाव्य के सम्यक् विवेचन में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ये सभी एकता के मूल सूत्र हैं।

भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं का जन्मकाल प्रायः समान ही है। इन भाषाओं का जन्म प्रायः 11वीं शताब्दी माना जाता है। जन्मकाल ही नहीं इसके अतिरिक्त आधुनिक भारतीय साहित्यों के विकास के चरण भी प्रायः समान ही है। प्रायः सभी का आदिकाल 15वीं शती तक चलता है। पूर्व मध्यकाल की समाप्ति मुगल वैभव के अन्त अर्थात् 17वीं शती के मध्य में तथा उत्तर मध्यकाल की अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के साथ होती है और तभी से आधुनिक युग का आरंभ हो जाता है। संविधान की आठवीं अनुसूची में बाईस भाषाओं को स्थान मिला है।

भारत की विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य रहा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसके साथ ही राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का साम्य और भी अधिक रहा। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, संस्कृत का अभिजात साहित्य-अर्थात कालिदास, भवभूति, बाण, श्रीहर्ष, अमरुक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला। शास्त्र के अन्तर्गत उपनिषद्, षड्दर्शन, स्मृतियाँ आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक अमर ग्रंथ-नाट्यशास्त्र, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्य दर्पण रसगंगाधर आदि की विचार विभूति का भी उपयोग भी सभी ने निरंतर किया है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये अक्षय प्रेरणा स्रोत हैं और प्राय: सभी को समान रूप से प्रभावित करते रहें हैं। इस प्रकार समान राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आधारभूमि पर पल्लवित-पुष्पित भारतीय साहित्य में जन्मजात समानता एक सहज घटना है।

भारतीय वाङ्मय में आधुनिकता का समारम्भ लगभग समकालिक ही है। संस्कृत काव्यशास्त्र का सार्वभौम प्रभाव भी भारतीय वाङ्मय की एकता का स्थायी आधार है। भारत का नाट्यशास्त्र, आनंदवर्धन का ध्वन्यालोक, दण्डी का काव्य-दर्ष, मम्मट का काव्यप्रकाश, विश्वनाथ का साहित्य दर्पण और पंडित जगन्नाथ का 'रसगंगाधर' आदि भारत की समस्त भाषाओं के काव्य पंडितों में लोकप्रिय रहे हैं और इनके समय-समय पर अनुवाद या आख्यान होते रहे हैं। अब तक हमने भारतीय वाङ्मय की केवल विषय वस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर संकेत किया है, किन्तु काव्य शैलियों और काव्यरूपों की समानता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारत के प्राय: सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्यशैलियों- महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परंपरा की भी अनेक शैलियाँ जैसे-चरित काव्य, प्रेमगाथा शैली, रास, पद शैली आदि प्राय: समान रूप में मिलती हैं। अनेक देशी छन्द-दोहा, चौपाई आदि भी भारतीय वाङ्मय के लोकप्रिय छन्द हैं। यही बात भाषा के विषय में भी सत्य है। यद्यपि मूलत: भारतीय भाषाएँ दो विभिन्न परिवारों- आर्य और द्रविड़ परिवारों की भाषाएँ हैं फिर भी प्राचीन काल में संस्कृत, पालि, प्राकृतों और अपभ्रंश के और आधुनिक युग में अंग्रेजी के प्रभाव के कारण रूपों और शब्दों की अनेक प्रकार की समानताएँ सहज ही लक्षित हो जाती हैं।

भारतीय भाषाओं की एकता के साथ उनके मूल्य भी एक जैसे हैं। भारतीय मूल्य समन्वय का प्रतीक है, क्योंकि उसका आधार मानवीय ही होता है। पन्त जी की कविता इस भाव को कुछ इस तरह व्यक्त करती है-

'सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।'

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भी भारतीय मूल्यों के प्रति सजग रहे हैं। उनकी दृष्टि अनूठी रही है, इसलिए उनके विचार भी निराले होते थे। उनकी एक कविता का दृष्टांत प्रस्तुत है- गीत गाने दो मुझे तो/ वेदना को रोकने को/ मर गया है जहर से संसार जैसे हार खाकर/ देखते हैं लोग लोगों को/ सही परिचय न पाकर/ बुझ गई है लौ पृथा की/ जल उठो फिर सींचने को। निराला का कवि 3मन गीत इसलिए गाना चाहता है जिससे वेदना कुछ कम हो। संसार में इतना जहर व्याप्त है कि वह मनुष्यता को निगलने के लिए बिल्कुल तैयार बैठा है। लेकिन कवि आशावादी है तभी तो वह कहता है दीपक की लौ बुझ गई फिर भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे पुन: प्रकाशित करने के लिए हमें जलना होगा। यही दृष्टि कवि को मानवतावादी के साथ विश्वमयी बनाती है।

भारतीय साहित्य हम उसे कह सकते हैं जो भारतीय एकता, भारतीय गौरव, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अस्मिता को प्रस्तुत करे। उसमें जाति भेद, भाषा भेद और कालभेद न हो। इस दृष्टि से देखें तो परतंत्र भारत के सामने एक आदर्श था, लक्ष्य था, अनुशासन और एकता के सूत्र में बँधे रहने की प्रबल आकांक्षा थी किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद ही पुरानी पीढ़ी का आदर्श छिन्न-भिन्न हो गया। जीवन में कोई अनुशासन नहीं रह गया।

भारतीय भाषाओं के आपसी संबंध को बनाए रखने की दिशा में संचार माध्यमों की भूमिका भी अहम् रही है। पत्र-पत्रिकाएँ पहले से ही यह कार्य सफलतापूर्वक निभा रही थीं। बीसवीं शती के चौथे दशक के दौरान कथाकार प्रेमचन्द ने महात्मा गांधी के 'सारी भारतीय भाषाओं के समन्वयन' के संदेश को मूर्तरूप देने के लिए के.एम.मुंशी के सहयोग से 'हंस' पत्रिका शुरू की। हंस पत्रिका में कई साल भारतीय भाषाओं की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होकर आए। आगे चलकर भाषा, वार्षिकी, अनुवाद, समकालीन भारतीय साहित्य, नया ज्ञानोदय जैसी विविध पत्रिकाएँ हिन्दी के माध्यम से भारतीय भाषाओं के साहित्य को उजागर करने का सराहनीय कार्य कर रही हैं। हिन्दी को लोकप्रिय बनाने की दिशा में हिन्दी फिल्मों और फिल्मी गीतों का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आकाश-वाणी और दूरदर्शन भी अपने विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा इस ओर प्रयत्नशील हैं। भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों पर धारावाहिक आदि बनाकर उनके संप्रेषण से भारतीय भाषाओं और हिन्दी को परस्पर जोड़ने और उनके अंतर्सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का प्रयास जनसंचार माध्यम आसानी से कर सकते हैं।

साहित्य केवल निखालिस चर्चा करना या लोगों को आनंदित करने का कार्य नहीं करता वरन् वह तो बेहतर मनुष्य बनाने की पहली या आखिरी पाठशाला है। हमारे रुचियों के परिष्कार करने में साहित्य की बड़ी भूमिका होती है। यानी बेहतर मनुष्य के निर्माण में यदि साहित्य अपनी भूमिका अदा कर सके तो नि:संदेह उसकी सार्थकता सिद्ध होती है अन्यथा समाज और राष्ट्र से कटकर कोई भी साहित्य अपनी अहमियत नहीं सिद्ध कर सकता। वह मनुष्य का है और मनुष्य के लिए ही लिखा जाना चाहिए। इस संदर्भ में प्रभाकर माचवे स्मरण आते हैं। वे कहते हैं-जो बड़े- बड़े शहरों में/गंदी लंबी गटरों में/फुटपाथों पर सोए हैं/हम उनके गाएँगे गान।

यहाँ कवि उन समाज के हाँशिए के लोगों की चिन्ता करता है जो विकास के आखिर छोर पर टकटकी लगाकर आज भी हमारा मुँह ताका करते हैं। भारतीय साहित्य भी इन्हीं सर्वहारा वर्ग के लोगों की चिंता करता है। हिन्दी और भारतीय भाषाओं में आपसदारी राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्र की अखण्डता के लिए आवश्यक और अपेक्षित अवसर प्रदान करती है। सभी भारतीय भाषाएँ आपस में समरस हों, कोई बड़ी नहीं, कोई छोटी नहीं, कोई श्रेष्ठ नहीं, कोई कमतर नहीं, यह प्रतीति प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए जरूरी है। इस विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि यह आपसदारी बढ़नी चाहिए। पहले चरण में ही यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि हमारी सोच है -निंदा नहीं-निदान, आलोचना नहीं-अनुष्ठान, आक्षेप नहीं-प्रक्षेप, बहस नहीं-उद्यम, उपालम्भ नहीं-उपक्रम, शिकायत नहीं-शिरकत। आपसारी बढ़ाने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्ययोजना को चरितार्थ करने के लिए प्रमुखतः चार क्षेत्र चिह्नित किए जा सकते हैं-व्यक्तिगत, साहित्यिक संस्थाएँ, शैक्षणिक संस्थाएँ एवं प्रांतीय और केन्द्रीय सरकार।

रामकृष्ण, शिव, अशोक, बुद्ध, महावीर, नानक, महात्मा गांधी, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविंद सिंह, महर्षि अरविंद, स्वामी विवेकानंद, ऋषि दयानंद ऐसी विभूतियाँ हैं जिन पर सभी भारतीय भाषाओं में कुछ न कुछ अवश्य लिखा गया है।

जिस प्रकार राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्र पक्षी और राष्ट्र पशु देश की एकता के प्रतीक होते हैं वैसे ही राष्ट्रभाषा भी। जो भाषा थोड़ी-बहुत सम्पूर्ण राष्ट्र में बोली और समझी जाती है वही राष्ट्रभाषा होती है। उसका प्रयोग राष्ट्र के सामान्य जन करते हैं, वह सारे देश की सम्पर्क भाषा होती है। उसके माध्यम से पूरे राष्ट्र के नागरिक आपस में बातचीत करते हैं, पत्र-व्यवहार करते हैं और सार्वदेशिक स्तर पर साहित्य-सृजन होता है। राष्ट्रभाषा विदेशी भाषा नहीं होती, देश की ही कोई भाषा होती है, वह देशवासियों को एक सूत्र में बाँधे रहती है। राष्ट्रभाषा की रक्षा देश की सीमाओं की सुरक्षा से भी अधिक आवश्यक है। प्रत्येक स्वतंत्र, स्वाभिमानी देश की अपनी राष्ट्रभाषा होती है।

स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी ही विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच संयोग-सूत्र बन गई। गांधी जी ने कहा कि हिन्दी ही देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए। हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। के. एम. मुंशी ने तो यहाँ तक कहा कि हिन्दी तो पहले से ही राष्ट्रभाषा है? उसे राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है। हिन्दी भारत की एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसमें हिन्दी-इतर क्षेत्रों में साहित्यकारों ने हिन्दी में साहित्य -सृजन किया है। हिन्दी की सार्वदेशिकता और सर्वप्रियता उसके राष्ट्रभाषा होने के प्रमाण हैं।

हिन्दी विरोधियों ने एक प्रश्न उठाया है कि हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा क्यों हो, गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल, तेलगु, आदि भी राष्ट्रभाषाएँ हों। देश की कोई भी भाषा राष्ट्र की बहुमूल्य और समादरणीय भाषा है, परन्तु तमिल, मलयालम, मराठी, उड़िया, बंगला आदि प्रदेश-विशेष की भाषाएँ हैं, हिन्दी पूरे राष्ट्र की भाषा है। हमारे नेताओं ने एक स्वर से इसी को सारे देश की सम्पर्क भाषा मानकर राष्ट्रभाषा कहा, अन्य भाषाओं को देश की अन्य भाषाएँ माना। इन्हें हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में परिगणित कर दिया गया। एक राष्ट्र में एक राष्ट्रभाषा हमारे गौरव और हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रतीक है। सार्वदेशिक, सर्वराष्ट्रीय या पूरे देश की सम्पर्क भाषा बनने या मान्य होने के लिए विद्वानों ने निम्नलिखित अर्हताएँ गिनाई हैं -

1. वह राष्ट्र में बहुसंख्यक जनता द्वारा बोली जाती हो, 2. उसका अपने क्षेत्र से बाहर भी, व्यापक विस्तार हो, 3. वह राष्ट्र की सांस्कृतिक और भाषिक विरासत की सशक्त उत्तराधिकारी हो, 4. उसकी व्याकरणिक संरचना, सरल, सुबोध और वैज्ञानिक हो, 5. उसकी शब्द सामर्थ्य तथा अभिव्यंजनात्मक क्षमता उत्तम हो, 6. उसमें जीवंतता और सजीवता हो ताकि वह नये शब्दों और प्रयोगों को आत्मसात करती हुई विकासोन्मुख रहे। 7. उसकी लिपि पूर्ण और वैज्ञानिक हो।

भारत की भाषाओं में केवल हिन्दी ऐसी भाषा है जिसमें उपर्युक्त सब गुण पाये जाते हैं। हिन्दी भारत के सबसे बड़े भू-भाग में बोली और समझी जाती है। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि की पूर्णतया उत्तराधिकारी है। विरासत में मिला, देश का सांस्कृतिक साहित्य हिन्दी ने ही प्रचारित किया है। हिन्दी अत्यन्त सरल और वैज्ञानिक भाषा है। विदेशी पर्यटक जिस भारतीय भाषा में आसानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से अपना लगाव बना लेते हैं तो वह हिन्दी से ही। हिन्दी का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है और इसमें देशी-विदेशी सब तरह के शब्दों को पचाने की अद्भुत क्षमता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का रूप कैसा रहे?-यह भी एक विवादास्पद प्रश्न बना हुआ है। कट्टर हिन्दी भक्त हिन्दी को संस्कृत गर्भित बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। दूसरी ओर प्रगतिशील विचारक हिन्दी के जन-भाषी सरल रूप को कायम रखने की माँग उठा रहे हैं। भारत की अन्य प्रधान भाषाओं में संस्कृत के शब्दों के रूप में संस्कृत-शब्दावली का प्रयोग किया जाय तो अनुचित नहीं होगा, परन्तु ऐसा करने से हिन्दी का जनभाषी रूप दुर्बोध हो जाएगा और वह जन-भाषा न रह, एक कृत्रिम भाषा का रूप धारण कर लेगी, जिससे उसका अहित ही होगा। होना यह चाहिए कि हिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी के स्वाभाविक जनवादी रूप को विकसित होने दिया जाए। भारतीय साहित्य की मूल चेतना को एक कवि की दृष्टि से कुछ इस तरह से देखा जा सकता है- जो कुछ तुमको दिया था/ वह था सिर्फ दुख का गरल। मुझको दिया तुमने, प्रियतमा फूल/ फल-छाँव-तरु मुट्ठी भर अमृत की फसल।

आज 'भारतीय'-भारतीयता और भारतीयकरण को छाया से पार विदेशीकरण-विदेशी जीवनशैली-विदेशियत भारतीय भाषाओं और भारतीय संस्कृति को निगलने पर उतारू है, यह देशवासियों के लिए गहरी चिंता का कारण बना है। इन खतरों की छाया में भारतीयता का अर्थ संवाहक हिन्दी बनी है। 'भारतीय' भावों के अंतर्संबंधों को, भारतीय भाषाओं के साहित्य को, भारतीय साहित्य नामक शब्द में परिभाषित कर भारतीयता की रक्षा में अग्रसर है। 'समकालीन भारतीय साहित्य' भारत की राजधानी दिल्ली स्थित साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित द्वैमासिक हिंदी पत्रिका है जिसमें भारतीय संविधान द्वारा स्वीकृत भाषाओं का साहित्य हिन्दी अनुवाद द्वारा प्रकाशित होता है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने ठीक ही कहा है - ''आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है जिसका एक-एक दल प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य-संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बन कर रहें। प्रांत के जनगण की हार्दिक चिंता की प्रकाशभूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य-मणि हिन्दी भारत-भारत होकर विराजती रहे।''

संपर्क : 5/सी, सेक्टर-2, विश्वविद्यालय स्टॉफ कॉलोनी, रेसीडेंसी रोड, अरोड़ा सर्कल, जोधपुर-342 011
मो. 9829696683/9407555959

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आशीष कंधवे

स्टैण्डअप हिंदी-स्टार्टअप हिंदी

भारत एक बहुभाषी देश है परन्तु राष्ट्रभाषा, राजभाषा अथवा संपर्कभाषा, हम जिसकी भी बात करें, बात हिंदी से ही शुरू होती है और हिंदी पर ही खत्म। हिंदी अपनी भाषिक विशेषता, सरलता, शाब्दिक उदारता और साहित्यिक समृद्धि के चलते भारत की भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर वैश्विक पटल पर निरंतर लोकप्रिय होती जा रही है।

दरअसल हिंदी एक ऐसी समृद्ध भाषिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना की संवाहिनी है जो न केवल भारतीयता की भावना को मजबूत करती है, अपितु भारतवर्ष को एकसूत्र में भी बाँधती है। यह बात बिल्कुल सत्य है पर क्या अब इन बड़ी-बड़ी बातों से हिंदी भाषा को बचाया जा सकता है? शायद हाँ भी और न भी। ये हाँ और न का द्वंद्व कैसा?

असल में यह द्वंद्व भारत की स्वतंत्रता के 71 वर्ष पूरे हो जाने के बाद भी हिंदी भाषा की स्थिति को स्पष्ट न करने, कोई स्पष्ट नीति नहीं बनाने और वोट की लड़ाई को बल देने के कारण जारी है।

समय बदल गया। देश बदल गया। हम गुलाम से आजाद हो गये। पर हम आजादी के मतलब को ठीक से समझ नहीं पाये। सीमाओं को मुक्त करा लेना सचमुच ऐतिहासिक था परन्तु मानसिकता को हम आज तक मुक्त नहीं करवा पाये।

हम आज भी मानसिक तौर पर पूर्ण तो नहीं कहूँगा पर आंशिक रूप से गुलाम हैं। विडंबना यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात लगभग मानसिक गुलाम लोग देश पर शासन करते रहे हैं। यहाँ मानसिक गुलामी से मेरा तात्पर्य निश्चित रूप से फिलहाल भाषाई संदर्भ में ही है।

मैकाले शिक्षा पद्धति का उद्देश्य यह जरूर रहा होगा कि भारतीयों को अधिकाधिक अंग्रेजी में शिक्षित किया जाये ताकि अँग्रेजी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शासन के प्रति वह वफादार रहे पर मैकाले शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य मेरे विचार से यह था कि भारत की भाषाओं और हिंदी में निहित समरसता, समरूपता, सम्प्रेषणता और संघर्ष करने की क्षमता को जड़ से नष्ट कर दिया जाये। पर मूल समस्या यह थी कि तब भी भारत को किसान और मजदूर ही चलाते थे और आज भी भारत को किसान मजदूर ही चलाते-बनाते हैं। तब भी भारत के किसान और मजूदर की भी भाषा हिंदी अथवा उनकी अपनी मातृभाषा थी और आज भी उनकी भाषा हिंदी या अपनी मातृभाषा ही है। तब भी भारत में मैकाले थे और आज भी मैकाले के काले मानस पुत्रों की एक समर्थ, शक्तिशाली और सत्ता को अपने हिसाब से चलाने में माहिर बहुत बड़ी फौज है। यहाँ यह कहना कि सभी अँग्रेजी समझने, जानने एवं बोलने वाले कम देशभक्त होते हैं, यह तो अतिशयोक्ति होगी लेकिन एक बात बिल्कुल साफ है कि अँग्रेजी के प्रभाव में पले बढ़े और संस्कारित लोगों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति लगाव कम रहता है और कहीं न कहीं वे उसे पिछड़ेपन से जोड़कर देखते हैं। पॉवर और पैकेज दोनों उन्हें अँग्रेजी ने ही दिया है इसलिए जाने-अनजाने में देश के इस वर्ग ने अँग्रेजी के वर्चस्व को देश में स्थापित करने, सरकारी कामकाज में हिंदी के महत्त्व को घटाने तथा रोजगार, चिकित्सा एवं तकनीक से हिंदी को लगभग समाप्त कर देने में अभूतपूर्व योगदान दिया।

ऐसा नहीं है कि मैं कोई नई बात कह रहा हूँ, जानते हम और आप दोनों हैं। पर सार्वजनिक रूप से हम मानते नहीं हैं, क्योंकि कहीं न कहीं इस चक्रव्यूह में हम लोगों ने सिर्फ प्रवेश ही नहीं किया, अपितु बुरी तरह से फंस चुके हैं। बाहर निकलने का रास्ता हममें से किसी को मालूम नहीं है, यानी हिंदी की स्थिति भी बिल्कुल वैसी ही हो गयी है जैसे महाभारत में अभिमन्यु की हो गयी थी, जो चक्रव्यूह से बाहर निकलने के लिए वीरतापूर्वक लड़ता है और अपनों के ही हाथों वीरगति को प्राप्त हो जाता है।

नहीं, नहीं, हम ऐसा नहीं होने देंगे। हम ऐसा कभी नहीं होने देंगे। हम सब मिलकर अभिमन्यु (हिंदी) को नहीं मारेंगे। देश के कृपाचार्य और द्रोणाचार्य सब अपने-अपने अस्त्रों को छुपा लेंगे। दुर्योधन और शकुनि भी उनके पीछे छुप जायेंगे और आज भीष्म मौन धारण नहीं करेंगे। पैदल सेनानियों की भाषा हिंदी अब सेनापतियों की भाषा बन जायेगी तथा शहीद होने से बच जायेगी। मजदूर किसान की भाषा हिंदी तकनीक और चिकित्सा की भाषा बन जायेगी, क्योंकि हम सब आज फिर प्रण करेंगे कि हम हिंदी (अभिमन्यु) को इस बार अपनों के हाथ शहीद नहीं होने देंगे।

बस, हम और आपको इतना करना है कि हम अपने-अपने घरों में हिंदी को नहीं मरने दें। नई पीढ़ी को अपनी अस्मिता की भाषा सिखायें और उसके गौरव को बचायें। अँग्रेजी को सम्पत्ति के रूप में सीखें पर हिंदी को विपत्ति में न डालें। देश और विश्व के किसी भी मंच पर अपनी प्रतिष्ठा और अपना परचम हम बढ़ायें-लहरायें, खूब अँग्रेजी का प्रयोग करें पर इस विनम्रता के साथ कि हिंदी हमारी मातृभाषा है, राष्ट्रभाषा है, हमारे स्वाभिमान की भाषा है, से अनजान न हों। बिना हिंदी के भारत की कल्पना बिल्कुल वैसी ही है, जैसे बिना पानी के कोई सागर। मेरा यह मानना है कि देश को आर्थिक क्रांति के साथ-साथ भाषाई क्रांति भी लानी होगी। भाषाई क्रांति चारित्रिक क्रांति के बिना संभव नहीं है और चारित्रिक क्रांति के लिए एक मानक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय शिक्षा पद्धति को अविलम्ब विकसित करने की योजना को मूर्तरूप देना अतिआवश्यक हो गया है।

आपातकाल के बाद देश में दूसरी आजादी के ध्वजावाहक लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भी यह कहा था कि ''सरकार बदलने से सिर्फ हल नहीं होगा व्यवस्था बदलें'' जी हाँ, हमने और आपने सरकार तो बदल दी है पर इस व्यवस्था को कैसे बदलेंगे? यह यक्ष-प्रश्न है, इसी के उत्तर में भारतीय भाषाओं का भविष्य, भारतीय संस्कृति की आयु और आम भारतीय का हित निहित है। ऐसी विषम परिस्थिति में, जब हम नैतिक पतन के नित्य नये मानक स्थापित करते जा रहे हैं, किसी पियूषपाणि वैद्य की आशा रखना सर्वथा अनुचित होगा। अब इस रोग का उपचार किसी एक वैद्य के बलबूते के बाहर की बात है। इसके लिए हमें दशकों सामूहिक प्रयत्न करने होंगे।

कुल मिलाकर गाँवों के इस देश की स्थिति, किसानों के इस देश की स्थिति, ग्लोबल विलेज के इस आधुनिक दौर में गाँव अपने गाँवपन को गँवा रहे हैं और किसान अपने किसानपन को छोड़ रहे हैं। इस क्रम में खान-पान, रहन-सहन, पहनावे-ओढ़ावे और भाषा-वाणी सभी बदलने जा रहे हैं। यही कारण है कि हमारे गाँव शहरी विकृतियों का आश्रयस्थल बनते जा रहे हैं। शारीरिक श्रम पर आधारित हमारी सदियों पुरानी सफल आर्थिक नीति लगभग नष्ट हो चुकी है। हर क्षेत्र में छोटे से लेकर भारी मशीनों का बोलबाला है पर भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह कोई अत्यन्त उत्साहवर्धक और प्रसन्नता की बात नहीं है। हुआ यह कि अतिशय मशीनीकरण के कारण हाथ से हुनर और शारीरिक क्षमता दोनों कमतर होते चले गये और रोजगार के अवसर भी हमारे हाथ से छिनते चले गये। हम पूरी तरह से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और मशीनों के गुलाम होकर रह गये। यहाँ यह बात बताना अति-आवश्यक है कि तकनीक अथवा रोजगार के अवसर भी हमारे हाथ से छिनते चले गये। हम पूरी तरह से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और मशीनों के गुलाम होकर रह गये। यहाँ यह बात बताना अतिआवश्यक है कि तकनीक अथवा रोजगार जहाँ से आते हैं उस स्थान/राष्ट्र से अपने साथ-साथ भाषा को भी खूब फैलाते-बढ़ाते हैं। भारत जैसे देश में जब यह भावना आम होने लगी कि अँग्रेजी की चार पंक्तियों का ज्ञान उन्हें रोजी-रोटी दिला सकती है तो फिर हम अँग्रेजी क्यों नहीं बोलें, क्यों नहीं सीखें। हल की जगह ट्रैक्टर, फावड़े की जगह जेसीबी, थ्रेशर जैसी मशीनों का आकर्षण इतना अधिक हो गया कि अब बैल, हल आदि अप्रासंगिक लगने लगे। निश्चित रूप से हल-बैल का संबंध हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं से बहुत ही गहरा है, तो क्या हिंदी भी इस देश में अब अप्रासंगिक......।

परिर्वतन सृष्टि का नियम है-हम जानते भी हैं और मानते भी हैं, पर कभी हमने सोचा भी है कि हिंदी भाषा में परिवर्तन किस प्रकार हो रहा है? इससे हमारी सरल एवं सार्थक भाषा को कितना नुकसान हो रहा है? पता है यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि हम सब हिंदी से एक निश्चित दूरी बनाये बैठे हैं और अपने-अपने हिसाब से प्रपंच रच रहे हैं, आडंबर कर रहे हैं।

यह वर्ष हिंदी के महाकुंभ का वर्ष है। हिंदी का महाकुंभ अर्थात् विश्व हिंदी सम्मेलन का वर्ष। हर चार साल में हम यह हिंदी का त्यौहार मनाते हैं। अनंत गोपाल सेवड़े, मधुकर राव, काका कालेलकर आदि ने विश्व हिंदी सम्मेलन की परिकल्पना की, जो प्रथम बार सन्

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1975 में नागपुर में देखने को मिला। जब से अब तक इस बात पर खूब चर्चा हुई और हो रही है कि हिंदी अब राष्ट्रभाषा ही नहीं अपितु विश्वभाषा भी है, जबकि इन सम्मेलनों में शामिल होने वाले लोगों एवं आयोजकों को ठीक प्रकार से पता है कि हिंदी अभी तक भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पायी है, सिर्फ राजभाषा ही है। सरकारें आयीं चली गयीं, नेता आये चले गये, पर हिंदी की स्थिति में कोई गुणात्मक सुधार कोई नहीं कर पाया। पता है, फिर भी हिंदी क्यों फूलती-फलती है और बची रहती है? क्योंकि हिंदी आशा की भाषा है, उम्मीद की भाषा है। इसमें असीम संभावनाएं हैं विश्व भाषा बनने की, पर इससे पहले यह जरूरी है कि यह भारत की राष्ट्रभाषा बने। 1975 से अब तक सम्पन्न 9 विश्व हिंदी सम्मेलन देश तथा विश्व के अन्य भागों में खूब धूमधाम से आयोजित हो चुके हैं, पर इन सम्मेलनों में पारित मन्तव्य आज तक क्रियान्वित नहीं हो पाये। आज भी हम हिंदी को राष्ट्रसंघ में पहचान नहीं दिलवा पाये, आदि-आदि।

इस वर्ष 18-20 सितम्बर, 2018 को हिंदी का महाकुंभ मॉरीशस में होने जा रहा है, हम इसका स्वागत करते हैं और इसके सफल एवं सार्थक होने की कामना भी करते हैं परन्तु और कितने वर्षों तक हम अपने ही देश में अपनी ही भाषा के लिए औपचारिकताएँ करते रहेंगे। किसी को खुश, किसी का नाराज करते रहेंगे। गुटों, विचारों, मठों, विमर्शों में बँटते और बाँटते रहेंगे। चाटुकारों और चापलूसों को सम्मान और स्वाभिमानियों एवं संस्कारियों का अपमान करते रहेंगे? जरूरत है हिंदी को महामंडलेश्वर प्रथा से मुक्ति दिलाने की, हिंदी पर राजनीति बंद करने की, हिंदी के स्वाभिमान और संस्कार को बचाने की, ताकि भविष्य का भारत अपने आर्थिक, तकनीकी, सामरिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विकास के साथ-साथ भाषायी शक्ति पर भी गर्व कर सके।

आईये, हम सब मिलकर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और प्रतिष्ठा हेतु ईमानदारी से प्रयास करें। भारत के ऊर्जावन माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की शैली में कहें तो स्टैण्डअप हिंदी-स्टार्टअप हिंदी।

संपर्क : एडी-94/डी, शालीमार बाग,
दिल्ली-110088, मो. 9811184393

यद्यपि मैं उन लोगों में से हूँ, जो चाहते हैं और जिनका विचार है कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।

-लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बी.एल. आच्छा

राष्ट्रीय और विश्वभाषा के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी

आजादी मिलते ही गाँधीजी ने कहा था - ''कृपया, दुनिया को खबर कर दें कि गाँधी अँग्रेजी भूल गया है।'' इस एक वाक्य के अर्थ की कई दिशाएँ थीं। गाँधी ने समझ लिया था कि राजनीतिक-सांस्कृतिक अखण्डता वाले बहुभाषिक-बहुसांस्कृतिक देश को मिलाने वाली एक सम्पर्क भाषा अनिवार्य है। यह भी कि विभिन्न क्षेत्रों की भारतीय भाषाएँ शिक्षा और प्रशासन में मातृभाषा को अपनाएँ, मगर राष्ट्रीय सम्पर्क के लिए हिन्दी को स्वीकार करें। यह भी कि आजादी के पहले राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व करने वाले नेताओं ने हिन्दी के लिए व्यापक सहमति दी थी और भारतीय भाषाओं के विकास के लिए प्रांतीय शासन में उनकी अनिवार्यता को महत्त्व दिया। यह भी कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाएँ ले लें। यह भी कि शिक्षण व्यवस्था के लिए मातृभाषा सहज है अत: अँग्रेजी की जटिलता से बाल-शिक्षण कुंठित न हो। या कि हिन्दी और भारतीय भाषाएँ अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के साथ विकसित हों, उनमें सहजता हो और अँग्रेजी के कृत्रिम दबाव से मुक्त हों। हिन्दी स्वराज्य की भाषा बने, कला-कौशल व्यापार और वाणिज्य का विकास मातृभाषाओं के साथ हिन्दी में हो। अपने भाषण में तिलक के पत्र का वाचन करते हुए उन्होंने कहा था- ''विदेशी जीवन का वृक्ष न हरा भरा और न पुष्ट हो सकता है, और न रक्षित रह सकता है।'' हिन्दी के स्वीकार के साथ स्वराज्य की इस ध्वनि को आम सहमति मिली। लेकिन संविधान लागू होते-होते यह सहमति पन्द्रह वर्ष के लिए लंबित हो गयी, जो आज तक भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता के बावजूद अँग्रेजी को स्थायी मुकाम किये हुए है। गाँधी ने अँग्रेजी भूलने को कहा, मगर आजादी के बाद अँग्रेजी को ज्यादा रटा जाता रहा; शिक्षा, प्रशासन और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में। यही नहीं, आज भी अँग्रेजी श्रेष्ठता के सांस्कृतिक अहम् से सभ्यता का प्रदर्शन करती है।

लेकिन जिस हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए मूर्तिमंत किया गया उसे राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्न भी कम नहीं हुए। भारतेन्दु ने तो 'निज भाषा उन्नति अहै' के माध्यम से अस्मिता, सांस्कृतिक अभिरक्षा, स्वातंत्र्य सोच, व्यापार-व्यवसाय के विकास, शिक्षण-प्रशासन का राष्ट्रीय नजरिया दिया था,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह परवर्ती साहित्य में साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रवाह बनता गया। भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों में अँग्रेजी राज के विरोध और जनकल्याण की आकांक्षाएँ अनुगूँज बनने लगी। राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा ने हिन्दी खड़ी बोली का ही परिमार्जन नहीं किया, बल्कि सांस्कृतिक विशिष्टताओं के अनुरूप पौराणिक चरित्रों की युगानुकूल उदात्तता और शक्तिमयता से पुनर्रचना की। देखा जाए तो समूचा पुनर्जागरण आन्दोलन, गांधीजी का समूचा क्रियाशील जीवन दर्शन, स्वतंत्रता संग्राम का पूरा इतिहास भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी में वैसे ही उतर आया, जैसे भक्ति का भूगोल समूचे देश की जागरण यात्रा बन गयी। राधा, यशोधरा, कैकेयी, द्रौपदी जैसे अनेक स्त्री पात्र युगानुकूल नये सन्दर्भों में रचे गये और वे नारी की सांस्कृतिक अस्मिता के उदाहरण बन गये। रोमांटिसिज्म की छाया से हिन्दी में आया छायावाद इसी देश की सांस्कृतिक चेतना और शक्तिमयता का मौलिक रूप बन गया- "शक्तिशाली हो विजयी बनो, विश्व में गूँज रहा जय गान।" 'जागो फिर एक बार' प्रकृति चैतन्य के साथ स्वातंत्र्य मंत्र बन गया। यों भी देखा जाए तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में वही चेतना मौजूद थी जो बाद में प्रगतिशील आन्दोलन में उभर कर आई। हिन्दी का प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवाद का अनुवाद नहीं है। अज्ञेय ने आँगन के पार द्वार को ही नहीं रचा, बल्कि पश्चिमी मनोविश्लेषण को उपन्यासों में कलात्मक स्पर्श दिया। रामचन्द्र शुक्ल के मनोविकारों संबंधित निबंध तो विश्व साहित्य में बेजोड़ हैं। कहानी, उपन्यास और अन्य विधाओं में न केवल प्रभूत सृजन हुआ बल्कि इस देश की सांस्कृतिक जड़ें नये यथार्थ बोध के साथ विस्तार पाती गयीं। आज आदिवासी विमर्श पर भी कितना साहित्य रचा गया है। तात्पर्य यही कि हिन्दी ने जातीय चेतना के साथ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परिवेश को मौलिक सृजन से वैश्विक बनाया। अलग बात है कि अच्छे अनुवाद के अभाव में वह विश्वस्तर पर पुरस्कृत नहीं हो पाया।

हिन्दी को पश्चिम की ऐतिहासिक चेतना के अनुरूप साहित्यिक इतिहास रचने का भी गौरव मिला। साहित्यिक कोश, इतिहास कोश, भाषाओं-बोलियों के शब्द कोश, परिभाषिक शब्द कोश निर्माण के लिए प्रयत्न साकार हुए। भारतीय आर्य भाषाओं और परम्पराओं को समझने में रामविलास शर्मा का अप्रतिम योगदान सार्थक रहा। राहुल सांकृत्यायन के घुमक्कड़शास्त्र के साथ यात्रा-साहित्य ही नहीं आया बल्कि भारतीय इतिहास की अधभूली कड़ियों को खोजने वाला साहित्य लौटकर आया। यही नहीं पत्रकारिता के कई नये रूप उभरकर आये। नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओं ने शोध और अनुसंधान की दिशा दी, प्राचीन साहित्य ऐतिहासिक सम्पदा बनी। डॉ. रघुवीर ने लगभग एक लाख शब्दों वाला शब्दकोश तैयार किया, भले ही उसकी उपयोगिता का उतना लाभ न हो पाया हो। तात्पर्य यही कि हिन्दी ने राष्ट्रभाषा और जनभाषा बनने की दिशा में मौलिक सृजन के साथ शब्दकोशीय सृजन, अनुवाद, विश्व साहित्य की धाराओं से हिन्दी साहित्य को जोड़ने का शक्तिमय यत्न किया। जो महज डेढ़ सौ साल की यात्रा है। अलबत्ता विद्वानों की शब्दावली और पाठ्यक्रम उपयोगी पुस्तकों की रचना में प्रारंभिक उत्साह के बाद ठंडापन बरतता चला गया। इस पृष्ठभूमि में ही आज हम देश की राष्ट्र भाषा और विश्व भाषा के रूप में हिन्दी की अहमियत को पहचान रहे हैं।

इस पहचान के भी कई पार्श्व हैं। हिन्दी को आरोपित करने के तथाकथित प्रयास अब जितने ठंडे हैं, उतना ही हिन्दी का विरोध भी। आज दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के चार राज्यों के केन्द्रों से सवा लाख विद्यार्थी हिन्दी शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी के सरलीकरण के साथ उसके मानक रूपों को वैज्ञानिक दृष्टि से स्वीकार किया गया। यों भी हिन्दी की सरलता और व्यावहारिक लोच को सभी स्वीकार करते हैं, क्योंकि गाँधीजी ने जिस संस्कृत और फारसी शब्दों के लदेपन से अलग हिन्दी की बोलचाल की परिकल्पना की वह पूरे देश में आम भाषा बनती गयी। हिन्दी फिल्मों और धारावाहिकों ने न केवल सांस्कृतिक संबंध प्रगाढ़ किये बल्कि विदेशों में भी वे भारत की पहचान बन गये। रामायण, महाभारत, चाणक्य जैसे धारावाहिक तो विदेशी जमीन पर भी कर्फ्यू लगवाकर जनरंजन के साथ भारतीय संस्कृति की प्राचीनता और मानवीय कुटुम्बभाव के उद्घोषक बने।

आज हिन्दी समझने वाले लोग हमारे प्रान्तों में ही नहीं, संसार के 130-135 देशों में विद्यमान हैं। सांख्यिकी बताती है कि विश्व में हिन्दी बोलने-समझने वाला समुदाय दूसरे स्थान पर है। देखा जाए तो पश्चिम का केन्द्र अब एशिया में आ गया है और भारत-चीन की अगुवाई की बात होने लगी है। चीनी भाषा यानी मंदारिन को समझने वालों की संख्या चीन तक सीमित है और उनकी चित्र-लिपि अन्य भाषा-भाषियों के लिए बेहद कठिन। ऐसे में हिन्दी का जन प्रवाह और भाषा की आसानियाँ हिन्दी को विश्वभाषा की ओर ले जाती है। आज सिलिकोन वेली ही नहीं, यूरोप के देशों में और मध्यपूर्व के देशों में भी हिन्दी भाषियों की विशाल जनसंख्या इसका प्रमाण है, जो बॉलीवुड की फिल्मों और हिन्दी धारावाहिक कार्यक्रमों से उन देशों के मूल के लोगों को भी प्रभावित करते हैं।

हिन्दी को विश्वभाषा के रूप में पहचान दिलाने के कई कारगर प्रयत्न हो सकते हैं। ये प्रयत्न सरकारी और दूतावासों के माध्यम से ही हो यह जरूरी नहीं। लोक प्रवाह में बहकर कोई भाषा जितना विस्तार करती है और स्थायी सम्पत्ति बन जाती है, उतना सरकारी निर्देशों से नहीं। इंटरनेट के तकनीकी युग में अब यह और आसान होता जा रहा है। पहली बात तो यह कि अँग्रेजी को चुनौती देने के लिए यह धारणा लोकप्रिय बनाई जाए कि भारतीय भाषाओं से हिन्दी का कोई विरोध या स्पर्धा नहीं है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि संविधान में बाईस भाषाओं की मान्यता के बावजूद अँग्रेजी बाहर होकर भी आसन जमाये हुए है और उसका प्रतिकार करने के बजाय उसकी अनिवार्यता को स्वीकार किया जा रहा है। अच्छी शिक्षा, अच्छे कॅरियर, ऊँचे जीवन स्तर और विदेशी जमीन का आकर्षण अँग्रेजी को अँग्रेजी-राज से भी ज्यादा व्यापकता दिये हुए है। जैसे अँग्रेजों ने अपने व्यापार के लिए बाबुओं की फौज खड़ी की थी, उसी तरह आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में जगह पाकर अपनी सफलता और जीवन संतुष्टि को प्रतिमान बना दिया गया है। इस कुचक्र को सभी भारतीय भाषा-भाषियों को समझना होगा क्योंकि देश अपने क्षेत्रीय भूगोल और सांस्कृतिक प्रवाह से अस्मिता पाता है तथा विकास की मौलिक संकल्पना भी उसे से आती है। मुश्किल तो यह है कि अँग्रेजी की संज्ञाएँ ही नहीं अब तो उसकी क्रियाएँ भी भारतीय भाषाओं में पसरकर मूल भाषाओं को विस्थापित कर रही हैं।

इस परिदृश्य में हिन्दी और भारतीय भाषाओं को देश और विश्व में अपनी पहचान बनाये रखने के लिए उसी तरह से जाग्रत होना पड़ेगा जैसे भक्ति आंदोलन के भूगोल ने आक्रंताओं को चुनौती दी थी। जैसे पुनर्जागरण ने पूरे देश को नया विवेक और सामाजिक रूपांतरण की चेतना दी थी। जैसे आजादी के आन्दोलन में हर भारतीय भाषा में एक ही स्वर बुलन्द होता था। जैसे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं के नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की सहमति दी थी-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहे सी. राजगोपालाचारी हों या लाला लाजपतराय, गुजरात के गाँधी हों या बंगाल के सुभाष इत्यादि। यद्यपि देश की राजनीति के कुछ अक्ष ऐसे हैं, जो व्यवहारत: साधक नहीं हो पाते।

लेकिन राजनीति से हटकर भी कारगर उपाय किये जा सकते हैं। मसलन भारतीय भाषाओं में अनेक शब्द ऐसे हैं जो मूलत: संस्कृत के हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अहिन्दी भाषी प्रान्तों में ये शब्द आज भी कायम हैं जबकि अँग्रेजी मोह में हिन्दी भाषी इन्हें खो चुके हैं। तृणमूल काँग्रेस, लोकशक्ति, नवनिर्माण वेदिका शेतकरी संघटना जैसी संज्ञाएँ अहिन्दी भाषी प्रान्तों की राजनीति का शिखर हैं, मण्डपम्, छत्रम्, निलयम्, वल्लरी जैसे शब्द अहिन्दी भाषी प्रान्तों की जबान पर हैं, पर हिन्दी को आसान बनाने के नाम पर महाविद्यालय फिर कॉलेज हो गया है हिन्दी अखबारों में और हड़ताल स्ट्राइक में बदल गयी है। अँग्रेजी के कठिन शब्द सबके लिए आसान हैं, पर प्रचलन में आए हुए हिन्दी शब्दों के स्थान पर पत्र पत्रिकाओं में अँग्रेजी शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। वास्तविक रूप से होना तो यह चाहिए कि भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय शब्दों को हिन्दी में स्वीकृति मिले और हिन्दी का शब्दकोश ब्रह्मपुत्र घाटी तथा कृष्णा-कावेरी के क्षेत्रों में जीवंत शब्दावली को समाहित करे। जब 'लव इन टोकियो' फिल्म का 'सायोनारा' हिन्दी में गूँज सकता है, तो देशीय भाषाओं की शब्दावली हिन्दी में तथा हिन्दी शब्दावली भारतीय भाषाओं की सहवर्तिनी क्यों न हो। यह अकादमिक कार्य भी है और लोकजीवनपरक भी। मसलन हिन्दी में मुहावरा है- 'खोदा पहाड़, निकली चुहिया' और गुजराती में कहते हैं- खोद्यो डूँगर ने निकल्यो ऊँदर। अब कौन सा मौजू है, जड़ों से पहचान कराता प्रयोग है। इसीलिए मराठी और गुजराती, बंगाली या उड़िया की जड़ें लोकवादी अधिक हैं।

हिन्दी को विश्वभाषा बनाने में केवल केन्द्र और हमारे दूतावास काफी नहीं हैं। उससे बड़ा माध्यम हमारी फिल्में और धारावाहिक हैं। भारत की साहित्य सम्पदा न केवल बृहत् है बल्कि कालजयी प्रासंगिकता के अनुकूल लचीली भी। रामायण, महाभारत, चाणक्य, कबीर जैसे धारावाहिकों ने देश ही नहीं विदेशों में भी सड़कों को सूनी करवा दी थी प्रदर्शन के समय, हिन्दी भाषा के साथ संस्कृति भी पहुँची। यों भी रूस में भारतीय फिल्मों की बेहद लोकप्रियता थी और आज भी हिन्दी फिल्म चीन में भी हजार करोड़ के पार जा रही हैं। यदि आधुनिक दृष्टि के साथ भारतीय साहित्य का धारावाहिकों में संदोहन किया जाए तो सास-बहू वाले धारावाहिकों से न केवल पिण्ड छूटेगा बल्कि देश-विदेश में भारतीय साहित्य की पहचान बनेगी। यह ताकत केवल प्राचीन साहित्य की नहीं बल्कि नये कथा-साहित्य की भी है। विश्व साहित्य को भी इसी तरह हिन्दी में लाकर 'आँगन के पार द्वार' को रोशन किया जा सकता है।

राजनीतिक दृष्टि से हटकर यदि बात की जाए तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जिन-जिन देशों में गये, वहाँ-वहाँ के भारतीय समुदाय ने हिन्दी में उनके भाषणों को सुना और सांस्कृतिक एकजुटता का परिचय दिया। जब विदेशों में भारत के इतने लोक-राजदूत हैं तो अमेरिकी शिक्षण संस्थानों में हिन्दी जगह बना रही है। यह स्थिति यूरोप के देशों में भी है, जहाँ भारतीय वाङ्मय के प्रति नया सोच पैदा हुआ है। आयुर्वेद को प्रकृति मित्र की तरह देखा जा रहा है। यही नहीं भारत के सांस्कृतिक पदचिह्न तो आज भी इंडोनिशिया, कंबोडिया, श्रीलंका, बांग्लादेश, थाईलैण्ड, बर्मा, चीन, नेपाल, भूटान जैसे देशों में विद्यमान हैं। इंडोनेशिया में तो सुकार्णो, सुहार्तो, मेधावाती सुकर्णोपुत्री जैसे शब्द शीर्ष राजनेताओं के नाम हैं, जबकि हिन्दी भाषी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इनके अर्थों से भी अपरिचित। इस गीली सांस्कृतिक और भाषिक जमीन के साथ उसी तरह रिश्ते बनें जैसे मॉरीशस, डच-गुयाना, सूरीनाम आदि से और शोध के माध्यम से ऐतिहासिक पहचान को सामने लाया जाए। जब सालों पहले चीन से रेशम का व्यापार करने और कराटे का प्रचलन कराने वाले कोई तमिल यह व्यापारिक रिश्ता जोड़ सकता था, तो बौद्ध धर्म की आधारभूमि में ये रिश्ते तो उगाये ही जा सकते हैं।

आज कई देशों में प्रवासी भारतीय हैं और वे भी साहित्य रचना हिन्दी में कर रहे हैं। उनकी वर्तमान पीढ़ी तो हिन्दी में पहचान बना रही है पर अगली पीढ़ी में वही हिन्दी बोलचाल और लेखन निरंतर रहेगा? इसलिए ऐसे उपाय किये जाने चाहिए, जो वहाँ पर हिन्दी भाषियों की नयी पीढ़ी में भी हिन्दी को विस्तार दें। इन भारतीयों में भी भाषागत बहुलवाद उसी तरह कायम रहे जैसे हिन्दुस्तान में बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता। इनके समुदाय विदेशी जमीन पर अधिक निकट होते हैं। सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से यह और आसान हो जाता है। इसी वर्ष अबूधाबी में दूतावास द्वारा आयोजित योग दिवस के कार्यक्रम में दो हजार लोगों ने सहभागिता की। निश्चय ही ये लोग भारतीय संस्कृति और भाषाओं के राजदूत हैं। भले ही जड़ों से थोड़ा कटा महसूस करते हों पर सांस्कृतिक संरक्षण के वे राजदूत तो हो ही सकते हैं।

भारत के विश्वविद्यालयों में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शोधकार्य होते हैं, पर विज्ञान के विषयों में अँग्रेजी का ही प्रभुत्व होता है। अब अकादमिक तौर पर वह समय आ गया है, जब उपसर्ग-प्रत्ययों से हिन्दी को पारिभाषिक बनाने के बजाय लोकप्रचलन के निकट की शब्दावली को चुना जाए। प्रादेशिक भाषाओं ने यह काम किया है। विश्वविद्यालयों में भी विज्ञान और हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं के सहकार से ऐसी लोक प्रचलित शब्दावली को निर्मित किया जाए जिसमें विज्ञान, वाणिज्य या तकनीकी शब्दावली की जरूरत है, जो सामान्यजन की करीबी हो। यहाँ तक कि हिन्दी के संस्कारों से गढ़े गये अँग्रेजी और भारतीय भाषाओं की शब्दावली का निर्माण किया जाए। अभी सवाल परिनिष्ठित हिन्दी का नहीं राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आसान पहुँच के साथ हिन्दी को लोकप्रिय बनाने का है। व्यापार में यह हिन्दी ढलकर आए या हिन्दी सिनेमा के लोकप्रिय गीतों-नृत्यों के माध्यम से, पर वह लोगों की थिरकन बने। यह भी कि सूचना क्रांति में भारतीय युवाओं का जो दबदबा है, उन्हें भारतीय भाषाओं और हिन्दी के अनुकूल सॉफ्टवेयर बनाने के लिए प्रेरित किया जाए। यह भी कि भारतीय भाषाओं की लिपियाँ सुरक्षित रहे पर उनका लिप्यंतरण आसान होते-होते देवनागरी की सम्पत्ति बनती चली जाए। यदि ये तकनीकी प्रयास हों तो सार्क के देशों में भारतीय संस्कृति और संस्कृत शब्दावली की जड़ें हैं, वे देवनागरी को सार्कलिपि तक ले जा सकती है। दरअसल चुनावों में हमने देखा है कि सभी प्रान्तों में अहिन्दी भाषी नेता भी दूरदर्शन पर हिन्दी में खासी बहस और प्रचार करते हैं, तब कहीं नहीं लगता कि हिन्दी जनता से दूर है और 1947 के पहले की सी सहमति उनकी जबानों पर हिन्दी में छा जाती है। हिन्दी को फिर पुनर्जागरण के साथ जनभाषा बनाने के लिए संकल्पित होना पड़ेगा। इसी से हिन्दी के साथ भारतीय भाषाओं का सहकार अँग्रेजी के वर्चस्व को सीमित करेगा।

संपर्क : 36, क्लीमेन्स रोड, सरवना स्टोर्स के पीछे,
पुरुषवाकम्, चेन्नई (तमिलनाडु) पिन-600 007
मो. 4250-83335

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. प्रकाश बरतूनिया

हिन्दी भारत भाल मनोहर बिन्दी

भाषा किसी भी देश की संस्कृति की धारक और संवाहक होती है। हिन्दी के विषय में भारत के संविधान के अनुच्छेद सं. ३५१ में लिखित है कि ''संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।'' भाषा का संबंध देश की अस्मिता से जुड़ा है। इस नाते हिन्दी भारत की अस्मिता का प्रतीक है। भारत की नदियों में जिस प्रकार गंगा का स्थान है उसी प्रकार भारत की भाषाओं में हिन्दी का स्थान कहा जा सकता है। यद्यपि भारत की संस्कृत और तमिल भाषा की गणना विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में की जाती है। इन दोनों भाषाओं के विश्व की ६ शास्त्रीय भाषाओं में सम्मिलित होने का गौरव भी भारत को प्राप्त है। किन्तु हिन्दी का प्रवाह इतना तेज है कि यह न केवल भारत बल्कि विश्व के अनेक क्षेत्रों तक पहुँच गया है। हो भी क्यों न हो, इस धारा को आरंभ करने का सद्कार्य मध्यकाल के पूज्य संत-महात्माओं ने जो किया है। इनमें हिन्दी के साथ अहिन्दी भाषी संतों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। संत नानक, तुकाराम, एकनाथ, नामदेव, नरसिंह मेहता ने अपनी वाणी, उपदेश दोहे, अभंग आदि में हिन्दी का खुलकर प्रयोग किया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पॉल, लाला लाजपत राय, सुभाषचंद्र बोस, महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे महापुरुषों ने अपने कार्य एवं संदेशों में हिन्दी को ही प्राथमिकता दी। हिन्दी को राजभाषा बनाने में भी महात्मा गाँधी जैसे अहिन्दी भाषी का योगदान उल्लेखनीय है। वर्तमान में हिन्दी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्कभाषा, जनभाषा, लोकप्रिय भाषा और प्रमुख भाषा है। यह देश के बहुत बड़े वर्ग की मातृभाषा और शिक्षा के माध्यम की भी भाषा है। हिन्दी की विकास यात्रा इस प्रकार हैं:-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी की विकास यात्रा

स्वंतत्रता पूर्व- गुजराती के महान कवि श्री नर्मद (१८३३-१८८६) ने इसे राष्ट्रभाषा बनाने का विचार रखा। -सन १८७२ आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती कोलकाता में केशवचन्द्र सेन से मिले तो उन्होंने स्वामी जी को यह सलाह दे डाली कि आप संस्कृत छोड़कर हिन्दी बोलना आरंभ कर दें। -१८७३ महेन्द्र भट्टाचार्य द्वारा हिन्दी में पदार्थ विज्ञान की रचना। -१८७७ श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा उपन्यास 'भाग्यवती' की रचना। -१८१८ लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस अध्यक्ष रहते घोषित किया कि हिन्दी राजभाषा होगी। -१९३० का दशक शैलेन्द्र मेहता द्वारा हिन्दी टाइपराइटर का विकास।

वर्तमान में - एक अनुमान के अनुसार दुनिया में ८० करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं। -भारत के अतिरिक्त ४० से अधिक देशों के ६०० से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। -चीन के ९, जर्मनी के ७, ब्रिटेन के ४, अमेरिका के ५, कनाड़ा के ३, और रूस, इटली, फ्रांस तथा जापान के २-२ विश्वविद्यालयों सहित करीब १५० विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में हिन्दी शामिल हैं। -विश्व में क्रिकेट के ९७ करोड़ दर्शकों में ५६ करोड़ हिन्दी भाषी है। दर्शकों की संख्या के अनुसार अंग्रेजी चौथे क्रम पर है।

हिन्दी की विशषताएँ :

१. हिन्दी का स्रोत लगभग १५०० वर्ष पुराना है। इसका संस्कृत से बहुत घनिष्ठ संबंध है।

२. हिन्दी की लगभग ६० बोलियाँ है। इसका स्वरूप अन्य भारतीय भाषारूपी मनकों से बनी सुन्दर माला की भांति है।

३. हिन्दी भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक अंतरधाराओं का स्त्रोत है।

४. भारत के अतिरिक्त विश्व में लगभग ढाई करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग रहते हैं जो कि विश्व की जनसंख्या का लगभग १.८५ प्रतिशत है। इनमें अधिकांश हिन्दी का उपयोग करते हैं।

५. हिन्दी लिखने के प्रयोग में लाई जानेवाली देवनागरी लिपि विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि बताई गयी है।

६. हिन्दी के तद्‌भव शब्द इसे लोक भाषा का पुट देकर अधिक सरल बनाते हैं।

७. हिन्दी में अन्य भाषाओं के अनेक शब्द सम्मिलित होने से यह अन्य भाषा-भाषियों के लिए पढ़ने, सीखने, बोलने और समझने में सरल है। यही कारण है कि यह भारत के सभी भाषा-भाषियों से आसानी से जुड़ जाती है।

८. हिन्दी बोलचाल और संपर्क भाषा के रूप में भारत की स्वभाविक भाषा बनकर उभरी है।

९. हिन्दी मान-सम्मान की भाषा है। इसमें नाम के आगे-पीछे अनेक आदरसूचक शब्द लिखने की परम्परा है। सम्मान देने हेतु हिन्दी में बहुवचन का प्रयोग किया जाता है।

१०. हिन्दी में शिष्टाचार बरतने की अधिक परम्परा है। इसमें वार्तालाप में स्वयं को तुच्छ और सामने वाले को महत्त्वपूर्ण बताने का चलन है।

११. हिन्दी की भांति भारत के संविधान की ८वीं अनुसूची में सम्मिलित २२ भारतीय भाषाओं को भी राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

भारत में हिन्दी- भारत के लगभग ३३ प्रतिशत राज्य हिन्दी भाषी राज्य हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, झारखंड, उत्तराखंड, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, केन्द्रीय शासित प्रदेश अन्डमान निकोबार हिन्दी भाषी राज्य कहलाते हैं। यहौ के निवासियों की मातृभाषा हिन्दी मानी जाती है। महराष्ट्र गुजरात, पंजाब और केन्द्रीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शासित प्रदेश चंडीगढ़ के अहिन्दीभाषी राज्य होते हुए भी यहाँ के निवासी हिन्दी अच्छी तरह से बोलने-समझने और पढ़ने में सक्षम हैं। इनके अतिरिक्त जम्मू काश्मीर, पश्चिम बंगाल, आसाम, गोवा, उड़ीसा, दक्षिण के चारों राज्यों के निवासी भी हिन्दी समझते-बोलते हैं। यही स्थिति लगभग उत्तर पूर्वी राज्यों की भी है। अरुणाचल प्रदेश तो हिन्दी का गढ़ बन गया है। राज्य में ९० प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते हैं। दक्षिण में दक्षिण भारत प्रचार सभा के प्रयासों से लगभग दो लाख तमिलभाषी विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिन्दी की परीक्षा में भाग लेते हैं।

विदेश में हिन्दी – भारत के अतिरिक्त विदेशों में नेपाल, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, खाड़ी के देशों में भी हिन्दी का प्रयोग होता है। विश्व के सभी भारतवंशी देश मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद एवं टोबेगो, गुआना में भी हिन्दी बोली-समझी जाती है। भारतीय पर्यटकों के थाइलैंड, सिंगापुर, हांगकांग, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों में जाने-आने के कारण यहाँ भी हिन्दी भाषा का प्रयोग होता है। आस्ट्रेलिया, कनाड़ा, इंग्लैंड, दक्षिण अफ्रीका में भी हिन्दी और पंजाबी भाषा का प्रयोग बढ़ रहा है।

हिन्दी साहित्य जगत- विश्व साहित्य में हिन्दी साहित्य का एक विशेष स्थान है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में अनेक ख्यातिनाम साहित्यकार हुए हैं। इनमें चन्दबरदाई, जगपति, विद्यापति, अमीर खुसरो, तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास, रहीम, मीराबाई, मलिक मोहम्मद जायसी, बिहारी, केशव, भूषण, पद्माकर, घनानंद, आलम, भारतेन्दु हरिशचन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंथ, महादेवी वर्मा, मुंशी प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, भगवती चरण वर्मा, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री, रांगेयराघव के नाम प्रमुख हैं।

विदेशों में भी हिन्दी साहित्य बहुत लोकप्रिय है। विदेशी हिन्दी साहित्यकारों में चेक गणराज्य के आंदोलन स्मेकल, रूस के अलेक्सई बरान्निकोव, डॉ. चेलीशेव, सेक्सान्द्र सेंकेविच, इंग्लैंड के आर.एस. मैकग्रेगर, जर्मनी के लोठार लुत्से, पोलैंड के प्रो. मारिया बृस्की, कनाड़ा की कैथरीन जी हेन्सन के नाम प्रमुख हैं। इनके अतिरित रामकथा के मनीषी फादर कामिल बुल्के एवं हिन्दी नाटकों के लिए जापान के तामिया मिजोकोमी भी बहुत प्रसिद्ध है। भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यकारों का भी विश्व में उच्च स्थान है। नोबल पुरस्कार प्राप्त बंगला भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर का तथा संस्कृत के महाकवि कालिदास का विश्व साहित्य में अद्वितीय योगदान है।

हिन्दी फिल्म, गाने एवं टेलीविजन – भारत में हिन्दी फिल्में और हिन्दी फिल्मी गाने, जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय है। इन्हें सभी भाषा-भाषी देखते, सुनते और गाते-गुनगुनाते हैं। भारत में प्रतिवर्ष लगभग हजार फिल्में बनती हैं जिनमें हिन्दी फिल्मों की संख्या बहुत अधिक है। हिन्दी फिल्में पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, श्रीलंका तथा खाड़ी के देशों में भी पसंद की जाती हैं। इनके अतिरिक्त रूस, यूरोपीय देशों, अमेरिका, कनाड़ा तथा आस्ट्रेलिया में भी हिन्दी फिल्मों का बाजार है। यही स्थिति भारतीय टेलीविजन की भी है। हिन्दी के धारावाहिक, समाचार चेनल और अन्य कार्यक्रम अपनी लोकप्रियता के कारण भारत के अतिरिक्त आस-पास के देशों साहित अनेक देशों में देखे जाते हैं।

हिन्दी आम आदमी की प्रिय भाषा है- भारत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में और विदेशों में हिन्दी के प्रयोग का सर्वाधिक श्रेय भारत के आम आदमी को जाता है। सार्वजनिक स्थलों, भारतीय सवारी रेल गाड़ियों, तीर्थ स्थलों, मेलों, महाकुंभों, राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय स्तर की खेल कूद प्रतियोगिताओं एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने वाले विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच हिन्दी स्वत: ही सबकी भाषा का माध्यम बन जाती हैं। भारतीय समाज में कुली, दूधवाले, ब्रेडवाले, रद्दी वाले, सब्जी वाले, आटो वाले, रिक्शे वाले, वाहन चालक, छोटे मैकेनिक, छोटे व्यापारी, पर्यटन स्थलों के कारोबारी आदि हिन्दी का प्रयोग करने एवं इसे बढ़ाने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपना योगदान देते हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषा देशवासियों के विचारों के आदान-प्रदान के रूप में कार्य कर सभी को एक सूत्र में बाँधते हुए देश की एकता एवं अखण्डता को सुदृढ़ बनाने में अपनी भूमिका निभाती है।

उपरोक्त दर्शायी गई बिन्दुओं के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य और भी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं इनमें राजभाषा के रूप में कार्यालयीन हिन्दी एवं हिन्दी अनुवाद का क्षेत्र भी बहुत व्यापक हैं। इनके अतिरिक्त प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया सहित अनेक कंपनियों के उत्पादनों के प्रयोग के विवरण तथा विज्ञापन में भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। भारत की क्षेत्रीय भाषाओं की फिल्मों के हिन्दी रूपातरंण का बाजार भी बहुत बड़ा है।

उच्च शिक्षा में हिन्दी- उच्च शिक्षा में हिन्दी का निरंतर विस्तार होता जा रहा है। विश्व के लगभग १५० विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। विदेशों में भारत की क्षेत्रीय भाषा संस्कृत, मराठी, गुजराती, पंजाबी की पढ़ाई की भी व्यवस्था है। पाकिस्तान में हिन्दी में एम.फिल. आरंभ हो गई है। भारत में अटल बिहारी हिन्दी विश्वविद्यालय भोपाल, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास कर रहे हैं। किन्तु अभी भी प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, प्रबंधन, विधि विज्ञान, यांत्रिकी क्षेत्रों में हिन्दी माध्यम की शिक्षा हेतु बहुत कुछ किया जाना शेष है। इन क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए हिन्दी के मौलिक लेखन एवं अनुवाद क्षेत्र में अत्याधिक कठिन परिश्रम किया जाना अपेक्षित है।

स्कूल शिक्षा में हिन्दी माध्यम - भारत में हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती स्कूल शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के माध्यम की है। शहरी क्षेत्रों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। एक शैक्षिक सर्वेक्षण में बताया गया था कि वर्ष २००३ और २००६ के मध्य मात्र तीन वर्षों में भारतीय भाषा माध्यम के विद्यार्थी २४ प्रतिशत बढ़े जबकि अंग्रेजी माध्यम में यह वृद्धि थी ७४ प्रतिशत। जबकि मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने के पक्ष में अनेक तर्क, तथ्य, उदाहरण एवं वैज्ञानिक शोध विद्यमान है। शिशु के सीखने की प्रक्रिया, समझ का विकास एवं ज्ञानार्जन की क्षमता के अनुसार मातृभाषा में शिक्षा दिया जाना श्रेष्ठ है। पिछले ४० वर्षों में १०० से अधिक शोध यह बताते हैं कि मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने पर ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है।

भारत में अनेक आयोग, समितियों आदि ने भी मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने की अनुशंसा की है। विज्ञान कहता है कि हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी की पढ़ाई दिमाग के दाएं-बाएं दोनों हिस्सों को सक्रिय बनाती है जबकि अंग्रेजी भाषा की रोमन लिपि को एक ही दिशा में पढ़ने के कारण सिर्फ दिमाग का बाया हिस्सा ही सक्रिय होता है। स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगदीश चन्द्र बसु, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डब्ल्यू.वी.यीट्स, रायवर्न, ब्रेल्सफोर्ड एवं अन्य विद्वानों एवं महापुरुषों ने मातृभाषा में शिक्षा के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माध्यम को स्वीकारा हैं। हमारे सामने फ्रांस, रूस, चीन, जापान, जर्मनी, स्पेन, नीदरलैंड, चेक गणराज, डेनमार्क, पोलैंड, स्वीट्जरलैंड जैसे अनेक देशों के उदाहरण विद्यमान हैं जिन्होंने अपने-अपने देश की भाषा के माध्यम से देश का विकास किया हैं।

एक अध्ययन के अनुसार प्राथमिक शाला की कक्षा एक से चार तक सबसे अधिक ड्राप आऊट रेट (बीच में स्कूल छोड़ने की दर) भी ४.८ प्रतिशत हैं। चिन्ता का विषय है। होना तो यह चाहिए कि ग्रामीण एवं कस्बाई क्षेत्रों प्रारंभिक कक्षाओं की बोलियों में शिक्षा की शुरुआत की जाएँ ताकि बच्चों का अपनी परिचित भाषा की पढ़ाई में अपनापन अनुभव हो और वे शिक्षा के प्रति आकर्षित हो सके। बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा में ज्ञान प्रदान कर ज्ञानवान बनाया जाना प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए न कि अंग्रेजी भाषा के कारण उन्हें रटन्तू तोता बनाया जाना। भारत में हिन्दी भाषा की स्थिति सुदृढ़ होगी तो विश्व में उसका प्रभाव एवं प्रयोग बढ़ेगा। हिन्दी भाषा के माध्यम की पढ़ाई के क्षेत्र में देशभर में सरस्वती शिशु मंदिर पाठ्यशालाओं का सराहनीय योगदान है। देश के बुद्धिजीवी, शिक्षाविद, साहित्यकार, हिन्दी अनुरागी, हिन्दी प्रचार के कार्य में लगी हुई स्वैच्छिक संस्थाओं के पदाधिकारी, हिन्दी के अध्येता और विद्वानों को अपने परिजनों को हिन्दी या मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दिलवाकर देश के समक्ष आदर्श उपस्थित करना चाहिए। केवल उपदेश, भाषण, सुझाव, प्रस्ताव, सम्मेलनों, संगोष्ठियों से काम नहीं चलेगा। यद्यपि यह सब भी हिन्दी के प्रति तत्कालिक सकारात्मक वातावरण पैदा करने सहित आपसी संपर्क, आवाजाही और गतिविधियाँ अवश्य बढ़ाते हैं। किंतु हिन्दी माध्यम की शिक्षा के बिना यह कार्य वृक्ष की जड़ों को सूखते हुए देखते रहकर केवल तनों, शाखाओं, फूल और पत्तियों पर पानी छिड़कने जैसा ही होगा। कहीं ऐसा न हो की आने वाले समय में हिन्दी की स्थिति भी संस्कृत की भांति हो जाए। जिस प्रकार संस्कृत भाषा में संस्कृति एवं ज्ञान का अकूत भंडार होने तथा विश्व की प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ भाषाओं में से एक होने पर भी यह केवल कर्म कांड की भाषा होने तक सीमित हो गई। उसी प्रकार हिन्दी भविष्य में मात्र सम्मेलनों, संगोष्ठियों, पुरस्कारों, सम्मानों, अकादमियों तक सीमित न रह जाये। हिन्दी माध्यम की शिक्षा दिये बिना हिन्दी को अधिक समय तक जीवित रखा जाना असंभव कार्य होगा। कम से कम हिन्दी भाषी राज्यों में तो हिन्दी माध्यम की शिक्षा को प्राथमिकता दिया जाना अत्यंत आवश्यक हैं। इसका आशय अंग्रेजी भाषा का विरोध या पढ़ाई बंद किया जाना बिलकुल नहीं है। अंग्रेजी भी एक अच्छी एवं प्रभावी भाषा है तथा अंग्रेजी भाषा को पढ़ना, सीखना, समझना और उस पर अधिकार रखना भी अच्छा है। किन्तु हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी को लाया जाना या हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं की कीमत पर अंग्रेजी माध्यम की पढ़ाई राष्ट्रहित एवं भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने तथा देशवासियों को शिक्षित बनाने के लक्ष्य की प्राप्ति को बाधित करेगी। यदि हिन्दी को विश्व भाषा बनाना है और भारत को एक विकसित, सक्षम एवं सुदृढ़ राष्ट्र बनाना है तो सब मिलकर यह संकल्प लें कि हम अपने परिजनों को हिन्दी या मातृभाषा में शिक्षा दिलवाने का कार्य कर भारत की नई एवं युवा पीड़ी को हिन्दी की ओर प्रेरित करेंगे। हिन्दी से अन्य अपेक्षाओं की पूर्ति स्वतः ही पूरी होना निश्चित है।

संपर्क : २७, अमलतास, फेस-३, चूना भट्टी,
कोलार रोड, भोपाल-४६२०१६
मो. ९४२५३१५८७२

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैलाशचन्द्र पन्त

विश्व हिन्दी सम्मेलनों में अंतर्निहित व्यापक दृष्टि

विश्व भर में बस गए भारतीयों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे भारतवंशी है जो गिरमिटिया बना कर ले जाये गए थे और दूसरा समूह उन लोगों का है जो नौकरी या व्यापार की दृष्टि से उन देशों में स्थायी रूप से बस गए थे। इनमें से पहला समूह डेढ़-दो सौ वर्ष बाद भी भारत से भावनात्मक रिश्ता रखता है। दूसरे समूह के लोगों ने वहाँ रहकर अनुभव किया कि भारत की संस्कृति, सभ्यता और परम्परा विदेशों की अपेक्षा बेहतर है। उनके दिलों का दर्द यह है कि भारत में स्वाधीनता के बाद भी संपन्नता, सुशासन और स्वाधीन चेतना विकसित क्यों नहीं हुई। उनकी चिन्ता उचित है। भारत के प्रबुद्ध नागरिक भी राष्ट्रीय चरित्र की गिरावट, अलगाववाद और भ्रष्टाचार के उभार से चिन्तित हैं। इसका अर्थ यह है कि विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों की चिन्ता भी वही है जो इस देश में रहने वाले भारतीयों की है। फर्क केवल इतना है कि भारत की विकसित होती अर्थव्यवस्था से वे आश्वस्त होते जा रहे हैं और उसमें अपना भरसक योगदान देने को आतुर हैं। हम लोगों के मन में शंका भी है और सन्देह भी। हमारी मूल चिन्ता उस पाश्चात्य प्रादर्श (मॉडल) को लेकर है जो भारत की आर्थिक प्रगति का आधार माना जा रहा है। हमारी आशंका यह है कि पाश्चात्य अर्थव्यवस्था भारतीय जीवन मूल्यों को ही कहीं विलोपित न कर दे। लेकिन हमें भारतीय स्वभाव के समन्वयवादी गुण का भी परिचय है। हम जानते हैं कि इस देश की प्रकृति के विरुद्ध जाने वाली किसी भी जीवन-शैली को भारतीय जन-मानस स्वीकार नहीं करता। किसी भी जनतंत्र में जनमत का दबाव कोई भी सरकार नहीं झेल पाएगी।

लेकिन इस समय हम उन दो समूहों की उस सामूहिक भावना की ही चर्चा करेंगे। मजबूरी में और जोर-जबरदस्ती से ले जाए गए गिरमिटिया भारतवंशी काफी वर्षों तक अलग-थलग पड़े रहे। लेकिन पिछले कुछ दशकों से प्रवासी भारतीयों की बढ़ती हुई संख्या ने उन्हें अपने मूल की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओर-जड़ों से जुड़ने की लालसा पैदा कर दी। प्रवासी भारतीयों को भारतवंशी लोगों के पुरुषार्थ को देखकर भारत की वैश्विक हैसियत का अन्दाजा हुआ। इनके आपस में जुड़ने का सूत्र एक भाषा हो सकती थी। भारतीयों के लिये वह भाषा हिन्दी ही थी। इसीलिये हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भारतवंशियों के प्रयास को भुलाया नहीं जा सकता।

भारत की विदेश-नीति के नियामकों को बहुत वर्षों बाद भातवंशियों के प्रभाव का महत्त्व समझ में आया। यह संख्या साधारण नहीं है और ये सारे लोग, एक प्रकार से भारत के सांस्कृतिक दूत हैं। इनका सकारात्मक उपयोग करने के लिये अशासकीय प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन के रूप में सामने आया। पर उसका सीमित प्रभाव रहा। मुख्यत: वह राम-कथा पर बौद्धिक विमर्श तक सीमित रहा। इसके पूर्व श्रीमती कमला रत्नम ने उत्तर-पूर्व एशिया से भारत के प्राचीन सांस्कृतिक संबंधों पर कार्य किया था। उनके पति उन देशों में राजदूत रहे थे। लेकिन हिन्दी के माध्यम से भारतीय समुदाय को एक छाते में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य पहली बार सन् १९७५ में नागपुर के प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में विधिवत प्रारंभ हुआ। इस कल्पना के पीछे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अध्यक्ष मधुकर राव चौधरी, श्री सिद्धेश्वरप्रसाद, श्री अनंतगोपाल शेवड़े थे। बाबू गंगाप्रसाद सिंह सूत्रधार की भूमिका निभा रहे थे। इन चार व्यक्तियों के प्रयासों से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का पूरा समर्थन आयोजन को मिला। उस समय शायद ही किसी ने कल्पना की होगी कि नागपुर का वह सम्मेलन भविष्य में वृहत्तर भारत का ढाँचा खड़ा करने वाला सिद्ध होगा। इस सम्मेलन का उद्घाटन इन्दिराजी ने किया था और अटलबिहारी वाजपेयी जैसे विपक्षी नेता भी शामिल हुए। हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों के साथ भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने इसे ज्यादा अर्थवान बनाया। तभी से यह एक नियमित आयोजन बन गया है। अब भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा इसका हर तीन वर्ष में आयोजन होता है। अब तक भारत, मॉरीशस, त्रिनिदाद, लन्दन, न्यूयार्क, द. अफ्रीका, सूरीनाम में सफल विश्व हिन्दी सम्मेलन हो चुके हैं।

प्रारंभिक लक्ष्यों में हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता दिलाना, वर्धा में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्व विद्यालय की स्थापना करना और अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सचिवालय बनाना था। अन्तिम दो लक्ष्यों को हासिल कर लिया गया है। मान्यता प्राप्त करने का प्रथम महत्त्वपूर्ण लक्ष्य अभी प्राप्त करना है। विभिन्न देशों में आयोजित होने वाले हिन्दी सम्मेलनों से विश्व जनमत हिन्दी के पक्ष में बनता जा रहा है। अब इस लक्ष्य को हासिल करने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। ये तीनों बातें प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में घोषित रूप से कही गईं थीं। आधिकारिक प्रस्ताव पारित किये गये थे। लेकिन सम्मेलनों की निरन्तरता से विश्व भर में फैले भारतीय समुदाय में जो एकता स्थापित हुई उससे विदेशों में भारतीय हितों के संरक्षण के लिये एक संगठित समूह भी बन गया है। इस समूह के बीच पारस्परिकता बढ़ती जा रही है और परस्पर संवाद द्वारा एक-दूसरे तक भारत विषयक जानकारी भी पहुँच रही है। प्रवासी लेखकों की रचनाओं को एक व्यापक पाठक समुदाय भी उपलब्ध हो रहा है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात इन देशों के और भारत के बीच लेखकों की गोष्ठियाँ और सम्मेलन हो रहे हैं। यदि हम बारीकी से इन गतिविधियों को समझने का प्रयास करेंगे तो समझ में आ जायगा कि वृहत्तर भारत नया आकार ग्रहण कर रहा है।

हिन्दी भाषा को यह सौभाग्य मिल रहा है कि वृहत्तर भारत के नवोदय का सूत्र वह बन सकी है। भाषा के माध्यम से संस्कृति भी- उसका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष एक साथ। विदेशों में अपनी अनुगूँज उत्पन्न कर रही है। भारत के लोगों को विश्व हिन्दी सम्मेलनों को इसी दृष्टि से देखना होगा। यह समझना जरूरी है कि इन सम्मेलनों की शृंखला से वैश्विक भारतीय समुदाय भारत के साथ अपने आत्मीय रिश्तों को समझने में सफल हुआ है। इसके अतिरिक्त वह भारतीय कूटनीति के पूरक का काम भी कर रहा है। इन सम्मेलनों के माध्यम से हिन्दी भाषा के कमजोर पक्षों की प्रतिपूर्ति भी हो रही है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को हिन्दी में प्रस्तुति के प्रयास तेज हो गए हैं। हिन्दी के शब्द दुनिया भर के शब्द कोशों में स्थान पा रहे हैं। बैंक ऑफबड़ौदा जैसे संस्थान विदेशों में जब दस जनवरी को विश्व हिन्दी दिवस का आयोजन करते हैं तो एक बड़ा सन्देश जाता है। कुछ लोगों को भ्रम है कि यह साहित्य सम्मेलन है। जो साहित्यकार हैं वे निश्चित ही हिन्दी को विकसित और उन्नत देखना चाहते हैं और सम्मेलन में उनकी उपस्थिति विदेशों में बसे भारतवंशियों को प्रेरणा तथा शक्ति देती है। लेकिन जो ज्ञान विषयों में हिन्दी लिख रहे हैं उनके महत्त्व को कम आँकने की गलती नहीं करनी चाहिये। हिन्दी भाषा के एक बड़े अभाव की पूर्ति उनके द्वारा हो रही है। इसलिये विश्व हिन्दी सम्मेलन में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। सभी प्रकार के लेखकों का परस्पर संवाद और विमर्श नई प्रेरणा और नई दिशा देता है। भारत के व्यापक हित में विश्व हिन्दी सम्मेलनों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उसमें निहित उद्देश्यों को पहचानना ज्यादा उपयोगी होगा।

वैश्विक स्तर पर हिन्दी की पहचान बन रही है और इसे बनते देखने का हमारी पीढ़ी को सौभाग्य मिल रहा है यही क्या कम है। जिन पूर्वज साहित्यकारों ने हिन्दी के लिये जो स्वप्न देखे थे उन्हें साकार करने में हमारा क्या योगदान हो सकता है इस पर विचार करना ही हिन्दी भाषियों का कर्त्तव्य है। हिन्दी को लेकर देश में जो विवाद खड़े करने की कोशिश की जाती है उन्हें भी ये सम्मेलन सन्देश दे रहे हैं। विदेशों में बसे भारतीय विभिन्न भाषा-भाषी हैं। लेकिन अपने ही बंधु-बांधवों के साथ रिश्तों को प्रगाढ़ करने के लिये हिन्दी को स्वीकार कर चुके हैं। वे सही अर्थों में हिन्दी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव को बढ़ाने में साथ खड़े हैं। क्या यह सन्देश भारत के हिन्दीतर प्रदेशों तक पहुँचाने की कोशिश नहीं की जानी चाहिये? इसके उत्तर में ही निहित है, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता का समाधान। विश्व हिन्दी सम्मेलन के औचित्य को आँकने का यह भी एक पैमाना है।

हमें अपने समय के महान कवि जयशंकर प्रसाद इन पंक्तियों को याद करना चाहिये-

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फिर फैला आलोक।
व्योम-तम-पुंज तब हुआ नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक!

इन पंक्तियों के प्रत्येक शब्द में हिन्दी के दायित्व का संकेत अन्तर्निहित है।

संपर्क: ए-३, सागर केम्पस, चूनाभट्टी,
भोपाल-४६२०१६
मो. ९८२६०४६७९२

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. आर. रत्नेश

विश्व हिन्दी सम्मेलन : पुनरावलोकन

सन् १९१७ में भरूच (गुजरात) में चर्चा करते हुये महात्मा गाँधी ने कहा था कि देश में राष्ट्र भाषा के रूप में देश में अवसर था जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देश में स्वीकृति की बात उठी थी, इसके पश्चात् इस दिशा में कोई विशेष हलचल नहीं दिखती। १४ सितंबर, १९४९ को संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में एकमत से स्वीकार कर लिया, किन्तु एक वर्ष तक इस पर विचार-विमर्श होता रहा और अन्ततः १९५० में संविधान के अनुच्छेद ३४३(१) के द्वारा इसे राजभाषा का पद प्राप्त हुआ। अनुच्छेद ३४३ से लेकर ३५१ तक राजभाषा सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान किये गये। राजभाषा प्रचार समिति वर्धा के अनुरोध पर १९५३ से १४ सितंबर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है, परन्तु यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है कि गाँधीजी की संकल्पना के अनुसार सरकारों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने की सहमति प्रदान नहीं की है। दसवें विश्व हिन्दी सम्मेलन, भोपाल के समापन अवसर पर भारत के गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने अन्तर्राष्ट्रीय संघ में हिन्दी के वर्चस्व की स्थापना की चर्चा तो की, किन्तु यह विचारणीय है कि जब भारत सरकार ही इसे राष्ट्रभाषा मानने को तैयार नहीं है तो राष्ट्रसंघ में इस की अभिस्वीकृति के लिये अकल्पनीय पापड़ बेलने पड़ेंगे, परन्तु प्रसन्नता की बात यह है कि विश्व हिन्दी सम्मेलन के साथ-साथ विश्व में हिन्दी के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण एक न एक दिन हिन्दी भी राष्ट्रसंघ में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में एक स्थान अवश्य पायेगी। यह एक अलग बात है कि केवल प्रस्तावों के बल पर यह स्थान नहीं मिलने वाला। इस के लिये भारत के साथ-साथ प्रवासी हिन्दी प्रेमियों को भी हिन्दी को सच्चे अर्थ में एक समृद्ध भाषा बनानी होगी जिस से अधिकांश अन्य भाषा-भाषी भी हमारी हिन्दी के प्रति प्रखर स्वाभिमान को अधिमान्यता देने पर सहमत हों। हम में ऐसा आत्म-विश्वास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जगाने की आवश्यकता है कि हम उद्घोष करने में संकोच न करें कि हिन्दी विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषाओं में से एक है। इस आत्म-विश्वास का स्फुल्लिंग भारत-भूमि से उठना चाहिए। प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति की इस के लिये बीड़ा उठाना होगा। एक और सत्ता, प्रतिष्ठान, राजनेता, शासक, प्रशासक, नौकरशाह और दूसरी ओर जनता, लेखक, मनीषी, शिक्षाविद्, प्राध्यापक, न्यायविद्, न्यायाधीश, वैज्ञानिक, शिल्पी, उद्यमी, अर्थशास्त्री, कलाविद्, समाजशास्त्री, मीडियाकर्मी सभी को मिलकर एक साथ होना पड़ेगा। तभी विश्व की निगाहें हमारे संकल्प की ओर पड़ेंगी और राष्ट्रसंघ में हिन्दी को अधिमान्य करने में सहयोग करेंगी, एक बात और हिन्दी को विश्व-भाषा बनाने के लिये हमें अपने बाजार को भी भूमंडलीकृत करना होगा। बाजार भाषा के विस्तार के लिये आज के युग में एक मजबूत और सहज कड़ी है।

भाषा के भूमंडलीकरण के लिये हमें भौगोलिक परिस्थितियों को भी दृष्टि में रखना होगा। भारतीय मूल की पुरानी पीढ़ियों के लोग मलेशिया, मॉरीशस, त्रिनिदाद और ट्रैबेगो, फिजी, गुयाना, सूरीनाम में हैं, जबकि नयी पीढ़ी के लोग अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के अतिरिक्त अन्य देशों में भी निवास करते हैं। उन में भारत और भारतीय संस्कृति तथा भाषाओं के प्रति अगाध प्रेम है। हिन्दी को वे आज भी अपनी मातृभाषा मानते हैं। भारत और प्रवासी भारतीयों के बीच आज भी नाभि-नाल सम्बन्ध बने हुये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी सरकार उनके इस प्रेम को पाले-पोसे और आगे बढ़ कर उन्हें सहर्ष आलिंगन प्रदान करे, निश्चित ही प्रवासी भारतीय हिन्दी की श्रीवृद्धि में योगदान करेंगे।

प्रायोजन : इस सूत्र की तलाश करना कठिन है कि विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित करने का क्या किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज है अथवा अनेक लोगों में विमर्श कर इस आयोजन की उपादेयता और आवश्यकता को समझा। प्रारम्भिक विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजनों से यह धारणा बनती है कि हिन्दी साहित्य की विकास धारा से परिचित होने और उसे और आगे बढ़ाने केलिये विश्व सम्मेलन को आवश्यक समझा गया। समय-समय पर हिन्दी की विकास यात्रा को मापने, उसका आंकलन करने तथा उसके लिये विकास के मार्ग तलाशने की जिज्ञासा ही उस आयोजन के मूल में रही होगी। लेखक और पाठक पर हिन्दी साहित्य के प्रति सरोकारों को और दृढ़ करने, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने तथा प्रवासी भारतीयों के भारत की नाभि से जुड़े भावुक रिश्तों को और अधिक गहराई, लगाव के साथ आकर्षित करने के लिये भी इन सम्मेलनों की आवश्यकता महसूस की गई होगी। प्रवासी भारतीयों द्वारा विरचित साहित्य और संस्कृति के अपनत्व को मान्यता प्रदान कर एक साथ मिल बैठ कर कुछ नया सोचने की अभिलाषा भी इन का अभिप्रेत रहा होगा। इन्हीं अवधारणाओं को लेकर अब तक १० विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं और आगामी १८-२० अगस्त, २०१८ में ११वाँ आयोजन मॉरीशस में होने जा रहा है।

पहला आयोजन : वर्ष १९७५ में नागपुर (भारत) में सम्मेलनों की श्रृंखला की पहली कड़ी बनाई गई। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के सहयोग से इस का आयोजन सुनिश्चित किया गया। संत विनोबा भावे का चिन्तन भी इस की अवधारणा में सम्मिलित था। हालाँकि वे स्वयं इस महनीय कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं हो सके, यह आयोजन नागपुर में १० से १४ जनवरी, १९७५ तक था। देश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के अखबारों में इस की बड़ी धूम रही, हिन्दी की पत्रिकाओं ने बड़े गर्व के साथ उसकी यशोगाथा को प्रसारित करने का उपक्रम किया, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अध्यक्ष तथा तत्कालीन महाराष्ट्र के वित्त एवं अल्प बचत मंत्री श्री मधुकर राव चौधरी ही सम्मेलन के आयोजन में अगुवाई कर रहे थे, तत्कालीन उपराष्ट्रपति बी.डी. जती आयोजन समिति के अध्यक्ष, मधुकर राव चौधरी जी उपाध्यक्ष थे। मॉरीशस के प्रधानमंत्री श्री शिवसागर रामगुलाम मुख्य अतिथि थे। ३० देशों के १२२ प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में सहभागिता की। सम्मेलनों के आयोजनों को आगे बढ़ाने की दिशा में यह सोचा गया था कि प्रत्येक वर्ष में किसी न किसी देश में इसका आयोजन हुआ, किन्तु कालांतर में चार वर्ष के स्थान पर तीन-तीन वर्ष आवृत्ति में ये कार्यक्रम होने लगे, इस सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुये:-

१. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिलाया जाये।

२. वर्धा (नागपुर) में विश्व हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना हो।

३. विश्व हिन्दी सम्मेलनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिये योजना का निर्माण किया जाये।

सम्मेलन का सूत्र वाक्य था- ''वसुधैव कुटुम्बकम्''।

दूसरा आयोजन :- मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में यह सम्मेलन २८ अगस्त से ३० अगस्त, १९७६ में हुआ था। इस सम्मेलन के आयोजन मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम थे। भारत के प्रतिनिधि मंडल के अगुआ तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह थे। भारत के अतिरिक्त इस सम्मेलन के समापन पर सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुये:-

१. मॉरीशस में एक विश्व हिन्दी केन्द्र की स्थापना की जाये जो सारे विश्व में हिन्दी की दिशा में की गई गतिविधियों का समन्वय करें।

२. एक अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन किया जाये जो भाषा के माध्यम से ऐसे वातावरण का निर्माण कर सके जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे और आध्यात्म की महान शक्ति एक नये समन्वित सामञ्जस्य का रूप धारण कर सके।

३. हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र में अधिकारिक भाषा के रूप में स्थान मिले, इस के लिये एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाया जाये।

तीसरा आयोजन :- नयी दिल्ली भारत में सम्मेलन का आयोजन २८ से ३० अक्टूबर १९८३ को हुआ था। इसकी आयोजन समिति के अध्यक्ष तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ थे। मैंने भी इस सम्मेलन में भाग लिया था। साक्षी होने के कारण मैं यह कह सकता हूँ कि जिस प्रकार से अलग-अलग दलों में बैठ कर अलग-अलग विषयों पर चर्चा हुई थी, वह अत्यंत सार्थक और प्रभावकारी थी। मेरे लिये यद्यपि यह नया अवसर नहीं था कि सम्मेलन में सहभागिता कर विदेशीमूल के हिन्दी सेवियों से हिन्दी में चर्चाएँ की हों, किन्तु जितनी सटीक बात वे कहते थे, उतनी सटीक बात कहने में हम उनसे पीछे थे। यह एक बड़ा सम्मेलन या सहभागिता की दृष्टि से कुल ६५५६ लोगों ने भाग लिया था जिस में २६० विदेशी या यूँ कहें प्रवासी प्रतिनिधि थे। कार्यक्रम के समापन पर महादेवी वर्मा ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में हिन्दी को लेकर एक मार्मिक बात कही थी। जो एक प्रकार से हमारी सार्वभौमिक भाषा बनाने के प्रयत्नों के लिये एक चुनौती थी। उन्होंने कहा था- 'भारत के सरकारी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्यालयों में हिन्दी के काम-काज की स्थिति उस रथ जैसी है, जिसमें घोड़े आगे के बजाए पीछे जोत दिये जाते हैं।'

पारित प्रस्ताव :-

१. अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की संभावनाओं का पता लगा कर इस के लिये गहन प्रयास किये जायें।

२. हिन्दी के विश्वव्यापी स्वरूप को विकसित करने के लिये विश्व हिन्दी पीठ स्थापित करने की योजना को मूर्तरूप दिया जाये।

३. विगत दो सम्मेलनों में पारित संकल्पों की परिपुष्टि करते हुये यह निर्णय लिया जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी को विकास और उन्नयन के लिये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक स्थायी समिति का गठन किया जाये। उस समिति में देश-विदेश के २५ सदस्य हों।

चौथा आयोजन :- यह आयोजन एक बार पुन: मॉरीशस के पोर्ट लुई में २ से ४ दिसंबर, १९९३ को हुआ था। आयोजन का पूर्ण दायित्व मॉरीशस के कला एवं संस्कृति मंत्री श्री मुक्तेश्वर चुनी पर था। इन्हें ही आयोजन समिति के अध्यक्ष का पद भी सौंपा गया था। भारत के प्रतिनिधि मंडल को नेतृत्व श्री मधुकर राव चौधरी और उपनेतृत्व तत्कालीन गृह राज्यमंत्री श्री रामलाल राही के पास था। इस सम्मेलन में मॉरीशस के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त लगभग २०० विदेशी प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। सम्मेलन के पारित प्रस्ताव थे:-

१. विश्व हिन्दी सचिवालय मॉरीशस में स्थापित किया जाये।

२. भारत के अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्व विद्यालय स्थापित किया जाये।

३. विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिन्दी पीठ की स्थापना की जाये।

४. भारत सरकार विदेशों में प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र, पुस्तकें, पत्रिकाएँ प्रकाशित करने में सक्रिय सहयोग करें।

५. हिन्दी को विश्व मंच पर उचित स्थान दिलाने में शासन के साथ-साथ जनसमुदाय विशेष प्रयत्न करें।

६. विश्व के समस्त हिन्दी प्रेमी अपने निजी अथवा सार्वजनिक कार्यों में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करें।

७. सम्मेलन में पधारे सभी प्रतिनिधि अपने-अपने देशों की सरकारों से संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को अधिकारिक भाषा बनाने के लिये समर्थन प्राप्त करने का सार्थक प्रयास करें।

टीप :- इस चतुर्थ हिन्दी सम्मेलन के पश्चात् मॉरीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की गई है।

पाँचवा आयोजन :- ४ से ८ अप्रैल, १९९६ में यह आयोजन त्रिनिदाद एवं ट्रैबेगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में हुआ। आयोजन संस्था भी त्रिनिदाद की हिन्दी निधि थी। इस संस्था के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम ही आयोजन समिति के अध्यक्ष थे। भारत की ओर से अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल श्री माताप्रसाद के नेतृत्व में १७ सदस्यीय मंडल ने भाग लिया था। सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था, 'प्रवासी भारतीय और हिन्दी'। सम्मेलन में हिन्दी साहित्य की चर्चा के अतिरिक्त हिन्दी का विकास, कैरेबियाई देशों में हिन्दी की स्थिति एवं कम्प्यूटर युग में हिन्दी की उपादेयता जैसे विषयों पर भी चर्चा हुई। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों के २५७ प्रतिनिधि सम्मेलन में सम्मिलित हुये।

पारित प्रस्ताव:-

१. विश्वव्यापी भारत वंशी समाज हिन्दी को अपनी संपर्क भाषा बनाये।

२. मॉरीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की स्थापना के लिये भारत में एक अन्तर-सरकारी समिति बनाई जाये।

३. सभी देशों, विशेष कर जिन देशों के अप्रवासी भारतीय बड़ी संख्या में हैं, उनकी सरकारें अपने-अपने देशों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करें। उन देशों से आग्रह किया जाये कि संयुक्त राष्ट्र संघ के हिन्दी को मान्यता दिलाने के लिये राजनीतिक योगदान और समर्थन दें।

छठा आयोजन :- यू. के. लंदन में १४ से १८ सितंबर, १९९९ तक इस का आयोजन हुआ। यू.के. हिन्दी समिति, गीतांजलि बहुभाषी समुदाय और बर्मिंघम भारतीय भाषा संगम ने मिलकर एक आयोजन समिति का गठन किया जिस के अध्यक्ष डॉ. कृष्णकुमार और संयोजक डॉ. पद्मेश गुप्त थे। सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था- 'हिन्दी और भावी पीढ़ी।' भारत की ओर से श्रीमती वसुन्धरा राजे ने भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया था। उपनेता के रूप में प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र थे। इस सम्मेलन को यह ऐतिहासिकता प्रदान की जा सकती है कि हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने के ५०वें वर्ष में इसका आयोजन हुआ। सम्मेलन में २१ देशों के ७०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिस में भारत से ३५० और ब्रिटेन से २५० प्रतिनिधि सम्मिलित हुये।

पारित प्रस्ताव :-

१. विश्व भर में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन, शोध, प्रचार-प्रसार और हिन्दी सृजन में समन्वय के लिये महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र सक्रिय भूमिका निभाए।

२. विदेशों में हिन्दी के शिक्षण, पाठ्यक्रमों के निर्धारण, पाठ्यपुस्तकों के निर्माण, अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था विश्वविद्यालय करें।

३. हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता दी जाये।

४. हिन्दी को सूचना तकनीकी विकास, मानकीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी लेखन, प्रसारण की अद्यतन तकनीकों के विकास के लिये भारत सरकार एक केन्द्रीय एजेंसी स्थापित करे।

५. नयी पीढ़ी में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिये आवश्यक पहल की जाये।

६. भारत सरकार विदेशों में स्थित अपने दूतावासों को निर्देश दे कि वे भारतवंशियों की सहायता से विद्यालयों में एक भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था करें।

सातवाँ आयोजन:- सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में ५ से ९ जून, २००३ में आयोजित होने वाला इक्कीसवीं सदी का यह पहला आयोजन था। इस सम्मेलन के आयोजक थे श्री जानकीप्रसाद सिंह और इस का केन्द्रीय विषय था- 'विश्व हिन्दी : नयी शताब्दी की चुनौतियाँ'। भारत की ओर से तत्कालीन विदेश मंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने भारतीय दल का नेतृत्व किया था। भारत के २०० प्रतिनिधि इस में सम्मिलित हुये थे। सम्मेलन में १२ से अधिक देशों के हिन्दी सेवियों ने भाग लिया था। इस में पारित प्रस्ताव :-

१. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाया जाये।

२. विदेशी विश्वविद्यालयों में हिन्दी पीठ की स्थापना हो।

३. भारतीय मूल के लोगों के बीच हिन्दी के प्रयोग के प्रभावी उपाय किये जाये।

४. हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये वेबसाइट की स्थापना और सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाये।

५. हिन्दी के विद्वानों की विश्व निर्देशिका का प्रकाशन किया जाये।

६. विश्व हिन्दी दिवस के आयोजन किये जायें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

७. कैरेबियन हिन्दी परिषद् का गठन हो।

८. दक्षिण भारत के विश्व विद्यालयों में हिन्दी विभाग की स्थापना हो।

९. हिन्दी पाठ्यक्रम में विदेशी हिन्दी लेखकों की रचनाओं का समावेश हो।

१०. सूरीनाम में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था की जाये।

आठवाँ आयोजनः- १३ से १५ जुलाई, २००७ तक संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी न्यूयॉर्क में इस का आयोजन हुआ था। सम्मेलन का केन्द्रीय विषय था- 'विश्व मंच पर हिन्दी'। इस का आयोजन भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा किया गया था। अमेरिका में स्थापित भारतीय विद्याभवन ने अन्य हिन्दी सेवी संस्थाओं की सहायता से इस की व्यवस्था की थी। इस अवसर के लिये बालेन्दु शर्मा दधीचि ने एक वेबसाइट का भी निर्माण किया था।

पारित प्रस्ताव :-

१. विदेशों में हिन्दी शिक्षण और देवनागरी लिपि को लोकप्रिय बनाने के लिये दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के लिये एक मानक पाठ्यक्रम बनाया जाए। हिन्दी शिक्षकों को मान्यता प्रदान की जाए।

२. विश्व हिन्दी सचिवालय के काम-काज को सक्रिय और उद्देश्य परक बनाने के लिये सचिवालय को भारत तथा मॉरीशस सरकारें सभी प्रकार की प्रशासनिक एवं आर्थिक सहायता प्रदान करें।

३. दिल्ली सहित विश्व के अन्य चार-पाँच देशों में इसके क्षेत्रीय कार्यालय खोजने पर विचार किया जाये। वेबसाइट बनाई जाये।

४. हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी विषयों पर सरल एवं उपयोगी पुस्तकों के सृजन को प्रोत्साहित किया जाये।

५. विदेशों में जिन विश्वविद्यालयों, स्कूलों में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है उन का एक डेटा बेस बनाया जाये और हिन्दी अध्यापकों की एक सूची भी बनाई जाये।

६. यह सम्मेलन विश्व के सभी हिन्दी प्रेमियों, भारत तथा विदेशों में कार्यरत भारतवासियों तथा प्रवासी हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध करता है कि वे विदेशों में हिन्दी भाषा, साहित्य के प्रचार-प्रसार में योगदान दें।

७. वर्धा स्थित महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालयय में विदेशी हिन्दी विद्वानों को अनुसंधान के लिये शोधवृत्ति की व्यवस्था की जाये।

८. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान भी विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा पाठ्यक्रमों के निर्माण में सहयोग करें।

९. विदेशी विश्वविद्यालयों में हिन्दी पीठ की स्थापना पर विचार हो।

१०. हिन्दी को साहित्य के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान और वाणिज्य की भाषा बनाया जाये।

११. भारत द्वारा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संगोष्ठियों और अन्य सम्मेलनों में भी हिन्दी को प्रोत्साहित किया जाये।

नौवाँ आयोजनः- २२ सितंबर से २४ सितंबर, २०१२ तक दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग में इस का आयोजन हुआ था। इस सम्मेलन में २२ देशों के ६०० से अधिक प्रतिनिधियों की उपस्थिति थी जिस में ३०० भारतीय प्रतिनिधि थे।

पारित प्रस्तावः-

१. हिन्दी के बढ़ते हुये वैश्वीकरण के मूल में गाँधी जी की भाषा दृष्टि का महत्त्वपूर्ण स्थान हो।

२. मॉरीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की संकल्पना प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गई थी। यह सम्मेलन इस सचिवालय की स्थापना के लिये भारत और मॉरीशस सरकारों द्वारा किये जा रहे अथक प्रयासों एवं समर्थन की सराहना करता है।

३. महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय भी विश्व हिन्दी सम्मेलनों में पारित संकल्पों का ही परिणाम है। यह विश्वविद्यालय हिन्दी के प्रचार-प्रसार और उपयुक्त आधुनिक उपकरणों को विकसित करने में सराहनीय कार्य कर रहा है, सम्मेलन इसकी प्रशंसा करता है।

४. सम्मेलन केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की भी हिन्दी और गैर हिन्दी भाषा भाषियों के मध्य हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर रहा है, उसकी भी प्रशंस करता है।

दसवाँ आयोजनः- १० सितंबर से १२ सितंबर, २०१५ तक इस सम्मेलन का आयोजन भोपाल, म.प्र. में किया गया। सम्मेलन की अध्यक्ष विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज तथा संयोजक अनिल माधव दवे थे। यह अन्य सम्मेलनों से कुछ हट कर था। मैं स्वयं इस सम्मेलन का साक्षी रहा हूँ। इस में साहित्य, संचार और विशेष कर संचार तकनीक की अनेक विधियों, गूगल आदि की जो प्रदर्शनियाँ लगी थीं, वे उन लोगों के आकर्षण का भी केन्द्र रहीं, जो इस सम्मेलन के प्रतिभागी नहीं थे। मुख्य रूप से जिन संस्थाओं ने प्रदर्शनियाँ लगाईं वे थे- महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, वेब दुनिया इंदौर, भारतकोश, माइक्रोसॉफ्ट, गूगल तथा माधवराव सप्रे संग्रहालय, भोपाल; इस प्रदर्शनी में हिन्दी के विस्तार और विकास की यात्रा एवं संभावनाओं को डिजिटल माध्यम से प्रदर्शित किया गया। विभिन्न समूहों में विभिन्न विषयों पर परिचर्चाओं का संचालन किया गया।

सम्मेलन का मूल विषय था- 'हिन्दी जगत : विस्तार एवं संभावनाएँ'। इस विषय का लक्ष्य रखा गया था कि समकालीन वैश्विक परिस्थितियों में हिन्दी को मानव एवं राष्ट्र सेवा का माध्यम बनाया जाये तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा का स्थान दिलाकर विश्व भाषा के रूप में स्थापित किया जाये। इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने किया और अध्यक्षता विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने की। इस अवसर पर प्रधानमंत्री मोदी जी ने कहा, ''हिन्दी के प्रति दुनिया में आकर्षण बढ़ रहा है। हिन्दी की समृद्धि के लिये इसे अन्य भाषाओं के साथ जोड़ने की प्रक्रिया चलनी चाहिए। निरंतर जारी रखना चाहिए। हिन्दी और अन्य भाषाओं के सम्मेलन करने पर विचार करें।'' यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण सुझाव था, जिसे विश्व हिन्दी सम्मेलनों या अन्य हिन्दी सम्मेलनों में विचार किया जाना चाहिए। ध्यातव्य है कि भारत में त्रिभाषा फॉर्मूला लागू करने की पहल की गई थी। अपनी मातृभाषा अंग्रेजी और इस के अतिरिक्त कोई एक अहिन्दी भाषा। दुर्भाग्य से इस योजना का क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो पाया। इसलिये आज देश में ही हिन्दी राष्ट्रभाषा बनने के लिये जूझ रही है। इसी अवसर पर अध्यक्षता करते हुये श्रीमती सुषमा स्वराज ने कहा- ''अभी तक जितने भी सम्मेलन हुये हैं, वे साहित्य पर केन्द्रित थे, यह पहला सम्मेलन है जो भाषा को समर्पित है।''

पिछले सम्मेलनों में हिन्दी के विद्वानों को सम्मानित करने का प्रस्ताव पारित किये गये थे। नवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में निर्णय लिया गया था कि १०वें सम्मेलन में इसे विश्व हिन्दी सम्मान के नाम से विद्वानों को सम्मानित किया जाये। इस सम्मेलन में २० भारतीय तथा २० भारत से उतर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देशों के विद्वानों को सम्मानित किया गया।

प्रतिभागियों की दृष्टि से भी यह सम्मेलन बड़ा था। इस में ३९ देशों के प्रतिनिधियों सहित ५००० से अधिक लोगों ने सक्रिय सहभागिता की। १२ चयनित विषयों पर समानान्तर सत्रों में गहन चर्चा के पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुये :-

१. विदेश मंत्रालय एक विशेष समीक्षा समिति गठित कर उन अनुशंसाओं की यथोचित कार्यवाही के लिये संबंधित मंत्रालयों एवं विभागों को अग्रेषित करें।

२. ११वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन सन् २०१८ में मॉरीशस में किया जाये।

३. मॉरीशस में स्थित विश्व हिन्दी सचिवालय के नये भवन का औपचारिक उद्घाटन इसी सम्मेलन के दिनों में किया जाये।

ग्यारहवाँ आयोजन:- भारत सरकार द्वारा मॉरीशस सरकार के सहयोग से इस सम्मेलन का आयोजन १८ से २० अगस्त २०१८ मॉरीशस के पोर्ट लुई में किया जायेगा। १० अप्रैल २०१८ को ११वें विश्व हिन्दी सम्मेलन का कार्यक्रम घोषत किया जा चुका है। कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने वाली समिति में मुख्य अतिथि भारत की विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज तथा विशेष अतिथि मॉरीशस गणराज्य की शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री श्रीमती लीला देवी दुखन लछुमन उपस्थित थीं। इस कार्यक्रम तथा सम्मेलन की वेबसाइट तथा लोगो का लोकार्पण किया जा चुका है। मॉरीशस पहला देश है जो विश्व हिन्दी सम्मेलन का अपनी भूमि पर तीसरी बार आयोजन कर रहा है, परंतु इन सम्मेलनों के आयोजन में चर्चाओं के समय स्मरण रखना चाहिए।

१. प्रवासी हिन्दी साहित्य का प्रयोग भ्रमात्मक है। हिन्दी साहित्य उस पर प्रवासी का ठप्पा क्यों?

२. आयोजकों को ध्यान रखना चाहिए विशेष कर भारत सरकार को कि इन आयोजनों को साहित्यिक पर्यटन न समझा जाये।

३. देश को अनेक बोलियों से हिन्दी सँवरती है। प्रवासी भारतीय भी बोलियों को ही संजोकर रखे हैं, फिर सम्मेलन में हिन्दी की बोलियों पर भी चर्चा होनी चाहिए।

४. प्रस्तावित प्रस्तावों पर सरकार ने कितनी प्रगति की है अथवा कितने प्रस्तावों पर कार्यवाही हो रही है, इसकी जानकारी समय-समय पर प्रकाशित होती रहनी चाहिए।

५. क्यों यह संभव नहीं कि इसका आयोजन विदेश मंत्रालय के स्थान पर भाषा आयोग करे।

किसी भाषा के लिये उत्थान-पतन के दो ही मार्ग हैं; एक, हम मौन धारण करलें, निष्क्रिय हो जायें और समाज को धीरे-धीरे भाषा के प्रति उदासीन होते देखें अथवा समाज में अपनी भाषा का आंतरिक विश्वास जगाएँ। इस प्रकार के सम्मेलनों का हेतु दूसरा विकल्प माना गया है। इसलिये यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जिस दिन भाषा के दरवाजे बंद हो जायेंगे उस दिन उस का अन्त निश्चित है। १०वें सम्मेलन को उद्घाटन पर प्रधानमंत्री मोदी जी ने कहा था, 'जब-जब भाषा को दीवारों में समेट दिया गया तब-तब न भाषा बची न समाज का विकास। उसकी समृद्धि रुक गई। भाषा में यह शक्ति होनी चाहिए कि हर चीज़ को वह अपने में समेटती जाए।' यह ठीक बात है, किन्तु यदि भारत के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को देखते हैं तो भले ही हिन्दी मौन न दिखती हो पर बौनी अवश्य दिखती है। अंग्रेजी का बाहुल्य इस तरह से बढ़ रहा है कि कोई भी अपनी पूरी बात हिन्दी में कह पाने में असमर्थ दिखता है। हिन्दी अखबारों और हिन्दी की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्रिकाओं में उन अनर्गल शब्दों का भी प्रयोग धड़ल्ले से किया जा रहा है, जिनके सुंदर से सुंदर विकल्प हिन्दी में हैं। फिर क्या आवश्यकता दिखती है कि बिना अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के वाचक-लेखक अपनी बात नहीं कह-लिख पाता। यदि हिन्दी को भूमंडलीय भाषा बनाने का विचार हिन्दी प्रेमियों में है तो इस मनोदशा से उबरना होगा कि बिना अंग्रेजी के प्रयोग के कुछ नहीं किया जा सकता।

भारत में दक्षिण भारतीयों में हिन्दी के प्रति आक्रोश भले न हो, किन्तु अनुराग भी नहीं है। उस का मुख्य कारण यह है कि त्रिभाषा नियम के अनुसार हिन्दी भाषियों ने अहिन्दी भाषाओं के प्रति अरुचि के प्रति अन्यमनस्कता से काम नहीं चलेगा। इस आपाधापी के कारण ही संभवत: भारत की सरकारें हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद देने में पहल नहीं कर रहीं। राजभाषा के रूप में भी सरकारें प्रयोग नहीं करना चाहतीं। भारत सरकार के जो पत्र आते हैं, वे प्राय: अंग्रेजी में होते हैं, जब कि अ. वर्गके प्रदेशों में हिन्दी में पत्र भेजने का प्रावधान भारत सरकार का ही है। हिन्दी में किये गये पत्राचार को दोयम दर्जे का मानकर उसे वरीयता नहीं दी जाती । राष्ट्रसंघ में यदि हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाने की माँग हिन्दी प्रेमियों के माध्यम से विश्व हिन्दी सम्मेलनों में उठाई जाती है तो भारत के हिन्दी प्रेमी भारत सरकार पर यह दबाव क्यों नहीं बनाते कि गाँधी के देश में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिया जाना चाहिए।

जो हिन्दी बोलते हैं या लिखते हैं उन में ऐसे अनेक लोग हैं जिन्हें हिन्दी व्याकरण का ज्ञान नहीं है। कुछ अहिन्दी भाषी हिन्दी का प्रयोग करना चाहते हैं, किन्तु व्याकरण की त्रुटि से डरने के कारण उन्हें हिन्दी बोलने में संकोच होता है। प्रसंगत: एक बात- देश के लगभग ३०० प्राध्यापक मेरे साथ एन.सी.सी. अधिकारी प्रशिक्षण में थे। आसाम के एक अंग्रेजी के प्राध्यापक मेरे कक्ष में थे। उन्होंने प्रश्न किया कि- 'मकान खुल गया के आधार पर ही हम दुकान खुल गया बोलते हैं तो बताईये यह अशुद्ध क्यों हैं?' दूसरा प्रश्न उन्होंने किया कि- 'स्त्री आती है और पुरुष आता है, यह किस नियम की तरह हैं।' मैं व्याकरण के क्षेत्र से अल्पज्ञ हूँ, भले ही हिन्दी भाषी हूँ। मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं था, मेरा प्रस्ताव है कि केवल हिन्दी मान लेने से हिन्दी भाषा का कल्याण नहीं होगा। यदि उसे विश्व भाषा बनाना है तो व्याकरण की दृष्टि से भी एक मजबूत और बोधगम्य नींव देनी होगी। बालू पर भित्ति खड़ी करने से हिन्दी भाषा का बहुत लाभ होने वाला नहीं है।

आखिरी बात, नयी पीढ़ी में विश्व व्यापार की दशा के कारण अंग्रेजी के प्रति जो मोह बढ़ रहा है, वह हिन्दी को मिटाने में सक्रिय सहयोग कर रहा है। अंग्रेजी विद्यालयों को न सामाजिक संबन्धों की समझ है, न भाषा की न अंक गणित गणना की। आज का विद्यार्थी कॉन्वेंट विद्यालयों में शिक्षित होने के कारण मामा-मामी, फूफा-बुआ, जीजा, मौसिया-मौसी जैसे संबन्धों को मूलत: रहा है। वह केवल एक रिश्ता जानता है और वह रिश्ता है अंकल। ८० वर्षीय बुजुर्ग भी अंकल है और २० वर्षीय युवा भी इसी प्रकार हिन्दी की गिनती का उसे ज्ञान नहीं है। आर्यभट्ट के देश में यह कैसी पढ़ाई है कि हम अपना सर्वस्व भूलते जा रहे हैं। विश्व हिन्दी सम्मेलनों में ऐसे सामाजिक प्रश्नों पर भी चर्चा की जानी चाहिए। उसी से हमारे देश की संस्कृति सुरक्षित रह पायेगी।

संपर्क : बी. २/९/२०३, कन्हैया अपार्टमेंट,
शाहपुरा, भोपाल (म.प्र.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीधर पाठक

देश-गीत

जय जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत-मुकुट, जगदीश दुलारा
जग-सौभाग्य, सुदेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

प्यारा देश, जय देवेश,
अजय अशेष, सदय विशेष,
जहाँ न संभव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य-प्रवेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवी का,
प्रेम-मूल, प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति-नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

जय जय शुभ्र हिमाचल-शृंगा,
कल-रव-निरत कलोलिनि गंगा,
भानु-प्रताप-समत्कृत अंगा,
तेज-पुंज तप-वेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

जग में कोटि-कोटि जुग जीवै,
जीवन-सुलभ अमी-रस पीवै,
सुखद वितान सुकृत का सीवै,
रहै स्वतंत्र हमेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

-साभार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अटल बिहारी वाजपेयी

स्वतंत्रता दिवस की पुकार

पन्द्रह अगस्त का दिन कहता-आज़ादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाक़ी हैं, राखी की शपथ न पूरी है॥

जिनकी लाशों पर पग धर कर आजादी भारत में आई।
वे अब तक हैं खानाबदोश ग़म की काली बदली छाई॥

कलकत्ते के फुटपाथों पर जो आँधी-पानी सहते हैं।
उनसे पूछो, पन्द्रह अगस्त के बारे में क्या कहते हैं॥

हिन्दू के नाते उनका दुख सुनते यदि तुम्हें लाज आती।
तो सीमा के उस पार चलो सभ्यता जहाँ कुचली जाती॥

इंसान जहाँ बेचा जाता, ईमान ख़रीदा जाता है।
इस्लाम सिसकियाँ भरता है, डालर मन में मुस्काता है॥

भूखों को गोली नंगों को हथियार पिन्हाए जाते हैं।
सूखे कण्ठों से जेहादी नारे लगवाए जाते हैं॥

लाहौर, कराची, ढाका पर मातम की है काली छाया।
पख़्तूनों पर, गिलगित पर है गमगीन गुलामी का साया॥

बस इसीलिए तो कहता हूँ आज़ादी अभी अधूरी है।
कैसे उल्लास मनाऊँ मैं? थोड़े दिन की मजबूरी है॥

दिन दूर नहीं खंडित भारत को पुनः अखंड बनाएँगे।
गिलगित से गारो पर्वत तक आजादी पर्व मनाएँगे॥

उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाएँ, जो खोया उसका ध्यान करें॥

कवि आज सुना वह गान रे

कवि आज सुना वह गान रे,
जिससे खुल जाएँ अलस पलक।
नस-नस में जीवन झंकृत हो,
हो अंग-अंग में जोश झलक।

ये-बंधन चिरबंधन
टूटें-फूटें प्रासाद गगनचुम्बी

हम मिलकर हर्ष मना डालें,
हूकें उर की मिट जाएँ सभी।
यह भूख-भूख सत्यानाशी
बुझ जाय उदर की जीवन में।
हम वर्षों से रोते आए
अब परिवर्तन हो जीवन में।
क्रंदन-क्रंदन चीत्कार और,
हाहाकारों से चिर परिचय।
कुछ क्षण को दूर चला जाए,
यह वर्षों से दुख का संचय।
हम ऊब चुके इस जीवन से,
अब तो विस्फोट मचा देंगे।
हम धू-धू जलते अंगारे हैं,
अब तो कुछ कर दिखला देंगे।
अरे! हमारी ही हड्डी पर,
इन दुष्टों ने महल रचाए।
हमें निरंतर चूस-चूस कर,
झूम-झूम कर कोष बढ़ाए।
रोटी-रोटी के टुकड़े को,
बिलख-बिलखकर लाल मरे हैं।
इन-मतवाले उन्मत्तों ने,
लूट-लूट कर गेह भरे हैं।
पानी फेरा मर्यादा पर,
मान और अभिमान लुटाया।
इस जीवन में कैसे आए,
आने पर भी क्या पाया?
रोना, भूखों मरना, ठोकर खाना,
क्या यही हमारा जीवन है?
हम स्वच्छंद जगत में जन्मे,
फिर कैसा यह बंधन है?
मानव स्वामी बने और—
मानव ही करे गुलामी उसकी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसने है यह नियम बनाया,
ऐसी है आज्ञा किसकी?
सब स्वच्छंद यहाँ पर जन्मे,
और मृत्यु सब पाएँगे।
फिर यह कैसा बंधन जिसमें,
मानव पशु से बँध जाएँगे?
अरे! हमारी ज्वाला सारे—
बंधन टूक-टूक कर देगी।
पीड़ित दलितों के हृदयों में,
अब न एक भी हूक उठेगी।
हम दीवाने आज जोश की—
मदिरा पी उन्मत्त हुए।
सब में हम उल्लास भरेंगे,
ज्वाला से संतप्त हुए।
रे कवि! तू भी स्वरलहरी से,
आज आग में आहुति दे।
और वेग से भभक उठें हम,
हद-तंत्री झंकृत कर दे

स्वाधीनता के साधना पीठ

अपने आदर्शों और विश्वासों
के लिए काम करते-करते,
मृत्यु का वरण करना
सदैव ही स्पृहणीय है।
किन्तु
वे लोग सचमुच धन्य हैं
जिन्हें लड़ाई के मैदान में,
आत्माहुति देने का
अवसर प्राप्त हुआ है।
शहीद की मौत मरने
का सौभाग्य
सब को नहीं मिला करता।
जब कोई शासक
सत्ता के मद में चूर होकर
या,
सत्ता हाथ से निकल जाने के भय से
भयभीत होकर
व्यक्तिगत स्वाधीनता और स्वाभिमान को
कुचल देने पर
आमादा हो जाता है,
तब
कारागृह ही स्वाधीनता के
साधना पीठ बन जाते हैं।

-साभार

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हिन्दी भाषा

पड़ने लगती है पियूष की शिर पर धारा।
हो जाता है रुचिर ज्योति मय लोचन-तारा।
बर बिनोद की लहर हृदय में है लहराती।
कुछ बिजली सी दौड़ सब नसों में है जाती।
आते ही मुख पर अति सुखद जिसका पावन नामही।
इक्कीस कोटि-जन-पूजिता हिन्दी भाषा है वही।।

जिसने जग में जन्म दिया औ पोसा, पाला।
जिसने यक यक लहू बूँद में जीवन डाला।
उस माता के शुचि मुख से जो भाषा सीखी।
उसके उर से लग जिसकी मधुराई चीखी।
जिसके तुतला कर कथन से सुधाधार घर में बही।
क्या उस भाषा का मोह कुछ हम लोगों को है नहीं।।

दो सूबों के भिन्न-भिन्न बोली वाले जन।
जब करते हैं खिन्न बने, मुख भर अवलोकन।
जो भाषा उस समय काम उनके है आती।
जो समस्त भारत भू में है समझी जाती।
उस अति सरला उपयोगिनी हिन्दी भाषा के लिए।
हम में कितने हैं जिन्होंने तन मन धान अर्पण किए।।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महाराज रघुराज राज-विभवों में रहते।
थे जिसके अनुराग-तरंगों ही में बहते।
राजविभव पर लात मार हो परम उदासी।
थे जिसके नागरी दास एकान्त उपासी।
वह हिन्दी भाषा बहु नृपति-वृन्द-पूजिता बंदिता।
कर सकती है उन्नत किये वसुधा को आनंदिता।।

वे भी हैं, है जिन्हें मोह, हैं तन मन अर्पक।
हैं सर आँखों पर रखने वाले, हैं पूजक।
हैं बरता बादी, गौरव-विद, उन्नति कारी।
वे भी हैं जिनको हिन्दी लगती है प्यारी।
पर कितने हैं, वे हैं कहाँ जिनको जी से है लगी।
हिन्दू-जनता नहिं आज भी हिन्दी के रंग में रँगी।।

किन्तु कहूँगा अब तक काम हुआ है जितना।
वह है किसी सरोवर के कुछ बूँदों इतना।
जो शाला, कल्पना-नयन सामने खड़ी है।
अब तक तो उसकी केवल नींव ही पड़ी है।
अब तक उसका कलका कढ़ा लघुत्तम अंकुर ही पला।
हम हैं बिलोकना चाहते जिस तरु को फूला फला।।

भाषा द्वारा ही विचार हैं उर में आते।
वे ही हैं नव नव भावों की नींव जमाते।
जिस भाषा में विजातीय भाव ही भरे हैं।
उसमें फँस जातीय भाव कब रहे हरे हैं।
है विजातीय भाव ही का हरा भरा पादप जहाँ।
जातीय भाव अंकुरित हो कैसे उलहेगा वहाँ।।

मैं पर-भाषा पढ़ने का हूँ नहीं विरोधी।
चाहिए हो मति निज भाषा भावुकता शोधी।
जहाँ बिलसती हो निज भाषा-रुचि हरियाली।
वही खिलेगी पर-भाषा-प्रियता कुछ लाली।
जातीय भाव बहु सुमन-मय है वर उर उपवन वही।
हों विजातीय कुछ भाव के जिसमें कतिपय कुसुम ही।।

है उर के जातीय भाव को वही जगाती।
निज गौरव-ममता-अंकुर है वही उगाती।
नस नस में है नई जीवनी शक्ति उभरती।
उस से ही है लहू बूँद में बिजली भरती।
कुम्हलाती उन्नति-लता को सींच सींच है पालती।
है जीव जाति निर्जीव में निज भाषा ही डालती।।

उस में ही है जड़ी जाति-रोगों की मिलती।
उस से ही है रुचिर चाँदनी तम में खिलती।
उस में ही है विपुल पूर्वतन-बुधा-जन-संचित।
रत्न-राजि कमनीय जाति-गत-भावों अंकित।
कब निज पद पाता है मनुज निजता पहचाने बिना।
नहिं जाती जड़ता जाति की निज भाषा जाने बिना।।

गाकर जिनका चरित जाति है जीवन पाती।
है जिनका इतिहास जाति की प्यारी थाती।
जिनका पूत प्रसंग जाति-हित का है पाता।
जिनका बर गुण बीरतादि है गौरव-दाता।
उनकी सुमूर्ति महिमामयी बंदनीय विरदावली।
निज भाषा ही के अंक में अंकित आती है चली।।

उस निज भाषा परम फलद की ममता तज कर।
रह सकती है कौन जाति जीती धरती पर।
देखी गयी न जाति-लता वह पुलकित किंचित।
जो निज-भाषा-प्रेम-सलिल से हुई न सिंचित।
कैसे निज सोये भाग को कोई सकता है जगा
जो निज भाषा अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा।।

हे प्रभु! अपना प्रकृत रूप सब ही पहचाने।
निज गौरव जातीय भाव को सब सनमाने।
तम में डूबा उर भी आभा न्यारी पावे।
खुलें बन्द आँखें औ भूला पथ पर आवे।
निज भाषा के अनुराग की बीणा घर घर में बजे
जीवन कामुक जन सब तजे पर न कभी निजता तजे।।

-साभार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शैल चतुर्वेदी

हिन्दी का ढोल

जिन दिनों हम पढ़ते थे
एक लड़की हमारे कॉलेज में थी
खूबसूरत थी, इसलिए
सबकी नॉलेज में थी
मराठी में मुस्कुराती थी
उर्दू में शर्माती थी
हिन्दी में गाती थी
और दोस्ती के नाम पर
अँग्रेजी में अँगूठा दिखाती थी
एम.ए. करने के बाद
हमने उससे कहा-
तुम भी एम.ए.
हम भी एम.ए.
अब तो इस अँगूठे को हटाओ
हम तुम में डूब जाए
तुम हममें डूब जाओ!
वह मुस्कुराकर बोली-
शौक़ से डूबिए भाईसाहब! मुझे तो जीना है
हिन्दीवाले की बीबी बनकर
आँसू नहीं पीना है
लड़को की क्या कमी है?
एक ढूँढ़ो, हज़ार मिलते हैं
तिज़ोरी में ताकत हो तो
डॉक्टर और इंजीनियर भी उधार मिलते हैं।
हमारी बहन भी हिन्दी में एम.ए. है
लेकिन ऐसी ससुराल मिली है
जहाँ नौकर तक अंग्रेज़ी बोलते हैं
और कुत्ते भी समझते है!
और हमारी समझ में तब आया
जब हमारे पिताजी ने एक लड़की वाले को टटोला
और वह चौंककर बोला-
'क्या कहा?
लड़का हिंदी में एम.ए. है।
तो भैया, घर में बिठाओ
और बाप-बेटा मिलकर
मीरा के भजन गाओ।'
एक रिश्ता और आया
पर जैसे ही पिताजी ने
हमारा रेट खोला
लड़की का बाप उछलकर बोला-
'का कहा! एक लाख
इ-इ-इ हिन्दी के ढोल का कौन देगा जी?
ससुर, खुआब देखत हैं
अपना काँटा के लिए गुलाब देखत हैं
जानते हैं?
मर जाइएगा
तबहुँ नहीं पाइएगा।'
उसके जाते ही पिताजी
हमसे बोले-
'क्यों बे, हिन्दी के ढोल
और कितने जूते खिलवाएगा बोल
अब तो यही सुनना बाक़ी रह गया है
सुन लिया न
वो ढोलकी का बाप क्या कह गया है?
लोग संस्कारों को सूली पर टाँग रहे हैं
और बेटे के बाप से दहेज माँग रहे हैं
अरे, ये हिन्दी का ढोल मेरी क़िस्मत में न होता
तो जलवा दिखा देता
माँगनेवाले का घर बिकवाकर
साले को फुटपाथ पर बिठा देता
पहले ही कहा था
हिन्दी-विन्दी के चक्कर में मत पड़
कोई ठिकाने का सब्जेक्ट लेकर एम.ए. कर
हमारे चपरासी तक का लड़का अफ़सर हो गया
सगाई में स्कूटर लाया है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शादी में कार लाएगा
और सुना है लड़कीवाला पूरी बारात को
फ़ाइव स्टार होटल में ठहरायेगा
यहाँ मौक़ा भी आ गया तो
ठहराने वाला
ठहरा देगा झाड़ के नीचे
और सायकल के नाम पर
कुत्ते छुड़वा देगा पीछे
भागते भी नहीं बनेगा
और बेटा!
तुम्हारा हनीमून भी झाड़ पर मनेगा
हर बाप के अरमान होते हैं
कि बेटा पढ़ लिखकर कुछ बने
तो उसे कैश करें
और बुढ़ापे में ऐश करें
हमने भी बेटी के हाथ पीले किए हैं
अंटी में जो था सब गँवा दिया
और जब हमारे कमाने का वक्त आया
तो इस हिन्दी के ढोल ने मरवा दिया।'
हमने कहा-
'पिताजी!
दहेज़ लेना पाप है।'
वो बोले-
'चुप्प!
हम तेरे बाप हैं
कि तू हमारा बाप है
खबरदार, जो दहेज को पाप कहा!
और आज के बाद मुझे अपना बाप कहा!
अबे, हिन्दी के ढोल
जो बेटे का बाप
बिना दहेज़ खाए मरता है
उसे भगवान भी माफ़ नहीं करता है।
अब खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहा है
जा हाथ में कटोरा थामकर
मीरा के भजन गा।'
और हमारे जी में आया
हाथ में तँबूरा लेकर
घर से निकल पड़ें
और गाते फिरें-
'हिन्दी आई न मेरे काम
फिरता हूँ मैं मारा-मारा
सुबह-दोपहर-शाम
पढ़लिख कर हिन्दी मैं हारा
दुनिया कहती है आवारा
जी करता है थाम उस्तरा
बन जाऊँ हज्जाम
हिन्दी आई न मेरे काम।

-साभार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

१०वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन

मध्य प्रदेश के लिए वह क्षण अत्यन्त गौरव का था जब १० सितंबर, १९१५ को भोपाल के लाल परेड मैदान में १०वें विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी कर रहे थे। इस अवसर पर विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज, म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने हजारों-हजारों करतल ध्वनियों के बीच प्रधानमंत्री जी का स्वागत किया। उद्घाटन अवसर पर राज्यपाल श्री रामनरेश यादव, प. बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी, गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा, केंद्रीय सूचना प्रौद्योगिक मंत्री श्री रविशंकर प्रसाद, केंद्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ. हर्ष वर्धन, विदेश राज्यमंत्री जनरल (डॉ.) वी. के. सिंह, गृह राज्यमंत्री श्री किरेन रिजीजू, मॉरीशस की मानव संसाधन मंत्री श्रीमती लीलादेवी दुखन लछुमन, झारखंड के मुख्यमंत्री श्री रघुवरदास, आयोजन समिति के उपाध्यक्ष एवं सांसद श्री अनिल माधव दवे उपस्थित थे।

सम्मेलन के माध्यम से देश-विदेश के हजारों साहित्यकारों, युवा साहित्य प्रेमियों, नागरिकों को सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि ''दुनिया में भाषा के रूप में हिंदी का महत्त्व बढ़ रहा है। हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से जोड़ना होगा और डिजिटल दुनिया में इसका उपयोग बढ़ाना होगा। हमें भाषा की विरासत को सहेजने की जरूरत है, आने वाले वर्षों में भाषा का बहुत बड़ा बाजार बनने वाला हैं। आज दुनिया से भाषाएँ लोप हो रही हैं, अगर हम अपनी भाषा को समृद्ध नहीं बना सके तो हिंदी पर भी यही खतरा आ जाएगा। जानकार बताते हैं कि डिजिटल वर्ल्ड में तीन भाषाओं का ही बोलबाला रहने वाला है- अंग्रेजी, चीनी और हिंदी। टेक्नोलॉजी की दुनिया में भाषा का बाजार बढ़ने वाला है। इमसें हिंदी की अहमियत बढ़ने वाली है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि ''जिस गुजरात से महात्मा गाँधी ने हिंदी का जयघोष किया था, उसी गुजरात में जन्में श्री मोदी जी आज हिंदी का मान बढ़ा रहे हैं। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की घोषणा भी गुजरात से हुई थी। प्रधानमंत्री ने देश-विदेश में हिंदी का मान बढ़ाया। यहाँ तक कि संघ लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में हिंदी का सम्मान मिला है। मध्य प्रदेश कवियों, साहित्यकारों की भूमि है। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के नाम पर हमने मध्य प्रदेश में हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की है, जहाँ विज्ञान और वाणिज्य ,तकनीकी और चिकित्सा जैसे विषय हिंदी में पढ़ाए जायेंगे। मध्य प्रदेश इस सम्मेलन के निष्कर्षों का अक्षरश: पालन करेगा।''

इस सम्मेलन में ३९ देशों के १५०० से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया। अलग-अलग सत्रों में विचार-विमर्श किया गया। मा.प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के भाषण के प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं-

- यह हिंदी सम्मेलन महाकुंभ है।
- हिंदी भाषा की समृद्धि में मध्य प्रदेश का उल्लेखनीय योगदान है।
- भाषा की महत्ता प्राय: उसके लुप्त होने पर ही लगती है अत: हमें अभी से चेतना होगा कि हिन्दी की अस्मिता बनी रहे।
- यह प्रत्येक पीढ़ी का कर्तव्य है कि भाषाई विरासत को सुरक्षित रखते हुए भावी पीढ़ी को स्थानान्तरित करे।
- हिंदी के संवर्धन के लिए आंदोलन गैर - हिंदी मातृभाषा वालों ने चलाए।
- भाषा जीवन की तरह चेतन होती है। यह हवा के झोंके की तरह विचारों की सुगंध को पीढ़ी-दर-पीढ़ी समेटे चलता है।
- भाषा को तकनीक के अनुरूप परिवर्तित करना है। सबको जोड़ने वाली भाषा की ताकत को सामने लाना है।

विदेश नीति और हिंदी : सत्र की अध्यक्षता करते हुए सांसद श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी ने कहा कि ''स्वतंत्रता के पश्चात् दो दशकों तक विदेश नीति पर आभिजात्य नेताओं और नौकरशाहों का प्रभाव रहा। इसी कारण विदेश नीति की आधार शिला अँग्रेजी पर रखी गई, जो आज भी कायम है। विदेश मंत्रालय में आज भी यह अवधारणा बनी हुई है, कि जनमानस का विदेश नीति से क्या नाता है। भारत में लोगों और तंत्र के बीच संवाद की भाषा हिंदी होनी चाहिए, न कि अँग्रेजी। ७० प्रतिशत भारतीय हिंदी पढ़ते, लिखते है जबकि केवल २ प्रतिशत भारतीय अँग्रेजी जानते हैं।'' उन्होंने कहा कि हिंदी को केंद्रीय मंत्रालयों/संगठनों में लागू करने के लिए १९६३ में राजभाषा अधिनियम बनाया गया और इसके अनुपालन में लागू करने के लिए १९७६ में 'संसदीय राजभाषा समिति' का गठन किया गया। विदेश नीति को जन भावना के अनुरूप होना चाहिए। उन्होंने ध्यान दिलाया कि पासपोर्ट मैनुअल था अब उसकी हिंदी अनुवाद की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई है। इसे द्विभाषी बनाने की आवश्यकता है।

श्री ज्ञानेश्वर मुले ने हिंदी के प्रसार में राजनयिकों की भूमिका की चर्चा करते हुए संज्ञान दिलाया कि आम आदमी के लिए राजनयिक की भूमिका और उसके कार्य को समझने में काफी कठिनाई होती है। भारतीय भाषाओं के अधिक उपयोग से यह कठिनाई कम की जा सकती है। भारतीय राजनयिक विदेश में हिंदी बोलने से परहेज करते हैं। जबकि विश्व के सभी राष्ट्रों के राजनयिक अपनी भाषा में बात करते हैं। जब हम विदेशों में अपनी भाषा में बात करेंगे, तभी लोग हमारे राष्ट्रीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हितों, रुचियों और संस्कृति को समझ सकेंगे। यदि भारत सरकार की नीतियाँ हिंदी में आएँगी तो विदेश नीति भी इससे अनछुई नहीं रहेगी। सरकार को हिंदी पर एक विश्व नीति बनानी चाहिए। उन्होंने न्यूयार्क के कोंसुलावास में हिंदी में हो रहे कार्य के बारे में बताया।

श्री कुर्बान अली ने कहा कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने जब से देश की कमान सँभाली है, तब से हिंदी का कई अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रयोग प्रारंभ हुआ है। विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने विदेश मंत्रालय के कामकाज और विदेश नीति संबंधी लेखन कार्य को हिंदी में करने पर बल दिय है इसके लिए वे बधाई की पात्र हैं। पिछले चालीस वर्षो के दौरान आयोजित नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों का एक मात्र उद्देश्य हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र की कार्यालयी भाषा में सम्मिलित करना रहा है। किंतु इस दिशा में अपेक्षित प्रगति नहीं मिल पाई है। इसके लिए वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ के १९३ सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत यानि १२९ देशों के समर्थन की आवश्यकता है। जिस तरह से भारत के संयुक्त संघ में विश्व योग दिवस संबधित प्रस्ताव पर १७७ देशों ने अपनी सहमति दर्ज कराई, उससे उम्मीद बँधी है कि आनेवाले दिनों में हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा हासिल होने में मुश्किल नहीं आएगी। विदेश मंत्रालय की वेबसाइट पर हिंदी, अॅग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं के साथ क्षेत्रीय भाषाओं में भी जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

प्रो. गिरिश्वर मिश्र ने कहा कि विभिन्न स्वरूपों में हिंदी का प्रयोग भारत के पड़ोसी देशों और ऐसे देश, जिनमें भारतीय मूल के बहुत लोग रहते हैं, वहाँ होता है। यूरोप और अमेरिका में भी हिंदी की उपस्थिति अनेक रूपों में है। जिससे देशवासी गौरवान्वित होते है और पूरे राष्ट्र का मनोबल ऊँचा उठाता है। हिंदी सिखाने से ज्यादा भारत में इस बात की आवश्यकता है कि विदेशी भाषाओं को हिंदी माध्यम से सिखाने के लिए शिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ। अनुवाद और भाषातंर के संसाधनों में हिंदी और विदेशी भाषाओं के शब्दकोशों का विशेष महत्त्व है।

श्री अतुल खरे ने कहा कि बहुत से लोग सोचते हैं कि हिंदी में पर्याप्त शब्दों का अभाव है और वह अविकसित भाषा है। गलतियों के डर से हिंदी के प्रयोग में सामाजिक संकोच या लज्जा महसूस करते हैं। इसके लिए भारतीय दूतावासों/ मिशनों के माध्यम से हिंदी की अधिकाधिक पुस्तकों का वितरण किया जाना चाहिए।

प्राप्त अनुशंसाएँ-

१. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संकल्प।

२.संसदीय राजभाषा समिति द्वारा विदेश स्थित दूतावासों/मिशनों के निरीक्षण के संबंध में आनेवाली बाधाओं पर विचार किया जाना चाहिए।

३.विदेश मंत्रालय को मूल हिंदी में टिप्पण एवं अन्य कार्यों को करना चाहिए।

४.भारतीय राजनयिकों को हिंदी में बातचीत एवं कार्य करना चाहिए।

५. विदेशों में हिंदी के प्रचार -प्रसार के लिए केंद्रीय स्तर पर एक संस्था की स्थापना होनी चाहिए।

७. भारत द्वारा किए गए बहुपक्षीय और द्विपक्षीय संधि / करारों की हिंदी प्रति को भी मंत्रालय की वेबसाइट पर उपलब्ध करवाया जाना चाहिए।

प्रशासन में हिंदी : इस सत्र की अध्यक्षता मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने की। मुख्य वक्ता के रूप में श्री चंद्रकला पंडिया ने कहा कि अनुवाद दो संस्कृतियों का साझा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भावनात्मक संवाद है। ऐसे में दैनिक जीवन हो या शासन-प्रशासन, प्रत्येक स्तर पर इस संवाद से स्वराज की प्राप्ति हो। 'ट्रांसलेशन' का अर्थ पारवाहन है और 'अनुवाद' का अर्थ है किसी की कही बात को दूसरी भाषा में कहना। प्रश्न उठता है कि पारवाहन किसका? अर्थ, विचार, भाव या अनुभूति का? कार्यालयीन हिंदी अर्थ, विचार के पारवाहन पर केंद्रित होती है। प्रशासनिक स्तर पर यह पारवाहन पत्राचार व रपट लेखन, प्रश्नोत्तर आदि में देख सकते हैं।

कार्यालयीन हिंदी के अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में दो महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं, अधिकांश कार्यालयों में पहला बिंदु पत्राचार होता है और दूसरा बिंदु रपट बनाना, प्रश्नों के उत्तर देना है। ऐसी स्थिति में प्रथम दृष्ट्या अनुवादक को चाहिए कि वह संस्कृत की तत्समी प्रवृत्ति से मुक्त होकर हमारी संस्कृति के मुख्य केंद्र बहुवचनीयता की ओर उन्मुख होकर, देशज भाषाओं के सहज सर्वस्वीकृत शब्दों का इस्तेमाल करे।

प्रो. महेंद्र पाल शर्मा ने कहा कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अहिंदी भाषी नेताओं ने भी हिंदी को अपनाया। कार्यालयों में हिंदी अनुवादक के खाली पद भरे जायें।

प्रो. बृजकिशोर कुठियाला ने कहा कि अहिन्दी प्रांतों से हिन्दी प्रांतों में आये अधिकारियों को तीन भागों में विभक्त कर, पहला, जहाँ का व्यवहार हिंदी में नहीं है, जैसे कि दक्षिण भारत के सभी प्रांत, असम के सभी प्रांत और उत्तर पूर्व भारत के भी कई प्रांत आते हैं। दूसरा, ऐसे प्रांत जहाँ हिंदी को समझने में कठिनाई का अनुभव कम होता है, जैसे कि गुजरात, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम एवं त्रिपुरा आदि। तीसरा, ऐसी भाषा जो हिंदी से काफी मिलती-जुलती है, उसको हमने तीसरे वर्ग में रखा है इसके अंतर्गत हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर, पंजाब। इस क्षेत्र के लोगों को, जो हिंदी समझ तो सकते हैं, लेकिन उसे लिख-पढ़ नहीं सकते, हिन्दी सिखाई जाये।

अनुशंसाएँ :

१.संस्कृत तत्सम शब्दावली से उन्मुख होकर देशज भाषाओं के सरल शब्दों और सरलीकृत शब्दों का उचित प्रयोग किया जाना चाहिए।

२. अपनी मातृभाषा में हस्ताक्षर करें।

३. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, संघ लोक सेवा आयोग या राज्य स्तर की प्रतियोगिताओं में मूल रूप से प्रश्न-पत्र हिंदी में बनाए जाए, आवश्यक हो तो अँग्रेजी का पाठ उपलब्ध कराया जाए।

४. शब्दावली आयोग को निर्देश दिया जाए कि हिंदी के शब्द निर्माण में व्यावहारिक शब्दों पर बल दिया जाए।

५. अल्पकालिक पारंपरिक हिंदी शिक्षण पर जोर दिया जाए। तथा हिंदी में काम करना, बोलना, लिखना, पढ़ना सिखाया जाए।

विज्ञान क्षेत्र और हिंदी : सत्र के अध्यक्ष केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ. हर्षवर्धन ने कहा कि पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने 'जय-जवान, जय किसान' के साथ 'जय विज्ञान' को जोड़ा था। हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी सदैव वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित करते हैं। सम्मेलन वास्तव में भारत का इतिहास बनने की क्षमता रखता है और ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। आज देश के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अंतर्गत विभिन्न संस्थानों एवं प्रयोगशालाओं में सोशल मीडिया, यू-ट्यूब एवं फेसबुक के माध्यम से वैज्ञानिक जानकारी हिंदी भाषा में जनता को उपलब्ध करायी जा रही है। देश में प्राचीन काल से ही विज्ञान एवं चिकित्सा की समृद्धशाली परंपरा रही है और भारत से वैज्ञानिक ज्ञान, पश्चिमी देशों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहुँचा और फिर वही ज्ञान विदेशी भाषाओं के माध्यम से भारत में वापस आया।

डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने तीन मुख्य विषयों पर बात की। पहल- हिंदी वैज्ञानिक साहित्य अवतरण। दूसरे, हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के पल्लवन, पुष्पन तथा फलन। तीसरे,हिंदी में विज्ञान लेखन की भावी संभावनाएँ।

डॉ. नरेंद्र कुमार सहगल ने कहा कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिक विभाग द्वारा विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए भारत ज्ञान-विज्ञान जत्थों का आयोजन किया गया, जिससे कि विज्ञान की पहुँच देश के सुदूर क्षेत्रों तक जनभागीदारी के साथ हुई। इसी विभाग द्वारा आकाशवाणी के सौजन्य से निर्मित १४४ कड़ियोंवाले रेडियो धारावाहिक 'मानव का विकास' का निर्माण किया गया, जो एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान संचार का दस्तावेज है।

प्रो. मोहनलाल छीपा ने ऐसे तीन शिक्षकों की जानकारी दी जिन्होंने देश में पहली बार हिंदी माध्यम से अपना स्नातकोत्तर (एम.डी.) का शोध ग्रंथ लिखा है। उन्होंने हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा को प्रोत्साहन देने संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

डॉ. बालकृष्ण सिन्हा ने कहा कि प्राचीन काल से ही भारतीय आध्यात्मिक तत्त्व चिंतन और भौतिक विज्ञान के अभूतपूर्व विकास से प्रभावित होकर सारा संसार मुक्तकंठ से उसका गान करता था। संकल्पनाओं और पदार्थों की विवेचना के लिए समृद्ध वैज्ञानिक शब्दावली थी। प्राचीन भारत में गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, दर्शन, अर्थशास्त्र, भाषाशास्त्र आदि की पारिभाषिक शब्द संपदा काफी समृद्ध थी। थिसॉरस की जिस पद्धति को अब पश्चिम में व्यापक स्वीकृति मिल रही है, वह संस्कृत भाषा की हजारों वर्षों पुरानी निघंटु पद्धति का ही रूपांतरण है। शब्दों के निगमन के कारण इन्हें निघंटु कहा जाता है। आयोग द्वारा अब तक लगभग नौ लाख तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्यायों का निर्माण किया जा चुका है, जो आयोग द्वारा प्रकाशित विभिन्न प्रकाशनों में उपलब्ध हैं। मानक शब्दावली के काफी शब्द एवं पर्याय वेबसाइट पर भी उपलब्ध हैं।

श्री सुभाष चंद्र लखेड़ा ने कहा भारत सरकार में अनेक मंत्रालय एवं संस्थाएं हैं। ऐसी प्रमुख संस्थाओं में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान प्रसार, राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं सूचना संसाधन संस्थान और राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद् शामिल हैं। विज्ञान सृजन की तरह विज्ञान संचार का काम भी एक मिशन के रूप में लिया जाना चाहिए। अगर विज्ञान संचार करना है तो उसमें हमारे मीडिया की भूमिका भी सकारात्मक होनी चाहिए। वर्तमान में डीआरडीओ प्रयोगशालाओं से ४५ गृह पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इन पत्रिकाओं में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषयक मौलिक लेख प्रकाशित किए जाते हैं। रक्षा अनुसंधान एवं युद्धविज्ञान से संबंधित विज्ञान लेखन को बढ़ावा देने के लिए सन् १९८२ में 'रक्षा मंत्रालय पुरस्कार' योजना आरंभ की गई है एवं १९८५ से 'रक्षा अनुसंधान एवं विकास राजभाषा पुरस्कार' की शुरू की गई है।

अनुशंसाएँ :

१. देश के सभी वैज्ञानिक, चिकित्सा एवं अभियांत्रिकी प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों में विज्ञान संचार इकाई की स्थापना की जाए एवं विज्ञान संचार के लिए विज्ञान प्रयोगशालाओं में पदों का सृजन कियां जाए।

२. विज्ञान एवं तकनीकी प्रयोगशालाओं द्वारा सोशल मीडिया पर हिंदी में विज्ञान सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।

३. हिंदी में दैनिक विज्ञान समाचार-पत्र का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकाशन हो।

४. जिन दो विषयों जैसे सूचना प्रौद्योगिकी एवं अंतरिक्ष में भारत का कार्य महत्त्वपूर्ण है, उसमें अधिकाधिक मूल जानकारी हिंदी में प्रकाशित की जाना चाहिए।

५. चिकित्सा क्षेत्र में नियामक संस्थाओं द्वारा एक निश्चित समय-सीमा में सभी चिकित्सा परीक्षाओं में हिंदी भाषा में लिखने की छूट प्राप्त हो। चिकित्सा शिक्षण द्विभाषीय माध्यम से हो।

६. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नवीन एवं समसामयिक विषयों पर योजनाबद्ध तरीके से पुस्तकों को विकसित किया जाए।

७. डिजिटल इंडिया के तहत प्राचीन भारत के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित दुर्लभ ग्रंथों जैसे 'भारत की संपदा' आदि साहित्य को निःशुल्क वेबसाइट पर उपलब्ध कराया जाए, इसके अलावा विज्ञान विश्वकोश का प्रकाशन हिंदी में किया जाए।

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी: सत्र की अध्यक्षता श्री अशोक चक्रधर ने की। मुख्य वक्ता सर्वश्री हर्ष कुमार ने 'हिंदी के विकास में संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका', विजय कुमार मल्होत्रा ने, 'हिन्दी में शिक्षण-प्रशिक्षण और ई-अधिगम (ई-लर्निंग)', आदित्य चौधरी ने 'कम्प्यूटर, ई-मेल, इंटरनेट और डिजिटल इंडिया में हिंदी', बालेंदु शर्मा दधीच ने 'संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी : रोजगारमूलक संभावनाएँ' एवं सुजय लेले ने 'देवनागरी के संरक्षण और संवर्धन के लिए इंस्क्रिप्ट' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए।

अनुशंसाएँ :

१. डिजिटल इंडिया का लक्ष्य हो कि आम आदमी भी अपने स्मॉर्टफोन के जरिए दिन-प्रतिदिन के कार्य सुगमता से कर सके।

२.भारत के प्रत्येक घर में डिजटिलाइजेशन को पहुँचाने के लिए कम्प्यूटर की भाषा हिंदी होनी चाहिए।

३. भावी कम्प्यूटर संवादात्मक होने चाहिए, जो कम्प्यूटर प्रयोक्ताओं की समस्याओं को सुनकर उनका समाधान दे सके।

४. हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए एक वैश्विक विषयवस्तु प्रबंधन प्रणाली बने, ताकि भाषा और लिपि के मानकीकरण की समस्या दूर हो सके।

५. विदेशी भाषाओं में दक्षता हेतु उन भाषाओं की परीक्षाएँ विश्वभर में आयोजित होती हैं।

६. भारत सरकार ने जो सर्च इंजन हिंदी में बनाया है, वह आम जनता तक पहुँचाया जाए। तथा बीमा, चिकित्सा बैंक आदि क्षेत्रों में हिंदी कम्प्यूटर प्रणाली की बाधाएँ शीघ्रातिशीघ्र दूर की जाएँ।

विधि एवं न्यायिक क्षेत्र में हिंदी और भारतीय भाषाओं का प्रयोग : सत्र की अध्यक्षता पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी ने की। मुख्य वक्ता श्री शंभूनाथ श्रीवास्तव ने कहा कि हिंदी को भी जनभाषा से न्यायालय की भाषा बनाकर न्यायिक कार्यों में विधि व्यवस्था के अंदर संवैधानिक दायरे में वर्तमान परिस्थितियों में सभी कार्य में उच्च न्यायालय तक प्रयोग करने की तुरंत अनुमति दी जानी चाहिए। उच्च न्यायालय के शपथपत्रों व अभिवचनों को भी हिंदी देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए।

श्री दयाशंकर मिश्र ने बताया कि न्यायालय में अँग्रेजी के तर्कों से वादकारियों का शोषण हो रहा है, जिसे समाप्त कर वादकारियों को उसकी निजभाषा में न्याय मिले।

श्री श्रीपति मधुकर खिखड़कर ने कहा कि आजादी के ६८ वर्ष बाद भी विधि क्षेत्र में न्यायिक कार्य हिंदी भाषा में पूर्णतया दिशाहीन है। मध्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रदेश के उच्च न्यायालय व उसकी दो खंडपीठों में हिंदी देवनागरी में कार्य होना बंद हो गया है। उत्तर प्रदेश की भाँति मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय में भी हिंदी स्थापित हो सकती है।

श्री केशरीनाथ त्रिपाठी ने कहा उच्च न्यायालयों की भाषा हिन्दी बनाने के लिए वर्तमान परिस्थितियों में हमें योजनाबद्ध प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिऐ सुदृढ़ इच्छाशति और मानसिकता में परिवर्तन लाकर सकारात्मक दृष्टि से सोचना होगा। भारत के संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अंतर्गत कार्रवाई कर, हिंदी भाषा के प्रयोग को अनुमन्य किया जा सकता है। विधि क्षेत्र में हिंदी भाषा के पठन-पाठन की आवश्यकता है। श्री त्रिपाठी ने एक ऐसा 'मानक विधि शब्दकोश' बनाने का आग्रह किया, जिसमें हिंदी-अँग्रेजी भाषा के विधिक शब्दों के भारत के संविधान में अनुमन्य सभी भाषाओं के शब्दार्थ, पर्यायवाची व समानांतर शब्द तथा उनके अर्थ हों और आवश्यकतानुसार नए शब्दों का निर्माण भी किया जाए। इससे अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिंदी के प्रयोग में सुविधा होगी।

अनुशंसाएँ :

१. उन प्रदेशों में जहाँ उच्च न्यायालय में व उस प्रदेश की भाषा में वादपत्र, शपथपत्र, अभिवचन तथा अभिलेख या तर्क प्रस्तुत करना अनुमन्य है, वहाँ हिंदी में भी आदेश, निर्णय व अज्ञप्ति दिए जाने के लिए संविधान के अनुच्छेद ३४८ (२) की व्यवस्था में कार्य करने की अनुमति सभी उच्च न्यायालयों को तुरंत दी जाए।

२. राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत अब तक कानून बने सभी संकल्पों को, जो उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों में हिंदी को स्थापित करने के लिए संसद से पारित हो चुके हैं उनको समयबद्ध रूप में भारत सरकार क्रियान्वित करने की व्यवस्था सुनिश्चित करने की दिशा में कदम उठाए।

बाल साहित्य में हिंदी : अध्यक्षता डॉ. बालशौरि रेड्डी ने की। मुख्य वक्ता के रूप में सर्वश्री श्याम सिंह शशि ने 'हिंदी का बाल साहित्य तथा विश्व परिप्रेक्ष्य', वीणा गौतम ने 'हिन्दी बाल साहित्य में लोरी और शिशुगीत', मधु पंत ने 'हिंदी के बाल साहित्य में विज्ञान' एवं नंदलाल कल्ला ने 'हिंदी बाल साहित्य में कार्टून' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए।

सुझाव एवं अनुशंसाएँ :

१. बाल साहित्य अकादमी की स्थापना।

२. बाल साहित्य में देशी-विदेशी महापुरुषों, स्वतंत्रता सेनानियों, पौराणिक पात्रों से संबंधित जीवनियाँ, भारतीय संस्कृति तथा मानव मूल्य और वैश्विक साहित्य को यथा संभव स्थान मिलना चाहिए।

३. एन.सी.ई.आर.टी. और अन्य शैक्षणिक संस्थानों के पाठ्यक्रमों में बाल साहित्य को स्थान मिलने के साथ ही इसके निर्माण में बाल साहित्यकारों का सहयोग लेना चाहिए।

४. भविष्य में आयोजित होने वाले विश्व हिंदी सम्मेलनों के दौरान आयोजित होने वाले बाल साहित्य सत्र में विद्वानों के साथ ही बच्चों को भी आमंत्रित किया जाना चाहिए।

६. फिल्म सेंसर बोर्ड की भाँति बाल साहित्य के मानकीकरण और दृश्य माध्यमों में दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों का बच्चों की रुचि, आवश्यकता और योग्यता के अनुसार वर्गीकृत करने के लिए बाल साहित्य बोर्ड जैसी संस्थाओं का गठन होना चाहिए।

७. बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले साहित्य में अन्य भाषा के स्तरीय साहित्यों का अनुवाद और पुनर्लिखित साहित्यिक कृतियों को भी स्थान मिलना चाहिए। I भी है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अन्य भाषा-भाषी राज्यों में हिंदी : सत्र के अध्यक्षीय उद्‌बोधन में श्री शेषारत्नम् ने कहा कि विश्व हिंदी सम्मेलन का नारा 'हिंदी कल, आज और कल' का आशय स्पष्ट है कि हिंदी कल भी थी, आज भी है, और कल भी रहेगी। हिंदी संपर्क की भाषा होनी चाहिए।

प्रो. बी.वाई. ललितांबा ने कहा कि विश्व हिंदी सम्मेलन का स्लोगन (नारा) सार्थक है। स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को पराधीन भारत से लेकर स्वतंत्र भारत तक संपर्क की भाषा बनाया।

प्रो. एम. ज्ञानम् ने कहा कि हड़प्पा काल में हमें भाषा का सांकेतिक रूप देखने को मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि सांकेतिक संपर्क हड़प्पा संस्कृति में भी मौजूद थे। जैन, बौद्ध धर्म से लेकर हिंदी के कई रूप देखने को मिलते हैं।

प्रो. सुशीला थॉमस ने कहा कि हिंदी देश का एक सूत्र में पिरोनेवाली भाषा है। भारत बहुभाषी एवं सांस्कृतिक विशालता वाला देश है। भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार हिंदी के रूप अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन इनका स्रोत एक ही है।

डॉ. रामचंद्र राय ने कहा कि भारत में ६०० भाषाएँ हैं, जिनमें से २०० भाषाएँ पूर्वोत्तर में बोली जाती हैं। हिंदी सामान्य वर्ग की भाषा है। १९७२ में पूर्वोत्तर को पूर्वांचल के नाम से जाना जाता था। पूर्वोत्तर के भौगोलिक क्षेत्र चीन, तिब्बत, बर्मा और बांग्लादेश से घिरे हुए हैं। इनकी भाषा एवं बोलियों का प्रभाव भी पूर्वोत्तर पर पड़ा है। मिजोरम एवं आसाम, चीनी, तिब्बती कूनके का है। पूर्वोत्तर में हिंदी को सँवारने का कार्य सैनिकों, उत्तर भारत के व्यापारियों और फिल्मकारों ने किया है। पूर्वोत्तर में ईसाईयों ने रोमन के द्वारा हिंदी भाषा को लिपिबद्ध किया है। पूर्वोत्तर के विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर हिंदी पढ़ाई जाती है। पूर्वोत्तर में हिंदी विश्वविद्यालयों में भी हिंदी की समस्या नहीं है।

डॉ. वल्लभ राव ने कहा कि आंध्र प्रदेश में अधिकतम निजी विद्यालयों में हिंदी नहीं पढ़ाई जाती है, जो हिंदी के विकास में बाधा है।

अनुशंसाएँ :

१. स्वैच्छिक संस्थाएँ हिंदी भाषा के विकास के लिए पत्रिकाएँ इत्यादि का प्रकाशन करें।

२. वाद-विवाद एवं निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया जाना चाहिए।

३. हिंदी संस्थाओं के मध्य समन्वय की आवश्यकता है।

४. शब्दावली आयोग को हिंदी संस्थाओं से जुड़ना चाहिए।

५. हिंदी संस्थाओं को हिंदीत्तर विद्वानों से जोड़ें।

हिंदी पत्रकारिता और संचार माध्यमों में भाषा की शुद्धता : विषय प्रतिपादक वरिष्ठ पत्रकार श्री राजेन्द्र शर्मा ने कहा कि हिंदी पर संचार माध्यमों के माध्यम से प्रबल आक्रमण हो रहा है और दुर्योग से हिंदी के समाचार-पत्र इसका माध्यम बन रहे हैं। एक समय था जब एक संस्थान ने हिंदी के विकास में अहम भूमिका निभाई, आज वहीं संस्थान हिंदी के स्वरूप को बिगाड़ रहा है। जितने बड़े समाचार-पत्र हैं, उन सबने हिंदी के माध्यम से अपना साम्राज्य स्थापित किया, लेकिन आज उन्होंने हिंदी के समाचार-पत्र को द्विभाषीय बना दिया है और अँग्रेजी में सामग्री घरों में पहुँचा रहे हैं। हिंदी पहले 'भारतीयता' की अभिव्यक्ति का साधन थी अब 'इंडिया' की अभिव्यक्ति का साधन बन गई है।

सत्र की अध्यक्षा वरिष्ठ साहित्यकार एवं 'हिंदुस्तान' की पूर्व संपादक श्रीमती मृणाल पांडे ने अपना विरोध दर्ज करते हुए कहा कि इस सम्मेलन से साहित्य का नाता तोड़ दिया गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्यकारों को खारिज कर दिया गया है। सम्मेलन से साहित्य को खारिज करने का विरोध साहित्यकारों को ही नहीं, बल्कि पत्रकारों को भी करना चाहिए। मैं बीस साल से चिंता व्यक्त करती रही हूँ कि मीडिया के स्वामित्व पर विचार होना चाहिए। देश के ग्यारह संस्थानों ने अस्सी प्रतिशत मीडिया अपने हाथ में ले लिया है। अब संपादक संस्थान नहीं हैं। अब केवल आकर्षक छपाई और साज-सज्जा पर ध्यान दिया जाता है। भाषाई पत्रकारों के साथ भेदभाव का मुद्दा उठाते हुए कहा कि अँग्रेजी के पत्रकार हवाई यात्रा कर सकते हैं, लेकिन भाषाई पत्रकार को थ्री-व्हीलर के लिए भी अनुमति लेनी होती है। हिंदी के नाम पर 'विलाप' होता है। जमीनी सवाल है रोजी-रोटी। हिंदी में कुछ संस्थानों को प्रचुर मात्रा में राजाश्रय मिल रहा है।

वरिष्ठ पत्रकार व जनसत्ता के पूर्व संपादक श्री ओम थानवी ने कहा कि जो कुछ सत्र के संयोजक राजेंद्र शर्मा जी ने कहा उससे मैं सहमत हूँ।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री नरेंद्र कोहली ने कहा कि साहित्य और संचार माध्यमों कि समान आधार, विषय, चिंतन और विचार भी हो सकते हैं, किंतु वे अनिवार्य नहीं हैं। इन दोनों का समान और अनिवार्य आधार तो भाषा ही है। एक युग था, जब समाचार-पत्रों और साहित्य की भाषा में कोई विशेष अंतर नहीं था। क्योंकि तब पत्रकारिता और साहित्य में कोई दूरी नहीं थी। तब समाचार-पत्रों के माध्यम से साहित्य पाठक तक पहुँचा भी था। पत्रकारिता में राजनीति का महत्त्व तब भी था, किंतु वह राष्ट्रीय राजनीति थी और वह साहित्य की न विरोधी थी, न उससे दूर थी।

वरिष्ठ पत्रकार राहुल देव ने कहा कि इस सत्र का विषय 'भाषा की शुद्धता' नहीं, 'भाषा की स्वच्छता' रखते तो ज्यादा उपयुक्त रहता। हिंदी भाषा को लेकर मैं गहरे दर्द और निराशा से बात करता हूँ। लेकिन ऐसा मैं हिंदी प्रेम के कारण कहता हूँ। मुझे शुद्ध और प्रांजल हिंदी पसंद है। उर्दू और अँग्रेजी भी पसंद है। लगभग ५००० शब्द ऐसे हैं, जो तुर्की, अफगानी, फारसी के शब्द हैं। उनके बगैर हिंदी ही नहीं है। उर्दू-हिंदी सहोदरी हैं। एक ही गर्भ से पैदा हुई हैं। पाकिस्तान के भाषाविद् हैं तारिक रहमान, उन्होंने लिखा है कि उर्दू तो हिंदी से निकलती है। हिंदी मीडिया में आज जो हो रहा है, वह धीमा जहर जैसा है, जिससे हिंदी की हत्या हो रही है।

अनुशंसाएँ :

१. यह विश्व हिंदी सम्मेलन देश के सभी संचार माध्यमों ओर उनके प्रबंधकों/संपादकों/प्रमुखों से आग्रह करता है कि वो अपने-अपने संचार माध्यमों (सभी तरह के टी.वी. चैनल, समाचार-पत्र, रेडियो एफएम चैनल, विज्ञापन दाता, विज्ञापन एजेंसियाँ, डिजिटल मंच) से यह सुनिश्चित करें कि उनकी हर तरह की विषय वस्तु से हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं की अस्मिता के मूलरूप लिपि को कमजोर और खंडित करने वाली कोई भी बात न हो।

२. यह सम्मेलन भारत सरकार से यह अनुरोध करता है कि आयोग देश के सभी राज्यों और भाषाओं से जुड़े सभी पक्षों के साथ समन्वय और सहयोग करके समयबद्ध तरीके से योजना बनाए और काम करे। यह हर वर्ष संसद के सामने अपनी प्रगति का लेखा जोखा भी प्रस्तुत करें।

३. यह सम्मेलन भारत सरकार से आग्रह करता है कि देश की सभी निजी और सरकारी शिक्षा संस्थाओं में माध्यम, भाषा के रूप में मातृ/स्थानीय भाषाओं में शिक्षण अनिवार्य रूप से उच्चतम प्राथमिकता के साथ लागू किया जाए।

४. हिंदी सहित भारतीय भाषाओं की लिपियों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को लोप ना होने दे और किसी भाषा के संदेश को उसकी लिपि में ही संप्रेषित करना सुनिश्चित करे।

५. यह सम्मेलन इंडियन ब्रॉडकास्टर्स फेडरेशन (आई.बी.एफ.) और ब्रॉडकास्ट एडिटर्स एसोसिएशन (बी.ई.ए.) और इंडियन न्यूजपेपर सोसाइटी (आई.एन.एस.) और उनके जैसी सभी माध्यमों के संगठनों से अनुरोध करता है कि वे अपने-अपने माध्यमों और मंचों में हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं के अस्तित्व, अस्मिता, रूप और स्वच्छता को सुनिश्चित करें और उनके सवंर्धित करने में योगदान करें।

६. यह सम्मेलन संस्तुति करता है कि हिंदी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यमों के सम्यक और समग्र विकास के लिए अटल बिहारी वाजपेयी केंद्रीय हिंदी पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए। भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय को केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा देकर कार्यारंभ किया जाए। साथ ही महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पत्रकारिता पाठ्यक्रम के केंद्र देश के अन्य राज्यों में भी स्थापित किए जाएँ।

गिरमिटिया देशों में हिंदी : सत्र की अध्यक्षता गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिंहा ने की। डॉ. मनोहर पुरी ने कहा कि दास प्रथा के विकल्प के रूप में औप-निवेशकीय शक्तियों ने गिरमिटिया मजदूरी का प्रारंभ किया। प्रो. रामनरेश मिश्र ने कहा कि गिरमिटिया देशों की जातीय अस्मिता एवं संस्कृति की सूत्रधार हिंदी है।

श्री आर.के. सिन्हा ने कहा कि हिंदी के प्रचार में गिरमिटिया की बलवती भूमिका रही है। उन्हें जिन-जिन देशों में ले जाया गया, वहाँ उनके माध्यम से हिंदी पहुँची और विकसित हुई।

श्रीमती लीला देवी दुखन लछुमन ने गिरमिटिया देशों में हिंदी प्रचार-प्रसार की खुलकर प्रशंसा की। दूरदर्शन और चलचित्र हिंदी प्रचार के आकर्षक आधार बन गए हैं।

डॉ. सरिता बुद्ध ने 'रिश्ते-नाते की शब्दावली और गिरमिटिया' विषय को प्रतिपादित करते हुए कहा कि भोजपुरी भाषा का प्रारंभ भोपाल नगरी से शुरू होकर गिरमिटिया तक पहुँचा है। गिरमिटिया देशों में पाठशालाओं एवं महाविद्यालयों में अवधी-भोजपुरी भाषा में हिंदी को मिश्रित रूप में पढ़ाया जाता है।

श्रीमती मृदुला सिन्हा ने कहा गिरमिटिया देशों के प्रवासियों के द्वारा हिंदी को जीवित नहीं बल्कि गतिशील बनाने के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए।

विदेशों में हिंदी शिक्षण : सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रेम जनमेजय ने की। मुख्य वक्ता सर्वश्री मारिया नजेशी ने 'विदेशों में हिंदी-शिक्षण: एक मूल्यांकन', करुणा शर्मा ने 'विदेशों में हिंदी-शिक्षण और पाठ्य-सामग्री की एकरूपता', मोहम्मद इस्माइल ने 'विदेशों में हिंदी शिक्षण का सरकारी और गैर-सरकारी प्रयास' एवं श्रीमती गुलनाज अब्दुल मजीद ने 'अरब देशों में हिंदी शिक्षण' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए।

अनुशंसाएँ :

१. सी.बी.एस.ई. की तरह अंतरराष्ट्रीय स्तर के बोर्ड का गठन हो।

२. पाठ्यक्रम की एकरूपता हो परन्तु विभिन्न देशों के आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम निर्धारित हों।

३ . हिंदी शिक्षण में आधुनिक तकनीक के प्रयोग पर बल दिया जाए। इंटरएक्टिव, मल्टीमीडिया पर आधारित नई शिक्षण सामग्री के निर्माण में आवश्यकतानुसार विद्यामूलक और आर्थिक सहायता प्रदान की जाए।

४. विदेशों में अध्यापन करने वाले शिक्षक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्थानीय शिक्षकों के लिए कार्यशाला आयोजित करें।

५. ई-बुक लाइब्रेरी का निर्माण किया जाए।

विदेशियों के लिए भारत में हिंदी अध्ययन की सुविधा : मुख्य वक्ता डॉ. नंद किशोर पांडेय ने 'विदेशियों के लिए हिंदी प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं के सामंजस्य और विस्तार' की बात कही, किरण माला सिंह ने 'दूरस्थ प्रणाली द्वारा विदेशियों को हिंदी शिक्षण' एवं डॉ. विनोद बाला अरुण ने 'विदेशी छात्रों के लिए पाठ्यक्रम की एकरूपता' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए।

अनुशंसाएँ :

१. मानक भाषा/वर्तनी तय होनी चाहिए। ताकि विदेशी विद्यार्थियों को शब्द को पढ़ने, लिखने एवं उच्चारण में किसी भी प्रकार की दुविधा न हो।

२. पाठ्यक्रम में यदि संबंधित देश की जानकारी भी जोड़ ली जाए तो अच्छा होगा।

३. भाषा के साथ-साथ पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति, दर्शन, एवं अध्यात्म की जानकारी को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

४. भारत में विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी का शिक्षण कराने वाले विभिन्न संस्थानों के मध्य सामंजस्य होना चाहिए।

देश और विदेश में प्रकाशन समस्याएँ एवं समाधान : अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में श्री बल्देव भाई ने कहा कि भारत में पुस्तक प्रकाशन की परंपरा अत्यधिक प्राचीन है। पुस्तक जिस रूप में सामने आती है, उसके पीछे पूरी तकनीक है। भारत वैश्विक स्तर पर तीसरा बड़ा प्रकाशक देश है। भारत में प्रतिवर्ष १ लाख से अधिक नई पुस्तकें प्रकाशित होती हैं।

श्री राजनारायण गति ने कहा कि मॉरीशस में सालाना औसतन ५ पुस्तकें प्रकाशित होती है। वहाँ पुस्तक के संपादन, संशोधन, प्रूफशोधन में समस्याएँ आती हैं। इस संदर्भ में व्यावसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जिससे हिंदी को विस्तार मिल सके। भारत में प्रकाशन खर्च कम है, लेकिन मॉरीशस में यही खर्च काफी बढ़ जाता है। साथ ही वहाँ पर पुस्तकों का बाजार उपलब्ध नहीं है। १२ लाख की आबादी के देश में एक भी हिंदी अखबार नहीं है क्योंकि पढ़नेवाले काफी कम हैं। मॉरीशस तथा विदेशों के बच्चों के लिये हिंदी में पुस्तकें तैयार होनी चाहिए।

डॉ. ऋता शुक्ला ने कहा कि फादर कामिल बुल्के कहते थे कि 'चार जने बैठो तब भी हिंदी के लिये कार्यशालाओं का आयोजन करो ताकि विश्व पटल पर हिंदी महारानी की तरह स्थापित हो जाए। हिंदी, संस्कृत की बिटिया है।'

अनुशंसाएँ:

१. विज्ञान, प्रबंधन, वित्त, अर्थशास्त्र, चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि ज्ञान-विज्ञान की मौलिक-प्रामाणिक हिंदी पुस्तकों के लेखन के लिये लेखकों को परियोजना देकर इनके प्रकाशन-वितरण की व्यवस्था भी करना चाहिए। हिंदी में प्रमाणिक शब्दकोशों और विश्वकोश का निर्माण होना चाहिए।

२. पुस्तक संस्कृति का विकास करने के लिये प्रभावी कदम उठाने चाहिए। पुस्तकें पढ़ने के लिये प्रोत्साहन कार्ययोजना बनाकर पुस्तकालयों को सबल और सुदृढ़ करना चाहिए। ई-पुस्तकालयों को भी विकसित किया जाना चाहिए।

३. हिंदी पुस्तकें शुद्ध और निर्दोष प्रकाशित हों, इस हेतु संपादन-संशोधन-प्रूफशोधन के विधिवत् व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध की जानी चाहिए।

४. अप्रवासी हिंदी लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिये कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ। तदुपरांत विभिन्न लेखन प्रतियोगिताएँ करके उनमें से पुरस्कृत पांडुलिपियों का प्रकाशन किया जाए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

५. विभिन्न राज्य ग्रंथ अकादमियों और सरकारी प्रकाशनों की उपलब्धता सुलभ हों। उनमें पुस्तकें प्रकाशित करने की प्रक्रिया सरल की जाए।

६. विदेशों में पुस्तकें हवाई डाक से भेजना अत्यंत व्ययसाध्य है। अत: समुद्री डाक से पुस्तकें भेजने की जो सुविधा पहले उपलब्ध थी, उसे पुन: प्रारंभ किया जाये।

अंतिम दिन १२ सितंबर को विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन पर हिंदी के क्षेत्र में विशेष योगदान देनेवाले ३१ विद्वानों, जिनमें सर्वश्री अनूप भार्गव (अमेरिका), स्नेह ठाकुर (कनाडा), हैंस बर्गर वैसलर (जर्मनी), अकिरा ताकाशाही (जापान), उषा शुक्ला (दक्षिण अफ्रीका), कमला रामलखन (त्रिनिदाद व टोबैगो), नीलम कुमार (फिजी), देइमान्त्स वालास्यूनस (लिथुआनिया), सार्तजे वेरवेक (बेल्जियम), अजामिल माताबादल, गुलशन सुखलाल (मॉरीशस), कैलाश बुधवार, उषा राजे (यूके), इंदिरा गजिएवा (रूस), दशानायके मुडियान्सेलाग इंदिरा (श्रीलंका), सुरजन परोही (सूरीनाम), इस्माइल (सऊदी अरब), प्रभात कुमार भट्टाचार्य, एन. चंद्रशेखरन, हरिराम मीणा, माधुरी जगदीश, के.के. अग्रवाल, अन्नू कपूर, अहेम कामई, परमानंद पांचाल, आनंद मिश्रा, नागेश्वर सुंदरम, मधु धवन, अनंत राम त्रिपाठी, प्रभाकर श्रोत्रिय, व्यासमणि त्रिपाठी, आदित्य चौधरी, को 'विश्व हिंदी सम्मान' से अलंकृत किया गया।

इस अवसर पर समापन समारोह के मुख्य अतिथि केंद्रीय गृह मंत्री श्री राजनाथ सिंह ने कहा कि हिंदी ने ही स्वतंत्रता आंदोलन को राष्ट्रीय स्वरूप दिया। फिर भी यह अब तक राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी। इसकी वजह रही कमजोर नेतृत्व।

तीन दिन तक चले विभिन्न सत्रों में हुये गहन विचार-विमर्श से निकली अनुशंसाएँ संयोजकों द्वारा पढ़कर सुनाई गई, जिन्हें विदेश राज्यमंत्री जनरल डॉ. वी.के. सिंह ने उपस्थित विशाल हिंदी प्रेमी समुदाय के समक्ष अनुमोदन के लिये प्रेरित किया और वे सर्वसम्मति से स्वीकृत हुईं। इसमें भारत समेत ३९ देशों के प्रतिनिधियों और भारतीय विद्वानों ने हिस्सा लिया।

द्वारा : सम्पादकीय विभाग
साहित्य अकादमी, भोपाल

देश के प्रति निष्ठा सभी निष्ठाओं से पहले आती है और यह पूर्ण निष्ठा है, क्योंकि इसमें कोई प्रतीक्षा नहीं कर सकता कि बदले में उसे क्या मिलता है।

-लाल बहादुर शास्त्री

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिट्ठी

'साक्षात्कार' मई-२०१८ का अंक प्राप्त हुआ धन्यवाद। कुछ आलेख पठनीय है। फोटो से पता चला कि आरेछा महोत्सव और पुस्तक लोकार्पण का कार्यक्रम बखूबी सम्पन्न हुआ है। पत्रिका प्राप्त होने के कारण ही पता चलता है कि पत्रिका कितनी अच्छी तरह से प्रकाशित हो रही है। पत्रिका का नाम साक्षात्कार सत्य साबित होता है। उत्तम पत्रिका हेतु साधुवाद। **बी.एस. शांताबाई, प्रधान सचिवा,** 178, IV Main Road, VI Cross, Chamarajpet, Bangalore- 560018 Phone: 26617777

'साक्षात्कार' मासिक जून अंक २०१८ अंक क्रमांक ४६२ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत २०७५ आवरण पृष्ट पर खुले आसमान में विचरते पक्षी यह संकेत दे रहे है कि पत्रिका में खुले विचारों का संकलन कर उदारमन से संपादन किया गया है। पढ़ने पर यह भी पाया कि इसके लेखकों तथा पाठकों की वर्तमान के प्रति उठी हूक को बड़े ही बेवाक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। माँ शारदा की प्रार्थना में शब्द शिल्पियों को दिए वरदान का अलौकिक चित्रणा डॉ श्रीकांत ने अति मार्मिक ढंग से किया है। माँ की कृपा हो जाय तो व्यक्ति रचनाकार, वैज्ञानिक, गीतकार, संगीतज्ञ जैसी विभूतियाँ हस्तगत कर सकता है। पूर्व प्रधानमंत्री एवं भारत के रत्न अटल बिहारी जी की छः पंक्तियाँ ही वर्तमान के सवालों तथा संभावनाओं का सागर उड़ेल देती हैं। संपादकीय में वामपंथी विचारधारा के उदभव तथा पराभव का सुन्दर चित्रण पहली बार पढ़ने व समझने में आया है। साक्षात्कार स्तंभ में अरुणाकुमार भगत द्वारा पूछे प्रश्नों का जवाब देते हुए मंजु अग्रवाल, शैलेन्द्र श्रीवास्तव एवं शान्ताकुमार ने भारतीय दर्शन और लोकतंत्र की आस्थाओं को पुष्ट किया है। जहाँ सद सृजन साहित्य का होता है वहाँ झूठ हार ही जाता है। भारतीय इतिहास दर्शन का निर्धारणकर्ता है वह काल गणना में कैद नहीं होना चाहता। जिसे आकाश में उड़ना नहीं आता वह मुंडेरों पर ही फुदकते रहते हैं। डॉ. धीरेन्द्र शुक्ल का लेख 'चरित्र की रचना प्रक्रिया का व्याकरण' समझने लायक है। बुन्देलखण्ड के कवि श्री ईसुरी तथा बाजीराव मस्तानी के विषय में जानकारी मिली। इस बार सोलह काव्य रचनाए तथा अश्वत्थामा सब समझता है नई ऊर्जा देती है। कहानी 'चुनौती' तथा रंजना चितले की 'रामप्यारी' समाज के व्याप्त कलुषित भावना से उपजी कुंठा को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। खोजियों के लिए पत्रिका साहित्य सृजन, देश धर्म और अध्यात्म है जिनमें कल्पना के पंख नहीं उनके लिए केवल पुस्तक या पत्रिका है। **ओमप्रकाश खुराना, ३३/३३, हरियाणा हैन्डलूम न्यूमार्केट भोपाल-४६२००३**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'साक्षात्कार' का फरवरी २०१८ का अंक प्राप्त हुआ, धन्यवाद। इसमें आए आलेख एक से बढ़कर एक है। धरोहर व पुनर्पाठ में आई रचनाएँ वास्तव में हमारी धरोहर ही है वहीं अंक में आई तीनों कहानियाँ भी रोचक व सटीक हमेशा की तरह इस अंक में आया। संपादकीय भी सार्थ व समीचीन। 'काव्यखण्ड' की रचनाओं ने भी प्रभावित किया। सभी कविताएँ स्तरीय ओर सटीक तो है ही मर्मस्पर्शी भी। स्तरीय संपादकीय, संपादक संयोजन के लिए आप व पूरे मंडल को बधाई शुभकामनाएँ।

'साक्षात्कार' का अप्रैल २०१८ अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद। यह अंक पठनीय मननीय के साथ संग्रहणीय भी लगा। अंक में आए आलेख यथा श्रीरामचरित मानस में देववाद और कर्मवाद, स्वधीनता संग्राम में अल्पज्ञात हिन्दी कवयित्रियों का योगदान तथा बलिदानी चेतना और युगबोध के कवि, श्री माखनलाल चतुर्वेदी पढ़कर मन गदगद हो गया। काव्यखंड की रचनाएँ भी स्तरीय और मार्मिक लगी तथा तीनों कहानियाँ भी सार्थ और समीचीन। अंक में आई पुस्तक समीक्षाएँ भी सार्थक एवं मुतमन से हुई हैं, और अंत में चार खंडों में आपकी संपादकीय की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। **मदन देवड़ा, तराना, उज्जैन (म.प्र.)**

'साक्षात्कार' का मई २०१८ अंक प्राप्त हुआ आभारी हूँ, कृतज्ञ हूँ। पुनर्पाठ के अन्तर्गत महावीर प्रसाद द्विवेदी का लेख अंक की उपलब्धि है। आचार्य द्विवेदी जी का लेख आज भी प्रासंगिक है। आचार्य द्विवेदी जी सरस्वती के इन संपादकों में थे जिन्होंने नेहरू तक के लेख को 'सरस्वती' में अस्वीकृत कर दिया था, वहीं निराला तक की कविता 'जुही की कली' कविता लौटा दी थी जो लौटाये जाने से भी चर्चित भी हुई थी। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रबंधक चिंतामणि घोष थे जो उनके संपादन में कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे। आज तो मालिक ही संपादक बन बैठे हैं। पुनर्पाठ में धर्मपाल का लेख शिक्षा के नये आयामों को उद्घाटित करता है। डॉ. उदय प्रताप सिंह का केदारनाथ सिंह पर लेख केदार जी का नया मूल्यांकन प्रस्तुत करता है ठा. गोपाल शरण सिंह पर लेख भी पठनीय है। उनकी एक सुपुत्री भी इला. में हैं जो अच्छी कवियित्री हैं। संपादकीय गम्भीर बौद्धिक है। **विवेक सत्यांशु, १४/१२ शिवनगर कालोनी, अल्लापुर, इलाहाबाद - २११००६, मो. ७०६८३२७९८७**

'साक्षात्कार' मई २०१८ का अंक मिला। संपादकीय पढ़ा। विचारों में उथल-पुथल मची भारतीय संस्कृति का चीरहरण, आधुनिक साधन, आधुनिक व्यक्तित्व दोनों मिलकर कर रहे हैं। सत्य सुनने तक को तैयार नहीं है बल्कि नकारने को तत्क्षण तत्पर रहते हैं। भौतिकवादी, विदेशी संस्कृति की चिरोरी करने वाले आधुनिकता का खोल ओढ़ने वाले, अपनी माँ को छोड़कर विदेशी रमणी की आराधना को लपलपाते रहते हैं। क्यों? क्योंकि जिन्होंने जन्म से ही बन्द डिब्बे का दूध, बोतल से पान किया है वह ममतामयी माँ के आँचल के स्तन पान का आनन्द कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते है। न ही कभी रसास्वादन कर सकते हैं। उनमें ममत्व अपनत्व, निजत्व हो ही नहीं सकता है, वे तो ठूँठ की तरह रुखे-सूके काठ हैं। उनमें अमृता बेल की रसवत्ता हो ही नहीं सकती। वह सम निरस, विरस हैं। उनमें समरसता के श्रोत सूखे हैं। नर होकर भी जीवन्त नर कंकाल है। सोते को जगाया जा सकता है चिमाने (जगाने वाले) को नहीं। इन अज्ञानियों को मिट्टी के कोरे घड़े का शीतल जल, फ्रीज की प्लास्टिक बोतल के समक्ष फीका लगता है। इनकी आधुनिकता का रम्म मिथ्या संतोष तो दे सकता है। हितकारी नहीं हो सकता। ऐसे प्राणियों को जगाने की पहल बधाई योग्य है। पत्रिका के शोधपरक लेख ज्ञान वर्धक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। डॉ विमल कुमार जी की गजले मन को छू गई। 'क्या निभा पाओगे रिश्ते, वो गर मक्कार हो गये।' प्रो. बलवन्त जानी जी की कहानी, जानी मानी, पहचानी सी, मेरी अपनी, जन-जन के शैशव की कहानी प्रतीत होती है। ७० वर्ष पूर्व की स्मृतियाँ वह गाँव, पीपल की छाँव, वह कुआँ वह बावड़ी पनघट, प्रकृति की सहज स्नेहमयी गोंद, बाड़े में रमाँती हुई स्वस्थ दूधदात्री गायों का चित्र चित्रित होकर नाना विम्ब विम्बित करता है। उन्हें ऐसी कहानी रचने की हार्दिक बधाई। देवी नागरानी की कहानी 'एक मैं एक वो' नारी दुर्दशा का सजीव चित्रण मन को झकझोर देता है, ठगा सा ठिठका देता है। कुछ सोचने, कुछ करने को विवश कर देता है। पश्चाताप कहानी भौतिकवादी संस्कृति पर कुठाराघात करती है। सुरेन्द्र नायक जी की कहानी में बुन्देली संस्कृति उछल कूद करती विहँसती है, पर पलभर में ही विसूरती है। अपराध बोध ग्रसित होकर प्रलाप करती है क्योंकि महत्त्वाकाक्षाएँ और सतरंगी सपने नैसर्गिक सम्वेदनाएँ सोख लेती है। यह आधुनिकता की देन है कि माँ-बाप ठूँठ नजर आते हैं। तना को फल तो दिखाई देते हैं जड़ों को विसरा देता है। उपेक्षा करता है। जिन्होंने वटवृक्ष बनकर शीतल छाँव दी है उन्हीं की देन सन्तानों का वर्तमान है। वर्तमान के ऊहापोह में अतीत खो गया है। सोचने को विवश करता है। क्या थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी। बधाई।

डॉ. के.एल. वर्मा. बिन्दु १६३, कला निकेतन नीरजानगर -२ जे.के. रोड़ भोपाल म.प्र. पिन - ४६२०२१ मो. ९४२५०७९४९३

'साक्षात्कार' मई २०१८ की एक प्रति सादर प्राप्त हुई। इस अंक में समाहित सभी आलेख/काव्य पाठखण्ड /कहानी/अनुवाद/समीक्षा पठनीय/संग्रहनीय हैं। इस अंक में 'आजकल के हिन्दी कवि और कविता', 'भारतीय साहित्य का भावनात्मक अन्तः संबंध', 'प्रत्यभिज्ञा-दर्शन और कामायनी' ग़ज़ल, मायावी बह्माण्ड' सराहनीय है। पत्रिका के नाम से ही स्पष्ट है कि यह साहित्य की हर विधा से पाठकों को रू-ब-रू कराती है। आजकल की यांत्रिक जीवन में इस प्रकार के साहित्यिक लेख पाठकों को भारत की साहित्यिक धरोहर से परिचय कराती है। संपादन मण्डल को साधुवाद। शुभकामनाएँ। Dr. P.R. Vasudevan, G-4, Akahahayaflats, 53/55, Irusupa Steet, ICE House, Triaicane Chennai, Mob. 944417045.

'साक्षात्कार' का जून १८ अंक प्राप्त हुआ। आपके संवादकीय में दक्षिणपंथी, वामपंथी साहित्य एवं इनके साहित्यकारों का आपने यथार्थ विश्लेषण कर अपनी स्पष्टवादिता प्रखर रूप से सिद्ध कर दी है। **डॉ. ओंकारलाल शर्मा 'प्रमद' साहित्य कुटीर, नम्बरदार गली विदिशा रोड, अशोकनगर म.प्र., पिन- ४७३३३१ मो. ९४२४४४५८०१**

'साक्षात्कार' अप्रैल २०१८ अंक प्राप्त हुआ। दत्तोपंथ जी ठेगड़ी मजदूर आन्दोलन से जुड़े व्यक्ति थे, उन्होंने भारतीय मजदूर संघ के माध्यम से मजदूरों के हितों के लिये अत्यधिक संघर्ष किया था। आपने उनकी पुस्तक 'प्रस्तावना' का पुनर्प्रकाशन कर एक प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने विश्व के मजदूर आन्दोलन का गम्भीर अध्ययन के साथ हिन्दू मुस्लिम एकता पर अपनी निर्भीक कलम चला कर स्पष्ट लिखा कि ''सच्चाई तो यह है कि मुसलमानों की सुरक्षा हिन्दू राष्ट्र में ही है,'' मुस्लिम देश पाकिस्तान में मुसलमान जितना असुरक्षित है उसके मुकाबले हिन्दुस्तान में नहीं है, क्योंकि हिन्दू कौम में आक्रमक वृत्ति नहीं है और वह असहिष्णु भी नहीं है। उन्होंने भारतीय इतिहास के अलावा विश्व इतिहास और वर्तमान इतिहास का भी गहन अध्ययन किया। वास्तव में हमें इतिहास यह बताता है कि किन कारणों से हम गिरे थे और किन कारणों से हमारा उत्कर्ष हुआ था। अगर हम इतिहास के माध्यम से इनको समझ जाते हैं तो आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन होता है। आपने मई अंक की संपादकीय में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का संस्मरण दिया जिसमें लिखा कि द्विवेदी जी के पड़ोस में एक विक्षिप्त बालक ने प्रश्न किया था कि मनुष्य को दो आँखे पीछे की ओर देते तो वह पीछे का भी देख सकता था। उसका उत्तर द्विवेदी जी ने यहीं दिया था। 'किसी भी जीवंत राष्ट्र व्यक्ति और समाज के लिये उसके पीछे की आँखे उसका इतिहास होती है।' वास्तव में दत्तोपंथ जी ठेंगड़ी ने पिछला इतिहास बताकर भारतीय मजदूर आन्दोलन की क्या पूरे भारतीय समाज का मार्ग दर्शन किया है। प्रस्तावना का प्रकाशन कर साक्षात्कार के माध्यम से कर्तव्य पूरा किया है।

आपने श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय से श्री मुहम्मद हारून रशीदखान की बातचीत का विवरण दिया। इस विवरण का मूल उसके शीर्षक से ही प्रकट हो रहा है कि 'लेखक की सबसे बड़ी पूँजी उसकी ईमानदारी है।' बहुत ही अच्छा लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी छायावाद की अच्छी समीक्षा की है। जो लेखकों और पाठकों के लिये मार्गदर्शक है। अप्रैल २०१८ के अंक में पुनर्पाठ देवेन्द्र स्वरूप का आलेख वीर सांवरकर द्वारा १८५७ की क्रांति पुस्तक के प्रकाशन और भारत में लाने और वितरण में आयी कठिनाइयों का इतिहास पढ़ कर वर्तमान पीढ़ी को उससे यही प्रेरणा मिलेगी कि गुलामी काल कितना कठिन था। सावरकर जी ने कितनी कठिनाइयाँ झेली थी उसका भी ज्ञान उसे होगा। वर्तमान पीढ़ी जो सुख भोग रही है वे सब स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के बलिदान के कारण ही मिल रही है। साक्षात्कार वर्तमान काल, भूतकाल का दर्शन तो कराता ही है, साथ ही भविष्य की भी झलक उसमें दिखती है– **सुखदेव व्यास, अनंत सुन्दरम् भवन 18 जहाज गली उज्जैन**

अभी चार-पाँच दिन पूर्व एक साहित्यकार बंधु घर आये और बातों के बीच उलाहना देते हुये कहा कि आप हर बार साक्षात्कार के संपादकीय की प्रशंसा करते हैं। उसमें ऐसा क्या है सिवाय वाम पंथियों की बुराई और स्वयं की तारीफ के। मैंने कहा, बंधु। यह अपना-अपना नजरिया है। मेरी दृष्टि में संपादकीय का मूल उद्देश्य भारतीय संस्कृति, भारतीयता उसके आदर्श और इतिहास आदि को उजागर करना है। उसे दूषित, विकृत और बदनाम करने की जिन्होंने प्रयास किया है चाहे वे अंग्रेज हों या वामपंथी, उनके झूठ और कुचक्र के तथ्यों के साथ सामने रखना है। ताकि लोगों का भ्रम दूर हो। इसमें बुराई क्या है। जब वे बहस करने लगे तो मैंने उनके सामने जून-१८ अंक की संपादकीय सामने रखते हुए कहा- इसमें जितनी निंदा-आलोचना वामपंथियों की है, उससे अधिक कटु आलोचना और निंदा दक्षिणपंथियों की है। इसे किसी प्रकार का पक्षपात कैसे कह सकते हैं। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि दक्षिण पंथियों में भी स्वार्थ और अवसरवादिता तथा अहं कम नहीं है। वे अपने दायित्वों का ईमानदारी और जिम्मेदारी से निर्वाह करने की बजाय, पद, पुरस्कार, सम्मान की जुगाड़ में रहते हैं। मैंने उक्त सम्पादकीय उन्हें पढ़वा दिया। ऐसी तमाम भ्रांतियाँ लोग पाले रहते हैं जो पंथविशेषक राही और अनुगामी है। वे सब कुछ अपनी आँख और समझ से देखते समझते हैं। दुराग्रही को नहीं समझाया जा सकता।

'साक्षात्कार' जून २०१८ संपादकीय हर बार की तरह पठनीय तो है ही इसमें विशेष उल्लेखनीय यह है कि जितनी बामपंथियों की खबर ली है, उससे अधिक दक्षिणपंथियों की दुर्बलताओं, अवसर-परस्ती और स्वार्थपरता के साथ उनकी गैर जिम्मेदारी पर उगली रखते हुए उन्हें अपने दायित्वों के प्रति सचेत किया गया है। सम्पादकीय पढ़कर यह जाना जा सकता है कि कहाँ-कहाँ क्या गड़बड़ किया और हमारी उदासीनता में कितना अनर्थ किया। तमाम संस्थायें, शिक्षा, पाठ्यक्रम, शोध आदि की स्थितियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामने हैं। इसी अंक में एक लेख ईसुरी के बारे में और एक छत्रसाल के बारे में है किन्तु उनमें कुछ खटकने की बातें भी है। जैसे रहीम ने कभी कुछ भी बुन्देली में नहीं लिखा। केशवदास के साहित्य में बुन्देली शब्दों का प्रयोग है, पर उन्होंने बुन्देलीगारी (लोकगीत) जहाँ तक मेरी जानकारी में हैं नहीं लिखी। ईसुरी ने श्रृंगार के साथ भक्ति और दर्शन संबंधी पर्याप्त फागे रची हैं। जन्म और मृत्यु की तिथियाँ आज भी विवादास्पद हैं। इसी प्रकार छत्रसाल संबंधी लेख में चम्पतराय और औरंगजेब का प्रसंग तथा बाजीराव और मस्तानी के विवाह का प्रसंग भी निर्विवाद और प्रामाणिक नहीं है। विद्वानों के अलग-अलग मत है। लेखक की अपने तथ्यों की पुष्टि के लिए संदर्भग्रंथों का उल्लेख करना चाहिए था। डॉ. हरेराम पाठक, डॉ. आनन्द कुमार सिंह के लेख अच्छे हैं। श्री घनश्याम सक्सेना की समीक्षा ने 'केवट गंगा' कृति पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ा दी। आपातकाल संबंधी अंश पठनीय और जानकारी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। **डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया, ए-७, फारचून पार्क, जी-३, गुलमोहर, भोपाल (म.प्र.) ४६२०३९**

'साक्षात्कार' में आपके सम्पादकीय पूरे मनोयोग से पढ़ता हूँ। एक दम स्पष्ट लिखते हैं और धड़ल्ले से लिखते हैं। **कृष्ण मुरारी शर्मा, ३१, माधव नगर, झाँसी रोड, ग्वालियर -४७४००२**

'साक्षात्कार' मई २०१८ अंक ४६१ प्राप्त हुआ। धन्यवाद, आपकी संपादकीय पूर्णतया दार्शनिक विवेचना संयुक्त है जिसने मुझे चिन्तन की नयी दिशा प्रदान की, जिससे प्रेरित होकर मैंने एक आलेख श्रीयुत नर्मदाप्रसाद उपाध्याय की बातचीत ने भी प्रभावित किया। दत्तोपंत ठेंगड़ी का हिन्दुत्व और उपासना पर धरोहर तो सदैव की भाँति बेजोड़ है ही पुनर्पाठ जितना आचार्य द्विवेदी के काल में प्रासंगिक था उतना ही आज भी हो। एक तरह से कहूँ तो संपादकीय से लेकर इस अंक के सभी आलेख दार्शनिक चिन्तन से पूरित हैं, जो रचनाकारों को एक नवीन दृष्टि से आप्लावित करते हैं। मधुकर अष्ठाना की 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन और कामायनी' ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। अपने मित्र डॉ.पी.आर. वासुदेवन 'शेष', चेन्नई की रचनाएँ देखकर प्रसन्नता हुई। तमिलभाषी डॉ. शेष 'हिन्दी के प्रति समर्पित है' (उन्होंने मेरी एक रचना का तमिल में अनुवाद भी किया है) कहानियाँ भी, सभी, रोचक हैं जो पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़ती है। ऐसे सुन्दर, संग्रहणीय अंक को प्रकाशित करने के लिए आप तथा पूरा सँपादक मण्डल बधाई का पात्र है। **गोपाल जी गुप्त, प्रेमाँगन, एमआईजी २९२, कैलास विहार, आवास विकास योजना-१, कल्याणपुर, कानपुर - २०८०१७ दूरभाष ०५१२-२५७१७९५**

आज आपको तथा आपके सहयोगियों को बधाई तथा शुभकामना देने की इच्छा है, कारण है 'साक्षात्कार' का नियमित प्रकाशन, साथ ही महत्त्वपूर्ण है नियमित वितरण। यह साहित्य, जगत को प्रसन्नता का क्षण देता है, पढ़ने हेतु आकर्षित करता है, पढ़ने की संस्कृति को सुदृढ़ करता है। आपके सतत् प्रयास को साधुवाद। जीवन संघर्ष में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने एवं सफलता पाने की शुभकामनाऐं देती हूँ। **रेनू तिवारी, प्रबंध संचालक, म.प्र. आदिवासी वित्त एवं विकास निगम, भोपाल (म.प्र.)**

'साक्षात्कार' नियमित प्राप्त हो रही हैं, धन्यवाद। प्रत्येक अंक एक नई दृष्टि के साथ प्राप्त होता है। जून-१८ का संपादकीय चिंतन की नई दृष्टि प्रदान करता हैं। साहित्य के संबंध में की गई टिप्पणियाँ अध्ययन एवं चिंतन-मनन को दर्शाती है, उच्चकोटि के सम्पादकीय हेतु बधाई। 'साक्षात्कार' गागर में सागर समेटे होता है आलेख और काव्यखण्ड भी स्तरीय हैं। **प्रियदर्शी खैरा, ९०-९१/ए, यशोदा विहार, चूना भट्टी भोपाल -४६२०१६ मो. ९६०६९२५५६४**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'साक्षात्कार' फरवरी-मार्च २०१८ अंक श्री जगदीश खरे जी से प्राप्त हुआ पढ़ा। मैं गद्य (नई कविता) का व्यक्ति होकर भी प्रभावी छंद का स्वागत करता हूँ। नवगीत सभी अच्छे लगे। आपको व गीतकारों को साधुवाद। मुक्ति बोध के कुछ ऐसे व्याकुल प्रश्न है जिनके उत्तर अभी देश की संसद सरकारें और हम आप दे नहीं पाए हैं। अंधेरे में आपने पड़ी ही होगी। 'मर गया देश अरे जीवित रहे जन।' प्रेम कुमार गौतम, ईसाईवेला, झांसी (उ.प्र.)।

'साक्षात्कार' के मासिक अंक निरन्तर प्राप्त हो रहे हैं। जून २०१८ का अंक भी प्राप्त हुआ। सबसे पहले डॉ. श्रीकांत जी की सरस्वती वंदना पढ़ी। तत्पश्चात संपादकीय जो कि सदैव ही विद्वतापूर्ण, आकर्षक एवं सामाजिक सरोकार से पूर्ण होकर साहित्यिक धरोहर भी होता है। इसमें संपादक के विशद अध्ययन-मनन के दर्शन होते हैं। इसमें आपातकाल का उल्लेख करना नहीं भूले। इसमें 'कोयला धोना', 'वामपंथ' 'साहित्यकारों की छटपटाहट', 'सम्वत' दुष्यंत कुमार की गजलें 'अभिव्यक्ति ही कला है' आदि विषयों पर पर्याप्त विचार पाने का अवसर प्राप्त हुआ। श्री रंगा हरि का 'अथातो धर्मजिज्ञासा' लेख धार्मिक सामाजिक और दार्शनिक पहलू की मर्मस्पर्शी मीमांसा करता है। 'अशोक' जी के द्वारा बुन्देल खण्ड के कवि 'ईसुरी' जी के विषय में नई जानकारियाँ प्राप्त हुई। वहीं राजा छत्रसाल और बाजीराव मस्तानी का भी ऐतिहासिक पहलू जानने को मिला। अंक की सभी रचनायें पठनीय हैं। काव्य खण्ड की कवितायें, कहानी में 'चुनौती' अच्छी लगी। लेख, लघुकथायें प्रेरणा दायक हैं। भविष्य में भी आपकी कृपा ऐसी ही बनी रहे।

नन्दकिशोर बावनिया, ६३, सरस्वती नगर धार (म.प्र.) ४५४००१, मो. ९४०६६६९३३३

सूचनाएँ :

- साहित्य अकादमी से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी साहित्य की वेबसाइट http://sahityaacademymp.com पर है।
- 'मध्य प्रदेश साहित्योत्सव' १४, १५ एवं १६ सितम्बर, २०१८ में इच्छुक सहभागी अपने आवेदन वेबसाइट में देखकर भर सकते हैं।
- 'साक्षात्कार' के अंक वेबसाइट में देखे जा सकत हैं।
- 'साक्षात्कार' में छपने के लिए, एक बार छपने के बाद कम से कम आठ माह बाद ही अपनी रचनाएँ भेजें।
- 'साक्षात्कार' की सदस्यता online वेबसाइट के माध्यम से भी प्राप्त कर सकते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महर्षि जमदग्नि व्याख्यान-दो

१६ जुलाई, २०१८, महू-इन्दौर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

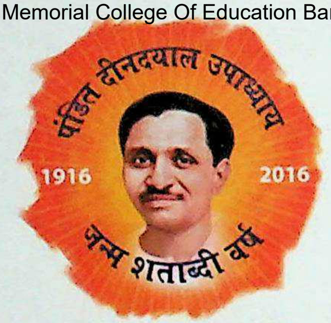

65 श्रीमती क्षमा कौल
द्वारा– अग्निशेखर
20 बी, लेन नं. 12, भवानी नगर,
जम्मू कश्मीर

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant
मध्यप्रदेश माध्यम/2018
Drishti Offset